ARCHAEOLOGY of GORAKHPUR DISTRICT
(From Earliest times to 600 A.D.)

गोरखपुर जनपद का पुरातत्त्व
(प्रारम्भ से ६०० ई० तक)

डी०फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध ग्रन्थ

शोधकर्त्ता
राजेश्वर शाही

शोध पर्यवेक्षक
श्री बी०बी० मिश्र
रीडर (अवकाश प्राप्त)

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2001

पुरोवाक्

एक समय में पुरातत्त्व का अध्ययन अंग्रेजी जानने वाले कुछ गिने–चुने लोगों तक ही सीमित था, लेकिन अपनी विषयगत रोचकता एवं हृदयग्राह्यता के कारण इस विषय के अध्ययन के प्रति सामान्य जन भी जागृत हुआ है। वस्तुतः इस विषय के अध्ययन–अनुशीलन के माध्यम से ऐतिहासिक अध्ययन को सीमित दायरे से निकालकर सर्वथा नया आयाम प्रदान किया जा सकता है। ज्ञान की साधना के क्रम में मानवीय प्रयास का सही मूल्यांकन इस विषय के अध्ययनोपरांत ही किया जा सकता है। इस अध्ययन–क्रम में भारतीय पुरातत्त्व विभाग एवं व्यक्तिगत प्रयासों से इससे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्रियाँ इकट्ठी की जा चुकी हैं।

सरयूपार परिक्षेत्र में अनेक अंग्रेज विद्वान् अपने पुरातात्त्विक विचार–मंथन के द्वारा समय–समय पर नवीन जानकारियाँ प्रस्तुत करते रहे हैं। इसी क्रम में कुछ स्थानीय लोगों की भी विषय के प्रति रुचि बढ़ी है। फलतः इस परिक्षेत्र से समय–समय पर महत्त्वपूर्ण पुरासामग्रियाँ मिलती रही हैं, जिनके आधार पर इस परिक्षेत्र की पुरासंस्कृतियों के विषय में हमारा ज्ञानवर्द्धन हुआ है। फिर भी इस परिक्षेत्र के पुरातत्त्व पर अब तक कोई व्यवस्थित अध्ययन नहीं हो सका था। अतएव यह शोध–प्रबन्ध इस क्षेत्र की पुरासंस्कृतियों के उस व्यवधान को मिटाने का एक विनम्र प्रयास है, जो अब तक इसमें विद्यमान था।

गोरखपुर परिक्षेत्र की पुरासंस्कृतियों के उद्घाटन में मैं किस सीमा तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्धारण विद्वत्–समाज ही कर सकता है, तथापि जहाँ तक मुझसे बन सका है, मैंने इस विषय में अब तक हुयी तमाम खोजों के आलोक में इस परिक्षेत्र की पुरासंस्कृतियों को व्यवस्थित रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। फिर भी शोध–कार्य एक गम्भीर विषय है, जिसे अंतिम रूप दे पाना अत्यन्त कठिन है। अस्तु कुछ ऐसे तथ्य हो सकते हैं, जिन्हें पुनः अनुसंधान की अपेक्षा हो। कविवर कालिदास के शब्दों में विश्व–स्रष्टा विधाता की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह समस्त गुणों को एक ही स्थान में नहीं रखना चाहता–

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारे दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।। –कुमार सम्भवम् 3.28

11.10.2001
इलाहाबाद, उ0 प्र0

(राजेश्वर शाही)

आभारोक्ति

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

प्रायः यह मानव स्वभाव ही है कि वह पीढ़ी–दर–पीढ़ी अपनी जातीय धरोहर के परिरक्षण, सम्वर्द्धन और सम्प्रेषण का प्रयास करता है। इतिहास विषय के अध्ययन के प्रति मेरी नैसर्गिक अभिरुचि की पृष्ठभूमि में कुछ सीमा तक पारिवारिक परिवेश भी काम करता रहा है। जहाँ तक इस विषय में शोधकार्य का प्रश्न है, यह उत्कण्ठा परास्नातक कक्षा में प्रवेश के समय से ही मेरे अन्तर्मन में पल रही थी। इस उत्कण्ठा को, प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद पिताश्री श्री मैनेजर शाही से अनवरत उर्बर भूमि मिलती रही है। शोध–कार्य की पृष्ठभूमि से लेकर पूर्णता तक आपके अनुपम उत्सर्ग को मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। शोध–कार्य का यह पवित्र–यज्ञ आपकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के अभाव में शायद पूर्ण नहीं हो पाता। अस्तु, आपकी मनसा, वाचा, कर्मणा वन्दना करना, मेरा परम कर्त्तव्य है।

सर्वप्रथम मैं परम सम्माननीय, उन सभी आचार्यों एवं विद्वानों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनकी कृतियों से इस शोध कार्य को पूरा करने में मैंने महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त की है।

पूर्वाचार्यों में परम श्रद्धेय गुरूवर, प्रो० यू० एन० राय एवं प्रो० एस० एन० राय का आशीर्वाद, स्नेहपूर्ण सान्निध्य एवं प्रेरणाप्रद मार्गदर्शन, मुझे स्नातक कक्षा से ही मिलता रहा है, अस्तु, आप गुरूजनों का मैं अतीव कृतज्ञ हूँ।

शोध–कार्य की प्रेरणा के उज्जीवन में मैं अपने निदेशक श्री बी० बी० मिश्र के अवदान को भुला नहीं सकता। आपके पितृ–तुल्य सहज–स्नेह, मार्गदर्शन एवं आशीष को मैं शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में एक महत्त्वपूर्ण उपादान समझता हूँ। आपके सान्निध्य में आने के बाद पुरातत्त्व के प्रति मेरी रुचि बढ़ती गयी। विषयगत् समस्याओं को लेकर जब भी मैं आपके पास बैठा, मुझे लगा कि मैं अन्तेवासी शिष्यों की परम्परा में शिक्षा

ग्रहण कर रहा हूँ। शोध–प्रबन्ध में मैंने आद्योपान्त आपकी विचार–दृष्टि का उपयोग किया है, अस्तु आपको मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

विभागीय गुरुजनों में प्रख्यात पुराविद् प्रो0 विद्याधर मिश्र (पूर्व, आचार्य एवं अध्यक्ष) का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके शब्दों एवं विचारों से मुझे विविध प्रकार से सहायता मिली है। आपके सान्निध्य में आने के बाद मैंने अनुभव किया कि सहजता विद्वानों का मौलिक गुण है।

परम श्रद्धेय गुरुवर, डॉ0 जे0 एन0 पाल का मैं चिरऋणी हूँ, जिन्होंने पुरातत्त्व के वर्णमाला से लेकर विषय की गहराइयों तक पग–पग पर आने वाली विविध समस्याओं का अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य से सद्यः समाधान किया है। सम्पूर्ण शोध–कार्य के दौरान आपने जिस प्रकार से रुचि लिया है, वह आपका मेरे ऊपर सहज स्नेह ही है। निःसंदेह सहजता और विद्वत्ता को मिलाकर, व्यक्तित्व की कोई प्रतिमा बनायी जा सके तो वह आपकी उपमा बन सकती है। ऐसे गुरुजनों के आशीर्वादों का स्पन्दन ही जीवन को एक लम्बी गति दे सकता है, अस्तु आप मेरे लिए वंदनीय हैं।

शोध–प्रबन्ध की पूर्णता में, परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ0 जे0 एन0 पाण्डेय का अवदान विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिनकी कृति से मैं अनवरत लाभान्वित हुआ हूँ। गुरुवर डॉ0 एच0 एन0 दूबे के विचारों एवं कृतियों से मैं स्नातक–कक्षा से ही लाभान्वित होता रहा हूँ। आपसे जो प्रोत्साहन मिलता रहा है, वह मेरे लिए इतना मूल्यवान है कि आभार–प्रदर्शन द्वारा मैं उसे शब्दों की सीमा में बाँधना नहीं चाहता। अन्य गुरुजनों में डॉ0 आर0पी0 त्रिपाठी, डॉ0 जी0के0 राय, डॉ0 यू0सी0 चट्टोपाध्याय, डॉ0 सी0डी0 पाण्डेय, डॉ0 शशिकान्त राय एवं डॉ0 हर्ष कुमार से भी मुझे विविध प्रकार की सहायता मिली है, अस्तु मैं आप सभी का हृदय से आभारी हूँ।

विभागीय सहयोगियों में श्री विजेन्द्र खत्री का मैं विशेष आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने अपना अत्यन्त मूल्यवान समय देकर विविध प्रकार से मेरी सहायता की है। श्री अरविन्द मालवीय, श्री सतीश राय एवं डॉ0 मानिक चन्द्र गुप्त का भी मैं विशेष आभार मानता हूँ, जिनसे अनेक प्रकार से मुझे सहायता मिली है। विभाग के अन्य सहयोगियों में श्री आर0 पी0 यादव, श्री राजेश कुमार यादव, श्री कमलेश कुमार एवं श्री श्रीप्रकाश मिश्र धन्यवादार्ह हैं। प्राचीन इतिहास विभाग के कार्यालय का असीम सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, जिसके लिए धन्यवाद ज्ञापित करने के पश्चात् भी मैं उऋण नहीं हो पाऊँगा।

विभागीय पुस्तकालय के अतिरिक्त इलाहाबाद संग्रहालय एवं उसमें अवस्थित पुस्तकालय के संचित कोश से भी मैं निरन्तर लाभ उठाता रहा हूँ। इस संस्था के सहयोगियों में श्री धीरेश जोशी (पुस्तकालय

सूचना सहायक) श्री रामरतन प्रसाद एवं मीठा लाल मीणा ने भी यथाशक्ति मुझे सहयोग दिया है, एतदर्थ आप लोग भी धन्यवाद के पात्र हैं।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के पुराविद् एवं संग्रहालयाध्यक्ष श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने शोध कार्य के दौरान आद्योपान्त रुचि लेकर जो अप्रतिम योगदान प्रदान किया है, उसके लिए मैं आपका चिरऋणी हूँ। आपके साहाय्य एवं सौहार्द के अभाव में शोध प्रबन्ध, शायद अपने वर्तमान कलेवर में प्रस्तुत नहीं किया जा सकता, एतदर्थ आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मैं अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध, श्री भगवान महावीर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ0 चन्द्रमौलि शुक्ल का भी मैं विशेष आभारी हूँ, जिनसे प्रायः प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिलता रहा है।

मित्रों में सर्वश्री दिनेश जी पाण्डेय, आर0 एल0 त्रिपाठी (कोषाधिकारी), अजय कुमार मिश्र, इन्द्रमणि उपाध्याय, मिथिलेश कुमार राय, अरविन्द राय, अरुणशंकर राय, अनिल सिंह (जि0 हो0 गा0 कमाण्डेण्ट), अरविन्द दूबे, सत्यनारायण पाण्डेय एवं रमाकांत सिंह ने शोधकार्य में अपने तरह से सहयोग किया है, अस्तु आप मित्रों के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना मित्र धर्म समझता हूँ।
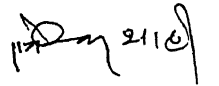
परिजनों में श्री पंडित देवपूजन पाठक एवं श्री इन्द्रजीत पाण्डेय के वैदुष्यपूर्ण विचारों से मैं सदा लाभान्वित होता रहा हूँ। आप लोगों ने भी शोध–कार्य में विशेष रुचि लिया है, एतदर्थ आप महानुभावों का मैं अतीव आभारी हूँ।

अग्रज, श्री जयप्रकाश नारायण शाही एवं भाभीश्री, श्रीमती सविता शाही ने भी मेरी इस सरस्वती–साधना में आद्योपान्त रुचि लेकर विविध प्रकारेण सहायता की है। अनुज श्री दिग्विजय नाथ राय ने फोटोग्राफी की समय–साध्य जिम्मेदारी लेकर भ्रातृ–धर्म का पालन किया है, एतदर्थ आप लोगों का मैं विशेष आभारी हूँ।

आभार व्यक्त करते समय रंजना जी (श्रीमती रंजना) का नाम मेरे स्मृति पटल पर बार–बार आ रहा है, जिनका प्रेरणा–प्रद सान्निध्य शोध कार्य में प्रवृत्त होने के पहले से ही मिलता रहा है। छाया की भाँति मेरे साथ रहकर आपने जो सम्बल मुझे दिया है, उसे दृष्ट साक्ष्यों के माध्यम से मैं व्यक्त नहीं कर सकता। अस्तु मेरी शुभकामनाओं में थोड़ा भी बल हो तो मैं आपके समृद्धशाली भविष्य की कामना करता हूँ।

सहधर्मिणी अमिता (श्रीमती अमिता शाही) ने शोध–कार्य की इस सुदीर्घ अवधि में मेरे प्रयाग–प्रवास के दौरान गृहस्थ जीवन की सुविज्ञ कठिनाइयों का सामना करते हुए जो आत्मीय सहयोग दिया है, उससे मुझे एक अतिरिक्त सम्बल मिला है। इसके लिए उन्हें धन्यवाद देना, मुझे कुछ औपचारिकता–सा लग रहा है। वत्सला (पुत्री) एवं शुभम् (पुत्र) ने अपने शैशवोचित सहयोग से मेरे अवकाश के क्षणों को रोचक बनाया है, अस्तु, उन्हें मेरा चिरसंचित स्नेह। आभार व्यक्त करने के क्रम में मैं अपनी ममतामयी स्वर्गीया माँ (श्रीमती चाँदमती देवी) को कैसे भुला सकता हूँ, जिनके हृदय–रक्त से निरन्तर अभिसिंचित होता हुआ शोध–कार्य के महायज्ञ को पूरा करने की योग्यता प्राप्त कर सका हूँ। अस्तु, आपको मेरी हार्दिक श्रद्धांजलि। राका प्रकाशन के संचालक श्री राकेश तिवारी के प्रति आभार व्यक्त करना मैं अपना धर्म समझता हूँ, जिन्होंने अल्प समय में इस शोध–प्रबन्ध के टंकण का कार्य अत्यन्त कुशलता के साथ पूरा किया है। और अन्त में सकल विद्या एवं वाङ्मय की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के चरणों में मेरा प्रणाम–

सरस्वती महाभागे विद्ये कमललोचने
विद्यारुपे विशालाक्षी विद्यां देहि नमोऽस्तुते।

(राजेश्वर शाही)

11.10.2001

इलाहाबाद, उ0 प्र0

विषयानुक्रमणिका

रेखाचित्र, छायाचित्र एवं तालिकाओं के विवरण

रेखाचित्र :

छायाचित्र :

7.	मूर्तिखण्ड	:	तुर्कपट्टी–महुअवा	गुप्त–युग
8.	शिवलिंग	:	सरया	पाल–युग
9.	अग्नि	:	सरया	पाल–युग

तालिकाएँ :

तालिका संख्या–1, 1974--75 में बांसगाँव तहसील, गोरखपुर जनपद में सरयू नदी के किनारे खोजे गये पुरास्थल।

तालिका संख्या–2, गोरखपुर जनपद में कुआनों नदी के किनारे खोजे गये पुरास्थल।

संक्षिप्तावली

ए0 ए0 आई0 आर0	–	आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट
ए0 एस0 आई0 ए0 आर0	–	आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट
ए0 इ0	–	एपिग्रैफिका इण्डिका
ए0 जी0 आई0	–	एन्सियण्ट ज्यागर्फी ऑफ इण्डिया–कनिंघम
जे0 आर0 ए0 एस0	–	जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी
जे0 ए0 एस0 बी0	–	जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल
जे0 ए0 एस0 ई0	–	जर्नल आफ दि एपिग्रैफिकल सोसायटी आफ इण्डिया
जे0 ए0 एस0 एल0	–	जर्नल आफ दि एशियाटिक सोयायटी आफ लंदन
पी0 ए0 एस0 बी0	–	प्रोसिडिंग आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल
कार्पस	–	कार्पस इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम
क्वा0 हो0 यू0 पी0	–	क्वायंस हार्ड्स आफ यू0 पी0 – श्रीवास्तव, ए0 के0
गो0 ज0 इ0	–	गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास– पाण्डेय राजबलि
प्रा0 रा0 इ0	–	प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास– राय चौधरी, हेमचन्द्र
रा0 सं0 ल0	–	राज्य संग्रहालय लखनऊ
पू0 सं0 गो0 वि0	–	पूर्वायतन संग्रहालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय (प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग)
बौ0 सं0	–	राजकीय बौद्ध संग्रहालय गोपलापुर, गोरखपुर

सेमी0	–	सेन्टीमीटर
कि0मी0	–	किलोमीटर

भूमिका

विषय का महत्त्व (गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

पुरातत्त्व, मानव संस्कृति एवं इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है, विशेषतः कालक्रम तथा सांस्कृतिक विकास के परिप्रेक्ष्य में। वस्तुतः पुरातत्त्व शब्द अंग्रेजी के आर्कियोलॉजी का हिन्दी रूपान्तर है। आर्कियोलॉजी शब्द यूनानी भाषा के आर्कियास+लोगस से बना है, जिसका अर्थ है– पुरातन ज्ञान। मानव इतिहास के विविध पक्षों, यथा– सामाजिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक इतिहास की व्याख्या में पुरातत्त्व की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। पुरातत्त्व इतिहास को जीवंत बनाता है।

मानव इतिहास का अधिकांश भाग पुरातत्त्व एवं पुरातात्त्विक साक्ष्यों पर ही आधारित है। यद्यपि पुराविद् पुरावशेषों को निर्जीव हालत में प्राप्त करता है, लेकिन ये निर्जीव पुरावशेष पुराविद् के हाथों में आते ही मानव के अतीत को सजीव एवं साकार बना देते हैं। पुरातत्त्ववेत्ता भौतिक अवशेषों को वस्तु के रूप में नहीं देखत: अपितु उसके माध्यम से वह क्रियाशील मानव को उसके सम्पूर्ण परिवेश में सजीव देखता है[1]। खण्डहर से दिखने वाले निर्जन स्थल, मात्र नीवों में सिमटे भवन साकार एवं स्पन्दित हो उठते हैं। ये अतीत में न रह कर वर्तमान में साकार होने लगते हैं। इस सम्बन्ध में ह्वीलर की मान्यता है कि 'उत्खननकर्त्ता मात्र वस्तुओं को नहीं खोदता अपितु वह लोगों को खोदता है'। ह्वीलर की यह उक्ति अत्यन्त सार्थक प्रतीत होती है। इस प्रकार दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भौतिक अवशेषों के माध्यम से पुरातत्त्ववेत्ता मानव–जीवन के सम्पूर्ण परिवेश का निर्माण करता है। फिर भी पुरातत्त्व की अपनी सीमायें है, क्योंकि पुराविद्, व्यक्ति के निजी क्रिया–कलापों एव उपलब्धियों की व्याख्या नहीं कर सकता। वह सम्पूर्ण समाज का परिवेश प्रस्तुत करता है। समाज ही उसके अध्ययन की इकाई है। व्यक्ति विशेष की चर्चा करना उसका अभीष्ट नहीं है। उसकी अभिरुचि समष्टि में केन्द्रीभूत रहती है। पुराविद् जब किसी समाज की सांस्कृतिक उपलब्धियों की चर्चा करता

है तो उसके उसके निजी दृष्टिकोण एवं मान्यताओं की कोई अहमियत नहीं होती। वह यथार्थ से हटकर कुछ भी नहीं लिख सकता। मानव समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना ही उसका अभीष्ट है।

मानव विकास के प्रारम्भिक चरणों एवं लेखनी के आविर्भाव के पूर्व के ऐतिहासिक ज्ञान के लिए पुरातत्त्व के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नहीं है। फिर भी पुरातत्त्व की अपनी सीमाएँ हैं। इन्हीं सीमाओं के कारण पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर जब किसी मानव समाज के अतीत कालीन घटनाओं की विवेचना की जाती है तो इसमें अन्य विषयों से भी सहयोग लेना पड़ता है, क्योंकि अतीत कालीन कुछ ऐसे भी प्रश्न उपस्थित होते हैं, जिनके उत्तर मानविकी (Humanties) एवं प्राकृतिक विज्ञानों से सम्बन्ध स्थापित किये बिना देना सम्भव नहीं है। इस प्रकार पुरातत्त्व एक बहुआयामी विषय है, जो मानविकी एवं प्राकृतिक विज्ञानों से घनिष्ट रूप से जुड़ा हुआ है।

विभिन्न विद्वानों ने पुरातत्त्व की जो अलग–अलग परिभाषायें दी हैं, उनसे इस विषय से सम्बन्धित भ्रान्तियो एव विसंगतियो का बहुत सीमा तक निराकरण हुआ है। गार्डन चाइल्ड ने पुरातत्त्व की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'पुरातत्त्व सुस्पष्ट भौतिक अवशेषों के माध्यम से मानव के क्रिया कलापों के अध्ययन को कहा जा सकता है'। ग्राहम क्लार्क ने भी पुरातत्त्व की परिभाषा दी है, जिनके अनुसार 'पुरातत्त्व को मानव अतीत के इतिहास की रचना करने के लिये पुरावशेषों के क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।' ग्लिन डेनियल के अनुसार, पुरातत्त्व शब्द का प्रयोग दो प्रमुख अर्थों में किया जा सकता है– (1) मानव अतीत के भौतिक अवशेषों के अध्ययन और (2) मानव के प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित पुरावशेषों के अध्ययन के अर्थ में। इनमें से प्रथम परिप्रेक्ष्य में पुरातत्त्व शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रागितिहासिक एवं ऐतिहासिक कालों के पुरावशेषों को सम्मिलित किया गया है। इस दृष्टि से पुरातत्त्व के अन्तर्गत पाषाण काल के औजारों से लेकर आजकल के काल–पात्रों तक का समावेश किया जा सकता है।

पुरातत्त्व की महत्ता के उपरोक्त पक्ष ने मुझे इस विषय की ओर आकर्षित किया। क्या पुरातत्त्व का यह उपयोग हम अपने क्षेत्र के संदर्भ में कर सकते हैं? इस प्रश्न में भी मेरी रूचि बढ़ी।

गोरखपुर परिक्षेत्र मध्य गंगा घाटी का एक अभिन्न अंग है। इस परिक्षेत्र का मानव संस्कृति के विकास में महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ विभिन्न संस्कृतियों का क्रमिक जमाव मिलता है, जो इस क्षेत्र के मानव समुदाय के जीवन में स्थायित्व की ओर संकेत करता है। यद्यपि गंगा संस्कृति भारत भूमि की प्राचीनतम

संस्कृतियों में से एक है, तथापि इस परिक्षेत्र में (मध्य गंगा घाटी) इस संस्कृति के विभिन्न चरणों के उद्‌घाटन के निमित्त व्यापक अनुसंधान के अभाव को दृष्टिगत् रखते हुए इस शोध–प्रबन्ध का सृजन किया गया है।

यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति से पूर्व कुछ अंग्रेज पुराविदों एवं प्रशासनिक अधिकारियों ने इस परिक्षेत्र के पुरातत्त्व की ओर सीमित पैमाने पर ध्यान दिया था, लेकिन उनका यह कार्य पर्याप्त नहीं था। तत्पश्चात् गोरखपुर विश्वविद्यालय के अस्तित्व में आने के बाद (1956) यहाँ के पुराविदों ने इस परिक्षेत्र में सीमित पैमाने पर अनुसंधान एवं उत्खनन कार्य किया। इसके अतिरिक्त बी0 एच0 यू0 (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) की ओर से भी कुछ अनुसंधान हुये। इन सभी कार्यों के सम्मिलित विवेचन से ही इस परिक्षेत्र के सांस्कृतिक अनुक्रम को व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है। अतएव प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इस परिक्षेत्र में मानव के सांस्कृतिक विकास की विभिन्न कड़ियों को एक निश्चित अनुक्रम में प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है।

यहाॅ उल्लेख्य है कि, शोध–कार्य के दौरान मैंने अनुभव किया कि विषय की भौगोलिक सीमाओं में (वर्तमान गोरखपुर जनपद) रहकर जनपद के पुरातत्त्व को सम्यक् रूपेण उद्‌घाटित नहीं किया जा सकता। क्योंकि विभाजित जनपद की सीमाओं में यदि इस अध्ययन क्षेत्र को सीमित रखा गया तो इस क्षेत्र की पुरा संस्कृतियों को सम्पूर्णता में नहीं प्रस्तुत किया जा सकेगा। अतएव मैंने अविभाजित गोरखपुर (सम्मिलित महराजगंज) के अतिरिक्त सरयूपार के अन्य इलाकों को भी अपने अध्ययन के लिए लिया। फलतः जनपद के पुरातत्त्व का अभीष्ट स्वरूप उद्‌घाटित हुआ।

जनपद का सामान्य परिचय

गोरखपुर परिक्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक ऐसा भौगोलिक अंचल है जो इतिहास के कालखण्ड में भू–राजनैतिक एवं भू–सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अगणित घटनाओं तथा उत्थान–पतन की गाथा समेटे हुये हैं[2]। वर्तमान में यह परिक्षेत्र भारत के उत्तरी सीमा की सुरक्षा को स्थानिक निर्धारकों द्वारा, भू–राजनीतिक तथा भू–सामाजिक दृष्टियों से अतिनिकट से प्रभावित करता है। उत्तर में मंडल की अंतर्राष्ट्रीय सीमा पड़ोसी देश नेपाल से मिलती है। गोरखपुर के उत्तर में महराजगंज, पश्चिम में बस्ती एवं सिद्धार्थ नगर, दक्षिण में आजमगढ़ तथा पूर्व में देवरिया एवं कुशीनगर जिले हैं।

गोरखपुर मंडल के भू–भाग का विस्तार 25°51′ से 26°30′ उत्तरी अक्षांश तथा 83°20′ पूर्वी देशान्तर तक है। नेपाल की तराई में कपिलवस्तु, रूपन्देई तथा नवल परासी जनपद का दक्षिणी भू–भाग स्थित है। उत्तरी भाग वन संसाधनों से युक्त है, जहाँ वर्षा अधिक होती है। हिमालय से दूरी कम होने के कारण भी इस

क्षेत्र का सामरिक महत्त्व बढ़ जाता है। इस क्षेत्र में निवास करने वाली जनता का नजदीकी सम्पर्क नेपाल देश से, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं अन्य कारणों से लम्बे समय से चले आ रहे हैं।

गोरखपुर मंडल की भूमि का ढलान प्रायः उत्तर से दक्षिण की ओर है। इस क्षेत्र से होकर प्रवाहित होने वाली मुख्य नदियाँ, अचिरावती अर्थात् राप्ती (234 किलोमीटर), सरयू (77 किलोमीटर), रोहिणी (109 किलोमीटर), आमी (77 किलोमीटर) तथा कुआनों (3 किलोमीटर) है, जो जल निकासी व सिंचाई का मुख्य स्रोत है। इनके अतिरिक्त गोर्रा एवं बरही नदियों का प्रवाह भी जनपद में है। गोरखपुर राप्ती नदी के तट पर स्थित है। इसके दक्षिणी सीमा पर घाघरा नदी पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। उत्तरी भू–भाग की तुलना में दक्षिण में छोटे–छोटे नालों की संख्या अधिक है। 1700 एकड़ क्षेत्रफल में फैली विस्तृत नैसर्गिक झील रामगढ़ताल गोरखपुर शहर में प्राकृतिक रूप से बारहों मास जल प्लावित रहता है। बखिरा झील बस्ती जनपद में अवस्थित है।

गोरखपुर क्षेत्र की समुद्र तल से ऊँचाई 185 मीटर है। वर्षा ऋतु में यहाँ के नदी–नाले विकराल रूप धारण कर लेते है जिससे पर्याप्त कृषि सम्पदा और जन–धन की हानि होती है। इसमें नेपाल देश की नदियों का भी कहर होता है। बाढ़ आने से यहाँ की भूमि की गुणवत्ता में परिवर्तन होता रहता है जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित होता रहता है।

जिले में दो प्रकार की भूमि की बनावट पायी जाती है। जिले के उत्तरी भाग में मिट्टी दोमट है परन्तु कुछ अंश चिकनी मिट्टी का भी है, जो धान और गेहूँ के लिये उपयुक्त है। इस भाग में जंगल कौडिया, कैम्पियरगंज, धानी, भटहट, पिपराइच एवं चरगाँवा विकास खण्ड आते हैं। जिले के दक्षिणी भाग में सहज नवाँ, पाली, पिपरौली, खजनी, बाँस गाँव, गगहा, कौड़ीराम, बड़हलगंज, गोला उरूवा, सरदार नगर, ब्रह्मपुर तथा बेलघाट आदि विकास खण्ड है।

वर्ष 1989 में महराजगंज जिला घोषित हुआ जो पहले गोरखपुर का ही एक भाग था। अधिकांश वन का क्षेत्र नये जिले में चला गया परन्तु फिर भी कुछ क्षेत्र कैम्पियरगंज, चरगाँवा तथा खोरबार विकास खण्डों में सुरक्षित रहा। कुसुम्ही वन क्षेत्र का एक बड़ा भाग इस जिले में आज भी मौजूद है। इसमें इमारती लकड़ी, साखू, शीशम, सागौन, असनाकरफुस, बाँस आदि का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त नहरों एवं सड़कों के किनारे गाँव–समाज, संस्थाओं एवं निजी भूमि पर वन प्राप्त होते हैं। लगभग 22190 हेक्टेयर क्षेत्रफल में वन है।

जिले में प्रमुख खनिज की उपलब्धता नहीं है। नदियों का भी क्षेत्र सीमित है। उनकी तलहटी से बालू निकालने का कार्य होता है, जिसका उपयोग भवन निर्माण में अधिक किया जाता है। इसी प्रकार मिट्टी

से ईंट बनाने का कार्य किया जाता है। जनपद में लगभग 350 ईंट भट्टे हैं। कंकण तथा रेह भी कहीं–कहीं पाया जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न कार्यों में किया जाता है। जनपद का अभी पूर्ण–रूपेड़, भू–सर्वेक्षण नहीं किया जा सका है। परन्तु लोगों का ऐसा मानना है कि प्रचुर मात्रा में खनिज प्राप्त होने की प्रबल संभावना है। गोरखपुर–बस्ती राष्ट्रीय मार्ग–28, पर सहजनवां के समीप बोम्टा में राप्ती नदी की तलहटी से गैस प्राप्त हुई है। बोम्टा में भारत पेट्रोलियम में गैस फिलिंग प्लान्ट स्थापित किया है।

जिले में पूर्वोत्तर रेलवे का मुख्यालय स्थित है। यहाँ से देश की राजधानी दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, जम्मू, बनारस आदि प्रमुख स्थानों पर जाने के लिये रेलगाड़ी मिलती है। रेल सेवा आयोग गोरखपुर कार्यरत् है, जहाँ से रेलवे नौकरी में भर्ती हेतु परीक्षा ली जाती है। यहाँ से नेपाल सीमा तक जाने के लिये ट्रेन की सुविधा है।

जिले में 'एयरफोर्स स्टेशन' है जिसका सामरिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। यहाँ से नियमित उड़ान की सुविधा नहीं है। उत्तर प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम का क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थित है। निगम की बसें, देश व प्रदेश के दूर–दराज क्षेत्रों में यात्री लाने व ले जाने की महत्त्वपूर्ण सेवा करती हैं।

जिले में बाबा राघवदास मेडिकल कालेज, पंडित मदन मोहन मालवीय इंजीनियरिंग कालेज, गोरखपुर विश्वविद्यालय, वीर बहादुर सिंह स्पोर्ट्स कालेज, खाद कारखाना, दूरदर्शन व आकाशवाणी केन्द्र, इंडियन ऑयल व भारत पेट्रोलियम, सर्किट हाउस तथा फातिमा अस्पताल आदि स्थापित है।

जिले में दो लोक सभा–गोरखपुर तथा बांसगाँव (सुरक्षित) सीटें हैं। 9 विधान सभा– गोरखपुर, बाँस-गाँव, धुरियापार, चिल्लूपार, कौड़ीराम, मुँडेरा बाजार, मानीराम, पिपराइच, सहजनवां की सीटें स्थायी हैं। क्षेत्र और स्थानीय प्राधिकारी सहित 3 सीटें स्थायी हैं। लोक सभा तथा विधान सभा निर्वाचन, 1996 में लगभग 2414166 मतदाता थे। जिसमें 1351790 पुरुष तथा 1062376 महिलायें थीं।

ऐतिहासिक परिचय

गोरखपुर जनपद मुख्यालय का यह नामकरण नाथ सम्प्रदाय के महान संत एवं साधक गुरू गोरखनाथ, जो एक कनफटा योगी थे, के नाम पर हुआ[3]। प्रसिद्ध संत गोरखनाथ ने वर्तमान गोरखनाथ मंदिर के समीप कठोर तपस्या किया, परिणामतः उनके इस पवित्र प्रयास से जनपद को यह नाम और प्रसिद्धि मिली[4]। बाबा गोरखनाथ पंजाब से यहाँ आये थे। इन्होंने जनपद में गोरक्ष नामक देवता की स्थापना की[5]। गोरक्ष, नेपाल के प्रसिद्ध देवता हैं। कहा जाता है कि बाबा गोरखनाथ ने गोरखपुर शहर की स्थापना की थी।

वर्तमान समय में गुरू गोरखनाथ एक आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप में जाने जाते हैं। पुराना शहर गोरखपुर के मध्य गुरू जी का भव्य मंदिर स्थापित है।

महाकाव्य युग में वर्तमान गोरखपुर परिक्षेत्र कारूपथ के नाम से जाना जाता था, जो कि कोशल राज्य का एक भाग था[6]। यह परिक्षेत्र आर्य संस्कृति एवं सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था[7]। पौराणिक और धार्मिक महाकालों में वर्णित उद्धरणों से यह तथ्य सामने आता है कि रामायण काल में सिन्धु तथा आर्य सभ्यता की संस्कृतियों के पारस्परिक समन्वय की आधारभूमि तैयार हो चुकी थी और आर्यों की सभ्यता सिन्धु घाटी से लेकर आगे गंगा और गंडक की घाटियों तक फैल चुकी थी[8]।

यह स्पष्ट है कि राजधानी अयोध्या सहित इस परिक्षेत्र पर शासन करने वाला प्रथम शासक इक्ष्वाकु था, जिसने सूर्यवंशी क्षत्रिय जाति की स्थापना की[9]। राम, जो कि इस राजवंश के महानतम शासकों में से थे, के राज्याभिषेक तक इस राजकुल में अनेक प्रसिद्ध शासक उत्पन्न हुए [10]। राम ने अपने जीवन काल में ही सम्पूर्ण राज्य को दो छोटे–छोटे भागों में विभक्त कर दिया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र, कुश को कुशावती का राजा बनाया[11]। वर्तमान कुशीनगर ही प्राचीन कुशावती थी जो कि 1948 तक गोरखपुर जनपद का अंग था[12]। राम के आत्मोत्सर्ग के पश्चात् अयोध्यावासियों के आग्रह पर कुश पुनः अयोध्या लौट आए [13]। बाल्मीकि रामायण से स्पष्ट होता है कि कुश के चचेरे भाई चन्द्रकेतु की उपाधि 'मल्ल' थी, जिसके आधार पर उनके राज्य का नाम भी मल्ल राष्ट्र हुआ[14]। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर ने राजसूय–यज्ञ के दौरान भीमसेन को पूर्वी राज्यों के विजय का आदेश दिया। फलतः पूर्व में स्थित गोपालक नामक स्थान की विजय, भीमसेन ने की[15]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय ने गोपालक की पहचान बांसगाँव तहसील में अवस्थित गोपालपुर से की है[16]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार, गोपालपुर के समीप भीमटीला स्थित है, जहाँ भीमसेन ने विजय के पश्चात् विश्राभ करने के लिए कहा[17]।

बौद्ध धर्म के संस्थापक तथा ई0 पू0 छठी शताब्दी में आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार महात्मा बुद्ध का जन्म इसी परिक्षेत्र में हुआ, जो अब नेपाल देश की सीमा में है। उन्होंने इस शहर के पश्चिमी छोर पर रोहिणी और अचिरावती (राप्ती) नदी के संगम पर आकर अपना राजकीय परिधान, आभूषण एवं चिन्ह त्याग किया और सत्य की खोज में आगे बढ़ गये। इस समय शाक्यों का कपिलवस्तु, कोलियों का रामग्राम, मौर्यों का पिप्पलीवन एवं मल्लों का कुशीनगर प्रमुख गणराज्य थे।

वस्तुतः विभिन्न साहित्यिक स्रोतों के अनुसार जनपद का राजनीतिक इतिहास कोशल राज्य की स्थापना के साथ प्रारम्भ होता है। कोशल वर्तमान उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले में स्थित था। इसके पश्चिम

तथा उत्तर पश्चिम में पांचाल जनपद था[18]। रामायण के अनुसार कोशल राज्य के पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिका या स्यंदिका अर्थात् सई नदी, पूर्व में सदानीरा तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ थी[19]। बौद्ध साहित्य भी इसका समर्थन करता है[20]। शतपथ ब्राह्मण में सदानीरा (आधुनिक गण्डक नदी) को कोशल और विदेह जनपदों की सीमा बताया गया है[21]। ध्यातव्य है कि सरयू के उत्तर और पूर्व का भाग कोशल राज्य में सम्मिलित था। इस प्रकार वर्तमान बहराइच, गोंडा, बस्ती, महराजगंज, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर, देवरिया तथा कुशीनगर जनपद प्राचीन कोशल के अंग थे। गोरखपुर जनपद ने आर्य राज्यों के विस्तार, चक्रवर्ती राजाओं की दिग्विजय, शासन व्यवस्था, सामाजिक संगठन, धार्मिक एवं दार्शनिक मतों के प्रवर्तन, साहित्य और कला आदि जीवन के सभी पक्षों में अपना योगदान किया[22]।

कोशल की राजनीतिक महत्ता का वर्णन वैदिक काल से ही मिलने लगता है[23]। महाकाव्यों एवं पुराणों में तो अनेक कोशल नृपतियों का उल्लेख हुआ है[24]। अथर्ववेद में कोशल की प्रथम राजधानी की संरचनाओं, सम्पदा और महानता का उल्लेख मिलता है[25]। पाणिनि की अष्टाध्यायी में भी कोशल का नामोल्लेख है[26]। रामायण, महाभारत और पुराणों में एक भौगोलिक इकाई के रूप में कोशल का उल्लेख तो हुआ ही है साथ ही उसके शासकों का इतिहास भी उपलब्ध है[27]। बौद्ध साहित्य के विविध प्रसंगों में कोशल राज्य के उल्लेख मिलते है[28]। जैन परम्परा में कोशल के लिए 'कुणाल विषय' शब्दों का प्रयोग किया गया है[29]। महाकाव्यों एवं पुराणों में तो अनेक कोशल नृपतियों का उल्लेख हुआ है। इनमें इक्ष्वाकुवंशीय राजाओं की प्रशस्ति मिलती है, जिनमें से कुछ, जैसे– शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ, राहुल तथा प्रसेनजित के नाम बौद्ध ग्रन्थों में मिलते हैं। बौद्ध ग्रन्थों में उल्लिखित कुछ राजा पुराणों तथा महाकाव्यों में उल्लिखित राजाओं से भिन्न हैं। बौद्ध ग्रन्थों में विवृत्त कुछ राजाओं की राजधानी अयोध्या, कुछ की श्रावस्ती तथा कुछ की साकेत थी।

उल्लेख्य है कि अयोध्या के शासकों में से अनेक नाम ब्राह्मण उपनिषद तथा सूत्रों में प्राप्त है[30]। पौराणिक परम्परा में अयोध्या सहित इस पूरे क्षेत्र पर शासन करने वाला प्रथम शासक इक्ष्वाकु था, जिसे सूर्यवंशी क्षत्रियों का संस्थापक बताया गया है[31]। विभिन्न पौराणिक सूचियों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर डॉ0 विशुद्धानंद पाठक की मान्यता है कि प्रथम सत्रह पीढ़ियों तक इन सूचियों में लगभग समानता है। पौराणिक सूचियों का उल्लेख करते हुए उन्होंने 61वें शासक तक की सूची तैयार की है[32]।

छठीं शताब्दी ई0 पू0 में गोरखपुर जनपद की स्थिति मल्ल एवं कोशल महाजनपदों के बीच रही होगी। जनपद का पूर्वी भाग यदि मल्लों से सम्बन्धित था तो पश्चिमी, उत्तरी एवं दक्षिणी भाग कोसल से, क्योंकि महाभारत में वर्णित गोपालक राष्ट्र का नामोल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में नहीं प्राप्त होता। अतः गोपालक राज्य

इन दोनों शक्तियों में किसी एक के अधीन हो गया होगा। बहुत सम्भव है कि कोशल ने ही इसे अपने अधीन कर लिया हो।

महाभारत काल के पश्चात् इस क्षेत्र में एक नवीन राजनीतिक प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। इस नये राजनीतिक परिवेश में लोकतान्त्रिक या प्रजातांत्रिक राज्य अस्तित्व में आए[33]। इस प्रवृत्ति के प्रति विशेष झुकाव सम्भवतः भौगोलिक परिस्थितियों के कारण था[34]। गणतन्त्र प्रजातन्त्र की ओर अग्रसर हो रहे थे।[35] इनकी राजनीतिक शक्ति चुने हुए व्यक्तियों में केन्द्रित रहती थीं। ऐसा प्रायः क्षत्रिय राजाओं में होता था[36]। रिज डेविड्स प्रथम विद्वान थे, जिन्होंने बुद्ध एवं बिम्बिसार कालीन गणतंत्रों पर प्रकाश डाला था[37]।

गोरखपुर जनपद की सीमा में उपर्युक्त विशेषताओं वाले राज्यों में प्रथमतः पिप्पलिवन के मोरियों का नाम लिया जा सकता है,[38] जिनकी पहचान जनपद में अवस्थित राजधानी एवं उपधौलि नामक स्थानों से की जा सकती है[39]। मोरिय राज्य कोलियों के पश्चिम तथा पूर्व और उत्तर–पूर्व में मल्ल राज्य तक फैला हुआ था। यह स्थल पीपल के पेड़ों से आच्छादित था। यह क्षेत्र चार मील लम्बे एवं दो मील चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ था[40]। यहाँ सहनकोट नामक आयताकार किले का अवशेष प्राप्त होता है। बी0 सी0 लॉ पिप्पलिवन को पिपरहवा से समीकृत करते हैं[41]। किन्तु लॉ, महोदय का यह समीकरण निराधार है। श्री के0 एम0 श्रीवास्तव ने पिपरहवा का उत्खनन किया है, जिसकी पहचान शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु से की जा चुकी है[42]। पिप्पलिवन की निश्चित पहचान अभी तक नहीं हो सकी है। मोरियगण का विस्तार पूरब–पश्चिम दिशा में 25 मील आमी नदी तक, तथा 50 से 55 मील उत्तर–दक्षिण दिशा में घाघरा नदी तक था[43]। स्पष्ट है कि उक्त सीमाएँ गोरखपुर जनपदान्तर्गत आती हैं।

शाक्य नेपाल की सीमा पर हिमालय की तलहटी में आवासित थे। इनकी उत्तरी सीमा पर हिमालय की पर्वत श्रेणियाँ थी। पूर्व में रोहिणी तथा पश्चिम एवं दक्षिण में राप्ती नदी प्रवाहित थी। इनका क्रीड़ा-क्षेत्र राप्ती एवं रोहिणी की उपत्यका में प्रसरित था। शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु, गौतम बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी से आठ मील की दूरी पर रोहिणी के तट पर स्थित थी। रोहिणी नदी, शाक्यों एवं कोलिय प्रदेशों के बीच सीमा रेखा बनाती थी[44]। कपिलवस्तु की स्थापना कपिल ऋषि की कृपा से ही की गयी थी, अतएव इसका नामकरण इसी पृष्ठाधार में किया गया है[45]। महाभारत के तीर्थ यात्रा खण्ड में कपिलवस्तु के नाम से उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है[46]। बुद्धचरित् काव्य में इसे 'कपिलस्यवस्तु' कहा गया है[47]।

कोलिय रोहिणी के पूर्वी तट पर शाक्यों के पड़ोसी थे। जनपद के रामग्राम एवं देवदह के कोलियों का बुद्धयुगीन गणतंत्रों में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौतम बुद्ध की माता कोलिय परिवार की थीं। इस तरह

कोलिय और शाक्य सम्बन्धी थे। कोलिय वंश शाक्य कन्या और काशी के राजा राम से उत्पन्न हुआ था[48]। कोलिय और शाक्य दोनों प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुल के थे[49]। महावस्तु कोलियों को कोल ऋषि का वंशज बतलाता है[50]। कुणाल जातक के अनुसार कोलिय कोल वृक्ष पर रहते थे, इसलिए इन्हें कोलिय कहा गया[51]। कोलिय एवं शाक्य दोनों रोहिणी नदी के जल का उपयोग करते थे। रोहिणी नदी के जल पर अपने अधिकार को लेकर प्रायः उनमें विवाद होता रहता था[52]। इसी विवाद के दौरान एक बार भयंकर रक्तपात की सम्भावना बढ़ गयी थी। किन्तु बुद्ध ने हस्तक्षेप करके यह झगड़ा शान्त करा दिया[53]। गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अस्थि–अवशेषों को प्राप्त करने के लिए कोलियों ने उनके साथ अपनी सजातीयता प्रकट की थी[54]। कोलियों ने रामगढ़ ताल के किनारे बुद्ध के अस्थि–अवशेष के ऊपर स्तूप का निर्माण किया था[55]।

छठी शताब्दी ई0 पू0 में गोरखपुर जनपद में कोलिय गणतंत्र के दो केन्द्र थे, रामगढ़ एवं देवदह[56]। विशुद्धानंद पाठक की मान्यता है कि रामग्राम नाम इस वंश के पूर्वज राम के नाम पर आधारित है[57]। वर्तमान समय में रामग्राम की पहचान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। फिर भी डॉ0 पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत पहचान अपेक्षाकृत उपयुक्त प्रतीत होती है। डॉ0 पाण्डेय ने रामग्राम की पहचान गोरखपुर नगर के निकट स्थित रामगढ़ ताल से की है[58]। इनके अनुसार यह राष्ट्र रामजनपद कहलाया[59]। ए0 सी0 एल0 कार्लायल तथा बी0 सी0 लॉ, रामग्राम की पहचान वर्तमान रामपुर (देवरिया) से करते हैं[60]। लेकिन कार्लायल यह भी कहते हैं कि कोलियों द्वारा निर्मित स्तूप रामग्राम के दक्षिण–पूर्व न होकर उत्तर–पूर्व था[61]। कनिंघम ने देवकली नामक ग्राम से रामग्राम की पहचान की है[62]। ह्वेनसाँग ने कहा है कि रामग्राम से कपिलवस्तु की दूरी 300 ली और लुम्बिनी से 200 ली से भी अधिक है।

जनपद में कोलियों का दूसरा केन्द्र देवदह था। गौतम बुद्ध की माता महामाया, बुद्ध के जन्म का समय निकट आने पर परम्परा के अनुसार अपने पितृगृह देवदह जा रही थीं। संयोग से मार्ग में ही लुम्बिनी बन में उन्हें पुत्र लाभ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि देवदह लुम्बिनी बन के समीप ही कहीं रहा होगा। बुद्ध की माता महामाया कोलिय गणमुख्य की पुत्री थी[63]। एच0 सी0 राय चौधरी के अनुसार शाक्यों के राज्य में देवदह नाम का नगर था, जिसमें सम्भवतः कोलियगण का भी हिस्सा था[64]।

उपर्युक्त कथनों के पृष्ठाधार में ऐसा प्रतीत होता है कि देवदह पर कुछ समय तक दोनों का अधिकार रहा हो। दुल्वा की मान्यता है कि कपिलवस्तु के शाक्यों ने संख्या बढ़ने पर देवदह को प्राप्त

किया[65]। डॉ0 सी0 डी0 चटर्जी ने देवदह की पहचान गोरखपुर के फरेन्दा तहसील के अन्तर्गत बनरसिहा कला नामक स्थान से किया है[66]।

कोलिय गणराज्य के उत्तर में हिमालय, दक्षिण में राप्ती (अचिरावती) और दक्षिण–पूर्व में पिप्पलिवन के मोरिय; पड़ोसी के रूप में थे[67]। कोलियगण की पश्चिमी सीमा रोहिणी नदी बनाती थी[68]। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामग्राम में गोरखपुर सदर का दक्षिणी हिस्सा और बांसगाँव तहसील का पश्चिमी हिस्सा सम्मिलित था।

कोशल राज्य के गणतंत्रों के सबसे बड़े एवं महत्त्वपूर्ण गणतंत्र के रूप में मल्लों का उल्लेख किया जा सकता है[69]। मल्लों की उत्तर एवं उत्तर पश्चिमी सीमा, कोलिय. गणतंत्र को स्पर्श करती थी तथा दक्षिण एवं दक्षिण–पश्चिमी सीमा पर मोरिय गणराज्य स्थित था[70]। यह स्पष्ट हो चुका है कि जनपद के पूर्वी भाग में मल्लों का आधिपत्य था[71]। इस युग में मल्ल इतने शक्तिशाली थे कि कोशल के सभी गणतंत्रों को मिलाकर उन्हें मल्ल राष्ट्र कहा जाता था[72]। ये गणतंत्र साम्राज्यवादी शक्तियों का सामना करने के लिए अपनी राजनैतिक एकता के प्रति प्रतिबद्ध थे और उनके सामने कभी नहीं झुके[73]। मगध नरेश अजातशत्रु द्वारा वैशाली पर आक्रमण किए जाने पर जनपद के सभी गणतंत्र मगध नरेश के विरूद्व एकजुट हो गए थे[74]।

अब तक इस क्षेत्र में अवस्थित गणराज्यों की भौगोलिक सीमाओं की जो विवेचना की गयी हैं उनके आधार पर यह कहा जाता है कि गोरखपुर जनपद में जहाँ एक ओर रामग्राम एवं देवदह के कोलियों एवं पिप्पलिवन के मोरियों के गणराज्य थे, वहीं दूसरी ओर जनपद के पूर्वी तथा पश्चिमी हिस्से में अंशतः क्रमशः मल्लों एवं शाक्यों के गणराज्य थे। मल्लों की पहचान वर्तमान समय में कुशीनगर जनपद के कुशीनगर एवं पावानगर (फाजिलनगर) से निर्विवादतः हो चुकी है।

छठीं शताब्दी ई0 पू0 में गणतंत्रों की स्थिति अत्यंत सुदृढ़ थी। लिच्छवी, मल्ल इत्यादि अत्यंत सुगठित तथा शक्तिशाली थे, किन्तु राजतन्त्रों की साम्राज्यवादी नीति के समक्ष गणतंत्र सागर में तैरते हुए उस नीड़ के समान थे जिनका अस्तित्व सदैव खतरे में था[75]। प्रारम्भ में जब राजतंत्रात्मक राज्य पृथक–पृथक थे तथा उनकी शक्ति दुर्बल थी तब तो गणतंत्रों को अपना अस्तित्व बनाए रखने में किसी बड़ी कठिनाई का सामना न करना पड़ा लेकिन छठी शती ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में जब मगध, वत्स, कोशल तथा अवंति राजतंत्र शक्तिशाली हो गए तो गणतंत्रों का अस्तित्व संकट में पड़ गया। इस प्रकार गणतंत्रों के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण इन राजतंत्रात्मक राज्यों का अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होना था।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक में यह स्पष्ट हो चुका है कि छठी शती ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में उत्तर भारत का इतिहास दो विरोधी प्रवृत्तियों की ओर उन्मुख हो रहा था। इस ऐतिहासिक उथल–पुथल से कोशल

एवं इससे जुड़े हुए अन्य क्षेत्र भी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। यहाँ कोशल की भौगोलिक सीमा को केन्द्र में रखकर ही इन विरोधी शक्तियों के संघर्ष की चर्चा की जा रही है। इस संघर्ष में राजतंत्रों की साम्राज्य लिप्सा की नीति ने गणतंत्रों के अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

बिम्बिसार के समय मगध एवं कोशल के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। दोनों राज्यों के बीच इस निकटता के पृष्ठाधार में वैवाहिक सम्बन्ध काम कर रहे थे। वस्तुतः बिम्बिसार एक दूरदर्शी शासक था। कोशल के साथ वैवाहिक सम्बन्ध बनाकर उसने जहाँ एक ओर अपनी राजनीतिक हैसियत बढ़ायी, वहीं दूसरी ओर दहेज में काशी का एक ग्राम प्राप्त कर उसने अपनी आर्थिक स्थिति भी मजबूत की। ध्यातव्य है कि काशी उस समय तक कोशल का अंग बन चुका था। बिम्बिसार के पुत्र एवं उत्तराधिकारी अजातशत्रु के समय में राजनीतिक परिस्थिति बदल गयी, जिसके परिणाम स्वरूप काशी के उस ग्राम को लेकर प्रसेनजित के साथ युद्ध हुआ, जिसका अंत प्रसेनजित की पुत्री वजिरा के साथ मगध नरेश के विवाह के रूप में हुआ[76]। अजातशत्रु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियों एवं कोशल के बीच सम्बन्धों के विषय में जानकारी का अभाव है। लेकिन यह स्पष्ट है कि नन्द शासक महापद्मनंद ने इसे (कोशल को) अपने राज्य में मिला लिया। कथासरित्सागर से इसकी पुष्टि हो जाती है[77]।

शाक्यों के पतन की पृष्ठभूमि में उनके स्वाभिमान को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। कोशलपति प्रसेनजित का विवाह शाक्यों की दासी–पुत्री वासभखत्तिया के साथ छलपूर्वक हुआ था। शाक्यों द्वारा किए गए इस छल से प्रसेनजित अत्यधिक क्रोधित हुआ और अपने अपमान का बदला लेने के लिए सैन्य कार्यवाही के लिए तत्पर हुआ, लेकिन गौतम बुद्ध के समझाने–बुझाने पर मामला शांत हो गया। लेकिन प्रसेनजित के दासी–पुत्र विड्डूभ (वासभखत्तिया से उत्पन्न) ने पिता के इस अपमान को बहुत गम्भीरता से लिया। फलतः विड्डूभ ने अपने पिता के अपमान का बदला लेने का निश्चय किया और इसमें सफलता प्राप्त की[78]। बहुत सम्भव है कि कोलिय भी शाक्यों की सहायता के लिए उनके कदम से कदम मिलाए हों। क्योंकि यह उल्लेख किया जा चुका है कि शाक्य और कोलिय दोनों सम्बन्धी थे। इस संघर्ष में कोशल नरेश विड्डूभ ने शाक्यों एवं कोलियों, दोनों को पराजित किया। परिणामतः शाक्य एवं कोलिय राज्य कोशल में मिला लिए गये।

राजतंत्रों द्वारा विभिन्न गणराज्यों को अपने अधीन करने के क्रम में लिच्छवियों एवं अजातशत्रु के बीच जो संघर्ष हुआ उसका न केवल मगध के इतिहास में बल्कि उत्तर भारत के इतिहास में भी विशेष महत्त्व है। कहा जाता है, इस युद्ध में अजातशत्रु ने महाशिलाकण्टक तथा रथमूसल नामक गुप्त युद्धास्त्रों का प्रयोग किया था। इस युद्ध में अजातशत्रु के विरूद्ध लिच्छवियों की सहायता नौ मल्लगण ने की थी। डॉ0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार, नौमल्लगण से प्रयोजन– मल्ल राष्ट्र और गोरखपुर के अन्य सहायक गणराज्य से है[79]।

इस युद्ध में लिच्छवियों की पराजय हुयी। चूँकि मल्ल भी लिच्छवियों के साथ थे, अतएव उन्हें भी पराजय का मुँह देखना पड़ा होगा।

यह उल्लेख किया जा चुका है कि कोशल एवं मगध से लगे हुए अन्यान्य राज्यों का विलय मगध साम्राज्य में हो गया। इस प्रकार मगध ने अपने पड़ोसी राज्यों की कीमत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। नन्द लोग मगध की राजसत्ता के अपहारक थे। पुराणों के अनुसार महापद्म या महापद्मपति नन्दवंश का प्रथम नन्द था[80]। महापद्मनन्द ने व्यापक दिग्विजय किया, जिसका वर्णन कलियुग राजवृत्तांत में प्राप्त होता है[81]। पुराणों के अनुसार महापद्मनन्द परशुराम के समान समस्त क्षत्रियों का विनाशक तथा सम्पूर्ण पृथ्वी का एकछत्र शासक था[82]। प्रश्न उठता है कि वे कौन से क्षत्रिय राजवंश थे, जिन्हें महापद्म ने उन्मूलित किया तथा जिनके लिए वह परशुराम तुल्य सिद्ध हुआ। पुराण इस विषय में मौन नहीं हैं। मत्स्यपुराण में महापद्मनन्द के समकालीन ऐक्ष्वाकु, पांचाल, काशेय, हैहय, कलिंग, अश्मक, कुरू, मैथिल, शूरसेन तथा वीतिहोत्र का उल्लेख मिलता है[83]। महापद्म द्वारा विजित राज्यों में इक्ष्वाकुओं का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है। यह स्पष्ट है कि कोशल के इक्ष्वाकुओं पर उसने आक्रमण किया। महापद्म द्वारा कोशल विजय की पुष्टि कथासरित्सागर द्वारा भी हो जाती है। इसमें अयोध्या के निकट एक सैनिक शिविर का उल्लेख किया गया है[84]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय का विचार है कि गोरखपुर जनपद में स्थित गणराज्य भी इक्ष्वाकुवंश से सम्बन्धित थें। अतः कोशल के साथ इनमें बचे–खुचे शाक्य, मौर्य तथा मल्ल भी सम्मिलित थे। इस युद्ध में शाक्य और कोलिय गणतंत्र सदा के लिए समाप्त हो गए लेकिन मल्ल और मौर्य गणों ने मगध की अधीनता स्वीकार कर अपने अस्तित्व को बचाए रक्खा, क्योंकि मौर्य साम्राज्य के उदय के समय ये दोनों राज्य जीवित दिखायी पडते हैं[85]।

नन्द–युग के पश्चात् मौर्य वंश का शासन आरम्भ हुआ। इस युग में पहली बार एक शाही सत्ता के अंतर्गत सम्पूर्ण भारत का राजनीतिक एकीकरण हुआ था, जिसने अपनी भौगोलिक सीमा के बाहर स्थित भूमि पर भी अपने प्रभुत्व का दावा किया था। नन्दों के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर अधिष्ठित हुआ[86]। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य 6 लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य में मिला लिया। जस्टिन भी स्वीकार करते हैं कि समूचा भारत चन्द्रगुप्त के अधीन था। डॉ0 एस0 कृष्ण स्वामी आयंगर ने लिखा है कि मौर्य लोग एक बड़ी सेना लेकर तिनबेली जिले की पोडियल पहाड़ी तक पहुँचे[87]। मुद्राराक्षस के अनुसार चन्द्रगुप्त की विजय पताका सुदूर दक्षिण में हीरे मोतियों से भरे प्रदेश, पाण्ड्य राज्य

तक पहुँच चुकी थी[88]। इन विवेचनों से द्योतित होता है कि मौर्य साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत पर गंगा से लेकर दक्षिण सागर तट तक विस्तृत था और सम्भवतः गोरखपुर परिक्षेत्र भी मौर्य साम्राज्य का अंग रहा होगा।

इस प्रकार पंजाब और सिन्ध से सिकन्दर की, और गंगाघाटी से नन्दों की सत्ता का उन्मूलन करके मौर्य–साम्राज्य की आधारशिला रखने तथा भारत को एकताबद्ध करने का श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य को प्राप्त है। मौर्य राजवंश के इस शिखर पुरुष का राज्यारोहण 322 ई0 पू0 में हुआ।

मौर्यों के पश्चात् गोरखपुर मण्डल क्रमशः शुंग, कण्व एवं कुषाण शासकों के बाद गुप्तों एवं मौखरियों के अधीन रहा। मौखरियों के लगभग 46 वर्ष के शासन के पश्चात् गोरखपुर हर्षवर्द्धन के आधिपत्य में आ गया था जिसके प्रमाण स्वरूप मधुबन (आजमगढ़) से प्राप्त ताम्र–पत्र अभिलेख उल्लेखनीय है।

आठवीं सदी में यह क्षेत्र कन्नौज के शक्तिशाली राजा यशोवर्मन के अधीन आ गया। इसके उत्तराधिकारी सफल नहीं हुये, और यह क्षेत्र पाल वंश के आधिपत्य में आ गया। इनसे मुक्त होकर चन्देल राजा विद्याधर के काल में यह परिक्षेत्र पुनः पाल वंश के अधीन आ गया। इसके आठ राजाओं ने इस परिक्षेत्र पर राज्य किया।

1192 में दिल्ली, 1194 में कन्नौज तथा 1195 में बनारस पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य कायम हो जाने के बाद यह क्षेत्र तुर्कों के अधीन आ गया। मध्यकाल में यह क्षेत्र अनेक बार मुस्लिम आक्रमणकारियों के विध्वंश का शिकार हुआ। 1070 ई0 में पाल वंशीय राजा सूरपाल द्वारा निर्मित विष्णु मंदिर को नष्ट किया गया। अलाउद्दीन खिलजी ने गोरखनाथ पीठ को क्षति पहुँचायी और गोरखनाथ की प्रतिमा के स्थान पर मस्जिद निर्मित कराने की आज्ञा दी थी। बंगाल आक्रमण के समय फिरोजशाह तुगलक गोरखपुर के पास से गुजरा था और यहाँ के अमीरों से कर वसूल किया था। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल में अवध पाँच भागों में बँटा था जिसमें से एक का मुख्यालय गोरखपुर था।

जहाँगीर के शासनकाल में बाँसी और रूद्रपुर के राजाओं ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर लिया था। बाद में औरंगजेब के शासन काल में यह क्षेत्र मुगल अधिकार में आ गया। औरंगजेब का पुत्र मुहम्मद मुहज्जम बहादुर शाह प्रथम गोरखपुर के जंगलों में शिकार खेलने आया था और गोरखपुर का नाम मुहज्जमाबाद कर दिया। किन्तु यह नाम प्रचलित नहीं रह सका।

भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन काल में 1801 ई0 में गोरखपुर अंग्रेजों के अधीन एक जिला घोषित हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल में गोरखपुर में पाँच तहसीलें थीं। 1818 में महराजगंज,

1840 में भौवापार के स्थान पर बांसगाँव, 1902 में सलेमपुर के बदले देवरिया तहसील का गठन हुआ। 1947 में देवरिया को स्वतंत्र जिले के रूप में मान्यता प्रदान कर दी गयी।

स्वतंत्रता आंदोलन में गोरखपुर का विशेष योगदान रहा है। 1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों में से एक बंधुसिंह का जन्म, ग्राम डुमरी कोर्ट, थाना चौरी चौरा के स्वर्गीय शिवप्रसाद सिंह के घर हुआ था। बाबू बंधुसिंह गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से अंग्रेजों को मारते और उनका सिर काट कर देवी माँ के चरणों में बलि स्वरूप चढ़ाते। इस कार्य में उनके भाई भी उनका साथ देते। परन्तु किसी की मुखबिरी पर वे अंग्रेजों द्वारा गिरफ्तार किये गये और 12 अगस्त, 1857 को अलीनगर चौराहे पर खुलेआम फाँसी दी गयी। देवी माँ का आशीर्वाद उनके साथ था। फाँसी का फन्दा सात बार उनके गले में डाला गया और वह बार–बार टूट जाता। अंतिम बार बंधु सिंह ने देवी माँ से अपने चरणों में बुलाने की स्वयं प्रार्थना की और खुद फॉसी का फंदा अपने गले में डालकर झूल गये।

कहते हैं कि बंधुसिंह की गर्दन फाँसी के फन्दे पर लटकते ही उधर देवी के स्थान पर तरकुल का पेड़ बीच से टूट गया और उसमें से खून की धारा बहने लगी, जिससे देवी के सामने स्थित फरने नाला खून से लाल हो गया। यह बात अतिशयोक्ति भले ही लगे, मगर उस समय से देवी माँ का स्थान 'तरकुलहा देवी का स्थान' के नाम से प्रसिद्ध हो गया, जहाँ देश के कोने–कोने (कलकत्ता, मुम्बई) से लोग आते हैं। यहाँ का मसाला व्यापार भी प्रसिद्ध है। बाबू बंधुसिंह की शहादत आजादी प्राप्ति तक पूर्वांचल के लोगों को आजादी के लिए प्रेरणा देती रही।

ऐतिहासिक चौरीचौरा काण्ड इसी जनपद में हुआ, जिससे जन इतिहास, क्षेत्रीय इतिहास और स्थानीय इतिहास का महत्त्व उजागर होता है। 4 फरवरी, 1922 को यहाँ के नागरिकों ने पुलिस के बर्बर अत्याचार से त्रस्त होकर चौरीचौरा थाने के थानेदार सहित 19 सिपाहियों को थाने परिसर में आग लगाकर जला दिया। इससे क्षुब्ध होकर गाँधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। जवाहरलाल नेहरू व अन्य राष्ट्रीय नेताओं ने गाँधी जी के इस निर्णय का विरोध किया।

9 अगस्त, 1925 को 8 डाउन सहारनपुर–लखनऊ पैसेन्जर गाड़ी को काकोरी रेलवे स्टेशन के आगे रोककर सरकारी खजाना लूट लिया गया। इसमें पं0 रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह खाँ वारसी, केशव, चक्रवर्ती, राजेन्द्र लाहिणी, शचीन्द्रनाथ सान्याल, मुरारीलाल, मुकुन्दीलाल, चन्द्रशेखर आजाद, बनवारी लाल और मन्मथ गुप्त शामिल थे। बाद में पूरे हिन्दुस्तान से इन क्रांतिकारियों को गिरफ्तार कर लखनऊ लाया गया और मुकदमा चलाया गया। 6 अप्रैल, 1927 को सेशन जज मि0 हैमिल्टन ने पं0 रामप्रसाद बिस्मिल को

निर्दयी और हत्यारा सम्बोधित करते हुए प्राण निकल जाने तक फाँसी पर लटकाने का आदेश दिया। 19 दिसम्बर 1927 को गोरखपुर जिला जेल में उन्हें प्रातः फाँसी दी गयी। बन्दे मातरम् और ऊँ का स्वर उनके होठों पर था, जिसकी गूँज ने गोरखपुरवासियों को प्रेरणा प्रदान की।

यह जिला गुरू गोरखनाथ, सन्त अहमद अलीशाह तथा महावीर स्वामी, की कर्म स्थली रहा है। छठी शताब्दी ई0 पू0 में भी इस जनपद के अन्तर्गत मल्लों, लिच्छवियों, शाक्यों, कोलियों एवं मौर्यों आदि के लगभग 10 गणराज्य थे। आज भी यहाँ का सामान्य जन लोक संवेदना की अपनी प्राचीन धरोहर सँजोए हुए है। यहाँ की संस्कृति ने विश्व के दूसरे देशों, मारीशस, फिजी, त्रिनीदाद, वर्मा, श्रीलंका, नेपाल आदि की संस्कृति को प्रभावित किया है।

आठवीं शताब्दी के पूर्व गोरखपुर के किसी भी मुहल्ले का कोई इतिहास उपलब्ध नहीं है। आठवीं शताब्दी में भौवापार नरेश बसन्त सिंह ने राप्ती नदी के दक्षिणी तट पर बसन्तपुर बसाया। इनके राज्य में नदी का उत्तरी भाग था। बसंतपुर में उन्होंने अपनी सैनिक छावनी कायम की । सैनिक छावनी उन्होंने इसलिए बनायी थी कि राप्ती नदी के उत्तरी तट से डोमकटार क्षत्रियों के राज्य की सीमा शुरू होती थी, और वे भौवापार राज्य पर आक्रमण करके उनकी फसलें कटवा ले जाते थे। उस समय राप्ती नदी का मार्ग सुमेर सागर, रेती चौक और तुर्कमानपुर होकर आगे जाता था। खूनीपुर, इस्माइलपुर, बख्शीपुर आदि जितने भी 'पुर' या 'पार' नामधारी गाँव या मुहल्ले हैं, सभी राप्ती नदी के कगार पर बसे हुए हैं। उर्दू नामधारी मुहल्लों का नामकरण मुगलकाल में औरंगजेब के बाद हुआ।

वास्तव में वर्तमान गोरखपुर का इतिहास 300 वर्षों से ज्यादा पुराना नहीं है। उस समय यहाँ केवल बढ़ई, लुहार और कुम्हारों की आबादी ज्यादा थी। औरंगजेब के समय एक मुगल बादशाह यहाँ आया था, जिसके सम्मान में घण्टाघर चौक यानि उर्दू बाजार में मुशायरा हुआ था। उसी के बाद उर्दू बाजार, रेती चौक, इस्माइलपुर तथा खूनीपुर मुहल्ले आबाद हुए। अलीनगर को सब्जपोश मुसलमानों ने बसाया।

सन् 1867 के पहले गोरखपुर जनपद नहीं था। यह आजमगढ़ जिले का एक ताल्लुका था। सन् 1857 में यहाँ एक ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट बैठते थे। गदर के समय बर्ड नाम के ज्वाइंट मजिस्ट्रेट यहाँ तैनात थे। गदर के असफल होने पर अंग्रेजों ने अपने हिन्दुस्तानी मित्रों को इस स्थान की जमींदारी मुफ्त दे दी। उनमें से कुछ ने रायगंज, साहबगंज, मियांबाजार, बख्शीपुर आदि बसाया।

सन् 1867 में इसे नगरपालिका का दर्जा प्राप्त हुआ, और प्रशासनिक दृष्टि से आजमगढ़ से पृथक करके अलग जिला बनाया गया।

गोरखपुर का विकास सन् 1914 के बाद हुआ, जब यहाँ रेलवे लाइन आ गयी। बड़े व्यापारी यहाँ आने लगे और यह एक बड़ा व्यापारिक केन्द्र बन गया। जिले की फौजदारी, दीवानी और माल की अदालतें तो उन्नीसवीं सदी के आते–आते यहाँ स्थापित हो गयीं। कचहरी और अदालतों के काम में कायस्थों ने भी अपना शहरीकरण शुरू कर दिया। धीरे–धीरे यहाँ मुसलमान, कायस्थ और वणिक वर्ग अधिक प्रभावी हो गया।

गोरखपुर में अवध–तिरहुत रेलवे का बड़ा दफ्तर स्थापित हुआ, जो अब पूर्वोत्तर रेलवे के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही लोको वर्कशाप बन गया, जिससे इस शहर का और भी फैलाव हो गया। 1951 तक तो गोलघर, बेतियाहाता जैसे मुहल्ले थे ही नहीं। उर्दू–बाजार, बख्शीपुर और अलीनगर का ही नाम था।

वर्तमान में गोरखपुर नगर उत्तर में झुंगिया बाजार, दक्षिण में नौसड़, पूरब में इंजीनियरिंग कालेज और पश्चिम में राप्ती नदी के किनारे तक पसरा हुआ है। महानगर की आबादी लगभग 7 लाख हो गयी है।

1857 में मुहम्मद हसन और डुमरी नरेश बन्धुसिंह के आह्वान पर यहाँ के लोगों ने तत्कालीन ज्वाइंट मजिस्ट्रेट, बर्ड की कोठी में आग लगा दी। 1857 के गदर में नरहरपुर, सतासी, डुमरी, चिल्लूपार की रियासतों ने भी भाग लिया। इसमें राजा हरिप्रताप सिंह, मुसरफ खाँ, रमजान अली खाँ आदि शहीदों ने अपनी कुर्बानियाँ दीं।

16 मार्च, 1919 को आंदोलन ने और तेजी पकड़ी। फिराक साहब, अनवर अली, विन्दवासिनी आदि ने खिलाफत आन्दोलन द्वारा जनजागरण किया। 1920 में फिराक साहब ने डिप्टी कलक्टर के पद से त्यागपत्र दे दिया और असहयोग आंदोलन में कूद पड़े। बाबा राघवदास, भगवती प्रसाद तथा गौरीशंकर मिश्र ने आंदोलन को और आगे बढ़ाया।

क्षेत्रफल

गोरखपुर पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद है। इसके उत्तर में महराजगंज, पश्चिम में बस्ती एवं सिद्धार्थनगर, दक्षिण में आजमगढ़ तथा पूर्व में देवरिया जिले हैं। गोरखपुर जनपद में कहला से प्राप्त अभिलेख में इस क्षेत्र के लिए 'सरयूपार' शब्द का प्रयोग किया गया है[89]। गाहड़वाल अभिलेखों (पाली एवं पीपीगंज) में सरयूपार के स्थान पर 'सरूआर' शब्द प्रयुक्त है[90]। ध्यातव्य है कि दोनों ही पद एक ही भौगोलिक सीमा का प्रतिनिधित्व करते हैं।

सरयूपार क्षेत्र का विस्तार हिमालय पाद से दक्षिण में सरयू नदी तक है। सरयूपार मैदान का विस्तार 26°5′ उत्तर से 28°30′ उत्तर एवं 80°75′ पूर्व से 85°29′ पूर्व तक है। सरयू के उत्तर, स्थित सरयूपार मैदान में इस समय आठ जनपद–बहराइच, गोण्डा, बस्ती, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर, महराजगंज, देवरिया एवं कुशीनगर सम्मिलित हैं। यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम लगभग 270 कि0 मी0 लम्बा और उत्तर से दक्षिण 160 कि0मी0 चौड़ा है। इस भू–भाग का क्षेत्रफल 33236 वर्ग कि0मी0 है[91]।

आधुनिक गोरखपुर जनपद (20°45′ उत्तरी अक्षाँश एवं 83°22′ पूर्वी देशान्तर पर) उत्तर प्रदेश के उत्तर–पूर्वी भाग में स्थित है, जिसकी उत्तरी सीमा नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को स्पर्श करती है। सरयू नदी इसे आजमगढ़ से पृथक करती है। जनपद की सम्पूर्ण लम्बाई 124 कि0मी0 एवं चौड़ाई 52 कि0मी0 है[92]।

वर्तमान गोरखपुर जनपद 25.51 अक्षांश उत्तरी से 26.20 अक्षांश उत्तरी तथा 83.25 पूर्वी देशांतर से 84.20 पूर्वी देशांतर के मध्य स्थित है। जिले का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 3483.81 वर्ग कि0 मी0 है। इसके दक्षिणी सीमा पर घाघरा नदी, पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। यह जिला राप्ती नदी के तट पर स्थित है। जिले में आमी, गोर्रा कुआनो, बरही, रोहिन आदि नदियों का प्रवाह है, जो बरसात में उग्र रूप में परिलक्षित होती हैं। (मानचित्र संख्या–1)

तहसीलें

जिले में 6 तहसीलें हैं– गोरखपुर सदर, चौरीचौरा, सहजनवां, खजनी, बांसगाँव तथा गोला। इस जनपद में 19 विकास खण्ड–कैम्पियरगंज, जंगलकौड़िया, भटहट, चरगाँवा, पिपराइच, सरदारनगर, ब्रह्मपुत्र, खोराबार, कौड़ीराम, गगहा, बड़हलगंज, गोला, बेलघाट, उरूवा, बांसगाँव, खजनी, पिपरौली, सहजनवां तथा पाली हैं। आंशिक रूप से पनियरा तथा फरेन्दा, जो कि महराजगंज जिले के विकास खण्ड हैं, के भी गाँव गोरखपुर जिले में स्थित हैं। क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से प्रदेश में जनपद का 51वाँ स्थान है। 31 मार्च, 1991 की स्थिति के अनुसार आबाद ग्रामों की संख्या 2882 है।

जिले में एक नगर निगम, गोरखपुर तथा पाँच टाउन एरिया क्रमशः गोला, बड़हलगंज, मुंडेरा बाजार, पिपराइच तथा पीपीगंज हैं। जनपद में कुल तीन मण्डी समितियाँ गोरखपुर, सहजनवाँ तथा मुण्डेरा बाजार हैं।

नदियाँ और झीलें

जल एक ऐसा प्राकृतिक उपादान है, जिसके अभाव में मानव जीवन सम्भव नहीं है। यही कारण है कि प्राचीन समय से ही जल को दैवीय मान्यता मिलती आ रही है। जल, जीवन के लिए एक अनिवार्य शर्त है, क्योंकि जीवन का कोई भी पहलू इसके बिना संचालित नहीं हो सकता।

नदियाँ

यह अत्यन्त सौभाग्य एवं संयोग की बात है कि जल के महत्त्वपूर्ण स्रोत, नदियों के मामले में गोरखपुर परिक्षेत्र बहुत समृद्ध है। जनपद में नदियों का जाल बिछा हुआ है। इनमें प्रमुख, नारायणी (बड़ी मण्डक) रोहिन, राप्ती, आमी, तैरना और सरयू (घाघरा) नदियाँ हैं[93]।

राप्ती नदी गोरखपुर जनपद में जल के मुख्य स्रोत के रूप में जानी जाती है। यह शहर के पश्चिमी किनारे से प्रवाहित होती है। घाघरा, राप्ती, रोहिन और आमी नदियों की घाटियाँ अपने निचले स्तर पर भी चौड़ी और सामान्य स्तर से अधिक गहरी हैं। बाढ़ नदी के दोनों किनारों के मध्य सीमित रहता है।

गण्डक को छोड़कर सम्पूर्ण जिले का प्रवाह-तंत्र, घाघरा नदी (सरयू) में जाता है। कई स्थानों पर प्रवाहतंत्र अपूर्ण है, विशेषतः राप्ती बेसिन में।

राप्ती नदी : राप्ती का असली नाम इरावती है, जो अपभ्रंश होकर रवाती के नाम से जानी जाती है। इसके अनेक नाम यथा, अचिरावती, अजिरवती, ऐरावती प्राप्त होते हैं[94]। चीनी यात्री ह्वेनसाँग ने इसे अचिलों नाम से पुकारा है, जो श्रावस्ती नगर के दक्षिण–पूर्व की ओर बहती थी[95]। इसी नदी को गोरखपुर जनपद की आधुनिक राप्ती नदी से समीकृत किया गया है, जिसके पश्चिमी तट पर कोशल की तृतीय या अंतिम राजधानी श्रावस्ती का प्राचीन नगर स्थित था[96]। यह एक गहरी नदी थी, क्योंकि इसका जल अगाध था[97]। यह नदी नेपाल के बाहरी क्षेत्र से निकलती है और बहराइच, गोण्डा तथा बस्ती से बहते हुए यह गोरखपुर जनपद में तलनतवा और बेरसर के बीच में प्रवेश करती है। कुछ दूर तक यह जनपद की सीमा बनाती है। तत्पश्चात् दक्षिण–पूर्व दिशा की ओर बहती है, पुनः यह रिंगौली से जयनारायनपुर गाँव तक गोरखपुर और बस्ती के मध्य सीमा बनाती है। तत्पश्चात् दक्षिण दिशा में मुड़ जाती है। 20 कि0 मी0 बहने के बाद, पूरब की ओर मुड़कर गोरखपुर शहर को स्पर्श करती हैं। पुनः दक्षिण–पूर्व की ओर मुड़ जाती है। इस दिशा में काफी घुमावदार रास्ते को तय करते हुए बांसगाँव तहसील और देवरिया जनपद के बीच सीमा बनाते हुए बाँसगाँव तहसील के दक्षिण पूर्वी किनारे से जनपद को छोड़ देती है। नदी के मार्ग परिवर्तन से

कभी–कभी पूरा का पूरा गाँव इसके प्रवाह में विलीन हो जाता है। कभी–कभी आने वाले बाढ़ अपने पीछे सिल्ट और बालू बहुत अधिक मात्रा में छोड़ जाते हैं, जो साधारणतया फायदेमंद होता है। क्योंकि यह बहुत ही उपजाऊ प्रकृति का होता है। यह नदी बरहज से पाँच किमी0 पश्चिम, सरयू में मिल जाती है[98]। ग्रीष्म ऋतु में बालुकामय नदी तल छोड़कर सूख जाया करती थी[99]। इस नदी के किनारे रहने वाले लोग, नदी में जाल फेंककर मछली पकड़ने के अभ्यस्त थे[100]। राप्ती नदी में प्रलयकारी बाढ़ आने का भी उल्लेख है[101]।

सरयूपार क्षेत्र से प्रवाहित होने वाली नदियाँ मार्ग परिवर्तन के लिए कुख्यात रही हैं। नदियों एवं उनके समीपवर्ती क्षेत्रों में छाड़न झीलों तथा शुष्क नालों की स्थिति से स्पष्ट होता है कि इनकी उत्पत्ति प्रवाहित नदियों के मार्ग परिवर्तन के परिणाम स्वरूप हुयी है। राप्ती नदी के अत्यंत सर्पाकार मार्ग तथा स्थान–स्थान पर छाड़न झीलों की उपस्थिति से स्पष्ट है कि इस नदी में मार्ग परिवर्तन अधिक हुआ है। अपने ऊपरी भाग से लेकर संगम स्थल के मध्य, इसने अनेक स्थानों पर मार्ग परिवर्तन किया है। गोरखपुर नगर के समीप राप्ती ने कई बार मार्ग परिवर्तन किया है। रामगढ़ ताल इसकी एक छाड़न मात्र है[102]। प्रो0 उजागिर सिंह ने इस परिवर्तन का अध्ययन कर यह प्रमाणित किया कि इसके कारण पाँच बार नगर सन्निवेश में परिवर्तन हुआ[103]।

1. प्रारम्भिक काल में राप्ती नदी पश्चिम में रेलवे लाइन से उत्तरी भाग में सूरजकुण्ड, गोरखनाथ, उत्तरी हुमायूँपुर, विष्णुमंदिर, असुरनताल, आम बाजार के उत्तर बसहिया नाला, जेल, बिछिया कालोनी होती हुयी गोरखपुर कैण्ट स्टेशन से पहले दक्षिण को मुड़कर, रामगढ़ से प्रवाहित होती थी।

2. प्राचीन काल में नदी दक्षिण को स्थानांतरित होकर इलाहीबाग के पास वर्तमान नगर के लगभग मध्य से सुमेर सागर होती हुयी, गोरखपुर रेलवे स्टेशन के दक्षिण से रेलवे गोल्फ कोर्स के मार्ग से रामगढ़ताल से प्रवाहित होती थी।

3. मुस्लिम काल में राप्ती नदी दक्षिण को स्थानांतरित होकर पुराने किले के उत्तरी भाग से बगुलादह तथा कोपादह होती हुयी, बिलन्दपुर के पश्चिम–दक्षिणी भाग से रामगढ़ ताल होती हुयी, प्रवाहित होती रही।

4. 1916–17 के आस–पास राप्ती नदी इलाहीबाग के पश्चिमी भाग में रोहिन नदी से मिलकर, बसन्तपुर निर्मित पुराने किले, रैन बसेरा तथा राजघाट के पश्चिमी भाग से दक्षिण को प्रवाहित होने लगी।

5. सम्प्रति राप्ती नदी राजघाट के समीप गोरखपुर की सीमा को स्पर्श करती है, तथा दक्षिण को मुड़ जाती है। राप्ती एवं रोहिन नदियों का संगम स्थल सन् 1973–74 से सन् 1976–77 के बीच लगभग 1.5 किमी0 दक्षिण को स्थानांतरित हुआ है।

भूमि की संरचना के आधार पर राप्ती नदी, जनपद को दो भागों में विभाजित करती है। प्रथम, उत्तरी–पूर्वी भाग, जिसमें तराई का क्षेत्र सम्मिलित है तथा दूसरा दक्षिण–पश्चिमी भाग, जहाँ बाँगर और कछार दोनों हैं। इस प्रकार यह जनपद को कर्णवत् विभाजित करती है। जनपद में इसके प्रवाह के साथ ही विशाल भूखण्ड कछार के रूप में परिणत हो जाता है, जो कृषिकार्य के लिए अत्यन्त उर्बर क्षेत्र कहा जा सकता है। अस्तु, राप्ती कछार के दोनों तटबंध, प्राचीन काल के मानव के अधिवास हेतु सर्वथा अनुकूल थे। क्योंकि निवास के लिए ऊँची भूमि और कृषि हेतु उपजाऊ कछारी भू–भाग, दोनों ही राप्ती के तटबंध पर सुलभ थे। ऐसे बहुत से प्राचीन स्थल प्रकाश में आए हैं, जो राप्ती के उर्बर भू–खण्ड के समीप थे, यथा–सोहगौरा, कोठा आदि। प्राचीनकाल में व्यापार हेतु भी यह नदी सर्वथा उपर्युक्त थी। इसलिए प्राचीन बस्तियों के अवशेष राप्ती के तट पर मिलना, अत्यन्त स्वाभाविक है।

घोंघी नदी : राप्ती के बाएँ किनारे पर मिलने वाली पहली नदी घोंघी है। यह नदी नेपाल से निकलकर जनपद की उत्तर–पश्चिम सीमा बनाती हुयी, दक्षिण की ओर बढ़ती है, और धानी बाजार से आगे राप्ती में मिल जाती है[104]। इसकी मुख्य धारा भारत और नेपाल के बीच अंतर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करती है। दक्षिण–पश्चिम की ओर बहते हुए, डांडा और डुनरी, (Danda and Dunri) दो छोटी नदियों की धाराएँ इसके बाएँ किनारे पर मिलती हैं। इसके बाद यह दक्षिण की ओर मुड़ जाती है और बस्ती जिले के साथ कुछ दूर तक सीमा बनाती है। बृजमानगंज (Bridgmanganj) के बाद यह नदी दो भागों में बँट जाती है, जो पुनः सिकरी (Sikri) के धमेला (Dhamela) और रिगौली के नजदीक एक हो जाती है। यह गहरी तथा निश्चित दिशा में प्रवाहित होने वाली नदी है। यद्यपि वर्षा के समय यह काफी चौड़ी हो जाती है, लेकिन इसके बाद (वर्षा ऋतु समाप्त होने पर) बहुत तेजी से सिकुड़ कर सँकरी हो जाती है। धमेला मात्र राप्ती का पुराना चैनेल (Chanell) है, जो कुन्हरा और बस्ती के अन्य नदियों से जल ग्रहण करती है और 15 किमी0 बहने के पश्चात् करमैनी के निकट राप्ती में पुनः मिल जाती है।

रोहिन : राप्ती की दूसरी मुख्य सहायक रोहिन नदी है। यह नदी नेपाल से निकलकर नौतनवाँ कस्बे (भारत, गोरखपुर जनपद) के पास जनपद में प्रवेश करती है और दक्षिण वाहिनी होकर गोरखपुर के पश्चिम डोमिनगढ़ नामक स्थान पर राप्ती से मिल जाती है[105]। बरसात के दिनों में मानीराम से लेकर डोमिनगढ़ के बीच यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कछारी भूखण्ड का निर्माण करती है। यह कछार भूमि कृषि

कार्य हेतु अत्यन्त उपजाऊ है। इस नदी के जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। यह कछार भूमि कृषि-कार्य हेतु अत्यन्त उपजाऊ है। इस नदी के जल का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। शाक्य एवं कोलिय गणों ने रोहिणी नदी को एक ही बाँध से बाँधा था और वे इस नदी के जल से कृषि-कर्म किया करते थे[106]। प्राचीन काल में यह नदी शाक्य एवं कोलिय प्रदेश की मध्यवर्ती सीमा थी[107]। इसी नदी के जल के बँटवारे से सम्बन्धित विवाद को भगवान बुद्ध ने समाप्त किया, जो शाक्यों और कोलियों के बीच उत्पन्न हुआ था[108]। इस नदी का समीकरण कनिंघम ने 'रोबाई' या 'रोहवैनी' से स्थापित किया है[109]। रोहिणी का तादात्म्य नेपाल की तराई से बहने वाली नदी रोहिन के साथ भी स्थापित किया गया है[110]। इसके किनारों पर कृषि योग्य भूमि होने के कारण, प्राचीन काल के मानव का आकर्षण कृषि-कार्य हेतु अवश्य हुआ होगा। फलतः उसने अपना स्थायी अधिवास यहाँ बनाया होगा। रोहिन नदी अपने बाएँ किनारे की ओर सखौनी से 9 किमी0 आगे बघेला नदी में मिलती है। पियस या झरिन (Piyas or Jharain) इस जनपद में ठूँठीबारी से प्रवेश करती है और मलून (Malaun) नदी में मिलती है। मलून, लहरौली से निकलती हैं और नदवा नाला (Nadao Nala) तथा अन्य छोटे-छोटे नाले रोहिनी में गिरने के पहले फरेन्दा और महराजगंज के बीच एक दूसरे से मिलते हैं। बलिया नदी (Balia River) महराजगंज के पास से निकलती है और रोहिनी में जरलहिया (Jarlahia) के पास आकर मिल जाती है। चिलुआ नदी, हवेली परगना के तप्पा कटहरा से निकलती है। इसमें पानी टेमर और कुछ अन्य छोटी धाराओं से आता है। ये सभी मिलकर चिलुआ ताल बनाते हैं और तब मानीराम के पास रोहिन में मिल जाते हैं। इसके दक्षिणी किनारे पर केवल एक कलान नामक बड़ी धारा, जो लेहरा (Lehra) से निकलती है, दक्षिण दिशा में बहते हुए पीपीगंज के उत्तर-पूर्व में रोहिन में आकर मिल जाती है।

तुरा और गौरा : परगना हवेली के तप्पा अन्ती (Unti) में 'तुरा' नामक एक छोटी नदी निकलती है और गोरखपुर शहर के पूर्व रामगढ़ जंगल से होते हुए झंगहा तक जाती है और यहाँ गौरा नदी में मिल जाती है।

ये दोनों नदियाँ मिलने के बाद राप्ती नदी एक से एक निश्चित दूरी बनाकर उसके समानान्तर बहती हैं।

फरेन्द नाला : फरेन्द नाला, पिपराइच के उत्तर में अस्तित्व में आता है। दक्षिण दिशा में यह तुरा नदी के समानान्तर बहता है और अंततः राजधानी के दक्षिण गौरा नदी में मिल जाता है। इसका यह नाम 'फरेन्द' नदी के दोनों किनारों पर सघन जंगली जामुन के पेड़ों के कारण पड़ा।

आमी : राप्ती की सहायक 'आमी' और 'तरैना' इसके दाहिने किनारे पर हैं। पहले यह बस्ती जनपद के परगना रसूलपुर में अस्तित्व में आयी, और गोरखपुर जनपद में रामपुर (परगना मगहर) में प्रवेश करती है। इसके बाद दक्षिण-पूर्व में बहते हुए सोहगौरा (परगना भौवापार) के निकट राप्ती में मिल जाती है। वर्षाकाल को छोड़कर यह बहुत ही सँकरी और सुस्त (मंद गति से बहने वाली) नदी है। वर्षाकाल में अमियार ताल में पानी बढ़ने की दशा में इस नदी में बाढ़ आ जाता है और इस नदी की घाटियों में भी पानी फैल जाता है, और इससे लगे हुए क्षेत्र भी प्रभावित हो जाते हैं।

इस नदी का प्राचीन नाम अनोमा है[111]। कार्लायल ने अनोमा (आमी) को बस्ती जिले की 'कुडवा' नदी से समीकृत किया है[112]। त्रिपिकटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित इसे देवरिया जिले की आधुनिक 'मझने' नदी बताते है[113]। भरत सिंह उपाध्याय ने इसका समीकरण आमी नदी के साथ किया है[114]। कपिलवस्तु छोड़ने के बाद बुद्ध इस नदी के तट पर आये और तब उन्होंने भिक्षु जीवन ग्रहण किया[115]।

गोरखपुर जिले में आमी और राप्ती लगभग 10.15 किमी0 की दूरी पर समानान्तर बहती हैं। यदि दोनों नदियों के प्रवाह सीमा पर ध्यान दिया जाय तो ऐसा लगता है कि आमी का कछारी क्षेत्र सम्भवतः पहले राप्ती का ही कछार था[116]। आमी के दक्षिणी पार्श्व पर अनेक प्राचीन स्थल हैं, यथा सरया, उनवल, बांसगाँव, सोहगौरा आदि। जिन भूखण्डों से होकर यह नदी बहती है, वह पीली बालूदार है, जो इस बात का संकेत करती है कि यह क्षेत्र नदियों द्वारा लायी हुयी मिट्टी से निर्मित हुआ है। इसलिए यह भू–क्षेत्र अत्यन्त उपजाऊ है। प्राचीन काल में राप्ती और आमी नदियों के माध्यम से व्यापार भी होता रहा होगा। भगवान बुद्ध ने कपिलवस्तु से प्रस्थान कर कोलियों के रामग्राम जनपद होते हुए अनोमा को पार किया था[117]।

तरैना : यह नदी दक्षिण में परगना उनवला में अपना आकार ग्रहण करती है और दक्षिण पूर्वी सीमा की ओर बहते हुए धुरियापार तक जाती है और वहाँ भेरी ताल में मिल जाती है। पुनः भेरी ताल के पूर्वी छोर से निकलकर पश्चिम से पूरब की ओर बढ़ती हुयी राप्ती में मिल जाती है[118]। गर्मी के दिनों में यह नदी अत्यन्त सँकरी हो जाती है, लेकिन वर्षा ऋतु में विशाल आकार ग्रहण कर लेती है। इसके तटबन्धों के पार्श्व क्षेत्र कृषि-योग्य नहीं है। इस नदी से प्रभावित क्षेत्र चूँकि कृषि–योग्य नहीं है, अस्तु प्राचीन काल का मानव इसके किनारों को अधिवास हेतु उपयुक्त नहीं समझा होगा।

घाघरा या सरयू : घाघरा नदी 'सरयू' और 'देहवा' नाम से जानी जाती है। सरयू या घाघरा का उद्गम स्थल नेपाल में है। यह नदी हिमालय की श्रेणियों में तकलाकोट के उत्तर–पश्चिम में स्थित नेपचाचुंग हिमनद से निकलती है, जहाँ इसे करनाली नाम से सम्बोधित करते हैं। हिमालय से मैदान में प्रवेश करने पर

यह कोडियाला एवं चौका या शारदा, दो शाखाओं में विभक्त हो जाती है। गोण्डा जनपद के एलगिन पुल के पास से यह दोनों धाराएँ पुनः मिलकर एक धारा में प्रवाहित होती हैं। यहाँ इसे घाघरा नाम से पुकारते हैं। सम्प्रति यह नदी घाघरा एवं सरयू दोनों नामों से प्रचलित है[119]। वर्तमान समय में यह नदी बांसगाँव तहसील के नरगड़ा नामक ग्राम के दक्षिण, गोरखपुर जनपद में प्रवेश करती है। भूमि की कठोरता के अनुसार दोनों ही तटबन्धों पर कटाव करती है। नरगड़ा से शाहपुर के बीच यह अपने तट को काटती हुयी आगे बढ़ती है। फलतः एक विशाल 'दियारा' निर्मित होता है, जिसमें मात्र एक ही फसल पैदा होती है। दियारा के उत्तरी तट पर अनेक प्राचीन स्थल स्थित हैं– यथा, कूरी बाजार, धुरियापार आदि। जनपद में पूरब की ओर बढ़ती हुयी यह नदी बरहज बाजार से पूर्व ही गोरखपुर जनपद की सीमा को छोड़ देती है। यही राप्ती–सरयू संगम है। आगे बढती हुयी यह नदी गंगा में मिल जाती है। शाहपुर से पूरब नदी का उत्तरी तटबन्ध कठोर होने के कारण परिवर्तित नहीं हुआ। फलतः गोला, गोपालपुर, नरहन, मकन्दवार, जैसे पुरास्थलों पर वर्तमान में भी पुरावशेष देखे जा सकते हैं।

सरयू का उल्लेख ऋग्वेद में प्राप्त होता है[120]। रामायण में कहा गया है कि राजा दशरथ ने इस नदी के तट पर अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन किया था[121]। महाभारत में इस नदी का उल्लेख सरयू नाम से किया गया है[122]। पाणिनि ने भी इसका उल्लेख किया है[123]। वर्षा काल में इस नदी की धारा में घहर–घहर की आवाज होती है, इसलिए इसे घाघरा कहते हैं[124]।

बौद्ध काल में कोसल जनपद दो भागों में विभाजित था, जिसके मध्य सरयू विभाजक रेखा थी। उत्तर की ओर स्थित भाग उत्तर कोसल और दक्षिण भाग को दक्षिण कोसल कहा जाता था[125]। विष्णु स्मृति में भी इस नदी का उल्लेख किया गया है[126]। हापकिंस ने इसे पश्चिम की एक नदी माना है[127]।

इस नदी के किनारे काफी ऊँचे होने के बावजूद वर्षा के दिनों में यह अपने किनारों से ऊपर होकर बहती है और आस–पास का निचला क्षेत्र पानी से डूब जाता है। बरसात के बाद अनेक बालूकामय किनारे और द्वीप बन जाते हैं।

कुआनो : इस नदी का उद्गम स्थल बहराइच जिले के पूरब में है, किन्तु गोरखपुर जनपद में पूर्ण रूप से छितौना ग्राम (बांसगाँव तहसील) के पास प्रवेश करती है[128]। छितौना से पहले यह गोरखपुर जनपद को बस्ती जनपद से अलग करती है, और तब परगना धुरियापार के पश्चिम में बहते हुये, शाहपुर के निकट (शाहपुर से 3 कि0 मी0 पूरब मठरामगिरि के पास) घाघरा में मिल जाती है। इस नदी के किनारे अनेक नीलकोठियों के प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस नदी के माध्यम

से व्यापार होता था। इसके किनारे कुछ पुरास्थलों के प्रमाण मिले हैं– यथा, इमलीडीह, सिकरीगंज, बसंतपुर, दुघरा, धुरियापार, शाहपुर और छितौना आदि। इस नदी के दोनों ऊँचे किनारों के मध्य तलहटी में बालू की चादर (Sandy bed) के अवशेष मिलते हैं।

बड़ी गण्डक : यह नदी नेपाल के बर्फीले क्षेत्र में अपना आकार ग्रहण करती है और अत्यन्त सँकरे मार्ग से चलकर त्रिवेनीघाट के समीप मैदान में आती है, जो जिले की सीमा से 16 कि0 मी0 दूर है। इसके अनेक नाम प्राप्त होते हैं, यथा सदानीरा, शालीग्रामी, गण्डकी आदि[129]। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित सदानीरा को कुछ विद्वानों ने गण्डक और अन्य ने ताप्ती नदी से समीकृत करने की चेष्टा की है[130]। पार्जिटर ने भ्रमवश इसे राप्ती से समीकृत किया है[131]। पद्मपुराण में इस नदी को पुनीत बताया गया है[132]। योगिनी तंत्र में गण्डकी नदी का उल्लेख प्राप्त होता है[133]। नेपाल से गुजरते हुए इसमें बायीं ओर से चार और दाहिनी ओर से दो सहायक नदियाँ मिलती हैं[134]। वर्तमान समय में इस नदी के दोनों पार्श्वों पर जंगल है। किन्तु जहाँ कटाव हो गया है, वहाँ मात्र बालूका के ढेर ही प्राप्त होते हैं।

बड़ी गण्डक सबसे अधिक महत्त्व की नदी है। गर्मी के मौसम में भी इसका फैलाव बहुत अधिक रहता है। जिले में प्रवेश के समय यह पथरीले मार्ग से आगे बढ़ती है तथा इसका पानी ठण्डा और साफ (पारदर्शी) दिखायी देता है।

छोटी गण्डक : इस नदी का उद्‌गम स्थल नेपाल में है। दक्षिण दिशा में बहते हुए यह सीतलापुर ग्राम के पास गोरखपुर जनपद में प्रवेश करती है। अपने उद्‌गम स्थल से 1 कि0 मी0 और इस गाँव से 1/2 कि0 मी0 चलने के बाद यह नदी दो शाखाओं में बँट जाती है। एक शाखा जनपद के उत्तर–पश्चिम दिशा में बहती है और दूसरी शाखा अनवरत रूप से दक्षिण दिशा में बहती है। यही छोटी गण्डक है। डोमखण्ड वन–क्षेत्र से गुजरने के बाद देवरिया जनपद के दक्षिण में पहुँचती है। इसी दिशा में बहते हुए यह जनपद महराजगंज और हाटा तहसील (जनपद देवरिया) के बीच सीमा रेखा का आकार ग्रहण करती है।

झीलें

गोरखपुर जनपद में अत्यधिक संख्या में बारहमासा (वर्ष भर पानी वाली) झीलें हैं, जिनमें अधिकतर नदियों की छाड़न झीलें हैं, जो सिल्ट के इकट्ठा होने के फलस्वरूप या प्राकृतिक दबाव से गहरे हुए स्थल पर पानी के इकट्ठा होने से अस्तित्व में आयी हैं। इनके महत्त्व का वर्णन निम्नवत् है–

रामगढ़ ताल : गोरखपुर शहर से दक्षिण–पूर्व और कसया (जो कि देवरिया जनपद में है) जाने वाली मुख्य सड़क के दक्षिण में रामगढ ताल है। बहुत पहले यह झील बरसात के मौसम को छोड़कर अन्य मौसमों में घने नरकटों से आच्छादित रहता था, जो समीपवर्ती, लोगों विशेषतः नगर के लोगों के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक था। अतएव इसे साफ करके इसके पानी को एक पतली धारा के द्वारा राप्ती में मिलाने का असफल प्रयास किया गया। रामगढ़ ताल, राप्ती नदी के मार्ग परिवर्तन से बना है[135]। रामगढ़ ताल मछलियों के मामले में बहुत समृद्ध है। इस ताल के किनारे बसे लोगों को यहाँ से मछली पर्याप्त मात्रा में मिलती है। ये मछलियाँ समीपवर्ती लोगों के लिए व्यावसायिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

नरही ताल : रामगढ़ के कुछ कि0 मी0 दक्षिण–पूर्व में राप्ती के कछार में पानी का पर्याप्त छोटा जमाव है, जो नरही ताल के नाम से जाना जाता है। यह गौरा नदी के द्वारा रामगढ़ ताल से लगा हुआ है। यह नदी दोनों तालों के अतिरिक्त पानी को राप्ती में मिलाती है। वास्तव में यह ताल राप्ती की ही एक धारा है। गर्मी के दिनों में यह सूख जाता है और चौपाया पशुओं के लिए (गाय, भैंस, वगैरह) चारागाह बन जाता है।

डोमिनगढ़ और करमैनी ताल : ये दोनों झीलें गोरखपुर शहर के पश्चिम में हैं, जिनका आकार रोहिन नदी के बाढ़ के फलस्वरूप बना। इनके ठीक पहले रोहिन और राप्ती का संगम स्थल है। दोनों झीलों को मिट्टी का एक ऊँचा ढूहा अलग करता है, जो बाढ़ के समय पूरी तरह डूब जाता है, और दोनों झीलें बिल्कुल एकाकार (मिल जाती है) हो जाती हैं। वर्षा के दिनों में जनपद के उत्तरी क्षेत्र से रेलवे बाँध तक लगभग 11 कि0 मी0 तक पानी फैल जाता है। बरसात बन्द होने के बाद अचानक इसमें राप्ती का पानी बहना बन्द हो जाता है। फलतः यह झील सिकुड़कर बिल्कुल छोटा आकार ग्रहण कर लेता है।

नन्दौर ताल : नन्दौर ताल गोरखपुर से 9.6 कि0 मी0 दक्षिण दिशा में है। यह पूर्व दिशा में आजमगढ़ को सड़क से जोड़ता है। इसका आकार छोटा है, जो वर्षा से प्रभावित हो जाता है। इसका पानी साफ है। यह ताल मछलियों का विपुल स्रोत है। यह ताल भी राप्ती के पुराने प्रवाह का छाड़न है।

अमियर ताल : नन्दौर ताल के कुछ कि0 मी0 दक्षिण अमियर ताल है, जो आमी नदी के बाढ़ के फलस्वरूप अस्तित्व में आयी। यह नदी अपनी पूरी घाटी को जल से भर देती है। यह घाटी उत्तर में बेलीपार और दक्षिण में बांसगाँव के बीच है। ये दोनों स्थान पर्याप्त ऊँचे हैं। इनके बीच का धसा हुआ भाग, बरसात के मौसम में लम्बाई में कुछ कि0 मी0 (टुकर बाँध तक) तक झील का रूप ले लेता है। यह ताल अमियर नदी के छाड़न से बना हुआ है। यह गर्मी में सूख जाता है। फलतः चारागाह और कृषि–कार्य हेतु इसका उपयोग

होता है।[136] टूकर बाँध के पूरब में एक अन्य झील अस्तित्व में आती है, जो 'बिजरा–ताल' के नाम से जाना जाता है।

भेनरी ताल : यह झील राप्ती और घाघरा नदियों के मध्य, चिल्लूपार परगना में स्थित है। यह तरैना नदी के अतिरिक्त जल (जलाधिक्य) से अस्तित्व में आयी है। यह नदी (तरैना) इस झील से होती हुयी गुजरी है। शुष्क मौसम में यह सिकुड़कर बहुत छोटे आकार में आ जाती है, लेकिन वर्षा ऋतु में पानी के फैलने से यह काफी बड़ी हो जाती है। फिर भी यह झील अधिक मात्रा में बालू इकट्ठा हो जाने के कारण स्थायी रूप से सिकुड़ गयी है। पूर्वी छोर पर इस झील का अतिरिक्त जल राप्ती में चला जाता है, लेकिन बाढ़ के दौरान उफनने लगता है और इसके किनारे का क्षेत्र डूबने लगता है।

चिल्लुआताल : चिल्लुआताल, चिल्लुआ नाला के उफान के फलस्वरूप अस्तित्व में आया। यह परगना हवेली में है, जो कि गोरखपुर से 11 कि0 मी0 उत्तर में स्थित है। मानीराम के समीप और रोहिन नदी में मिलने से पहले यह लम्बी और सँकरी नदी का रूप धारण कर लेता है। यह ताल, तरैना नदी के छाड़न के फलस्वरूप अस्तित्व में आया। यह रोहिणी की सहायक नदी चिलुआ से बना है[137]।

जनपद के उत्तरी भाग में अनेक झीलें हैं, यथा– रामभर ताल, कुसेशर ताल, चकहवा ताल एवं डुमरैनी ताल इत्यादि। इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र जल–स्रोत की दृष्टि से काफी समृद्ध है, जिसका प्रभाव यहाँ खाद्यान्न के पैदावार पर पड़ता है। जल की अधिकता के कारण ही यहाँ रामगढ़ ताल में जाड़े के दिनों में भी लहलहाती हुयी धान की फसल देखी जा सकती है[138]।

जलवायु

प्रारम्भ से ही मानव–समुदाय उन स्थलों की ओर आकर्षित होता रहा है, जहाँ की जलवायु उसके स्वास्थ्य के लिए उत्तम एवं उपयोगी थी। जलवायु के निर्धारण में अनेक कारक उत्तरदायी हो सकते हैं। जलवायु का अच्छा होना समुद्र से दूरी तथा उसकी ऊँचाई पर निर्भर करता है। गोरखपुर जनपद समुद्र तट से बहुत दूर है, साथ ही ऊँचाई 316 फीट से भी अधिक है। यहाँ पश्चिमी प्रान्तों की भाँति न तो कड़ाके की सर्दी पड़ती है और न ही गर्मी। इसका प्रमुख कारण है जनपद से हिमालय की निकटता और वर्षा का

आधिक्य। इन समन्वित कारणों से उष्णता कम हो जाती है। दक्षिण की जलवायु ठीक होने के कारण जनपद का दक्षिणी हिस्सा जनसंकुल है[139]।

गोरखपुर जनपद की जलवायु उन जिलों की जलवायु से समानता रखती है, जो इसके पश्चिम एवं उत्तर दिशा में लगे हुए हैं। जनपद के उत्तरी हिस्से की जलवायु कुछ हद तक उत्तर दिशा में पहाड़ की निकटता और तराई के दलदल (नमी) के आधार पर निर्धारित होती है। पूरे वर्ष को चार मौसमों के अन्तर्गत बाँटा जा सकता है। मध्य नवम्बर से फरवरी तक जाड़े का मौसम रहता है। मार्च से लेकर मध्य जून तक गर्मी का मौसम रहता है। मध्य जून से सितम्बर के अंत तक दक्षिण–पश्चिम वर्षा ऋतु का मौसम रहता है। अक्टूबर से लेकर नवम्बर के मध्य तक परवर्ती बरसात का मौसम रहता है।

वर्षा (Rainfall) :

जनपद में चार वर्षा मापक यन्त्र के स्टेशन (Four rain-gauge Station) हैं[140]। रिकार्ड के अनुसार इनमें से तीन लगभग 100 वर्ष पहले से स्थापित हैं। फरेन्दा स्टेशन पर वर्षा के आँकड़े मात्र 29 वर्ष पहले के हैं।

पूरे जनपद में दक्षिणी–पश्चिमी मानसून साधारणतया लगभग मध्य जून में आ जाता है और सितम्बर के अंत तक चला जाता है। जनपद में पूरे वर्ष का औसत बरसात 1393.1 मि0 मी0 है। जून से लेकर सितम्बर तक की बरसात पूरे वर्ष की बरसात की अपेक्षा 87 % है। इसमें जुलाई माह की बरसात अधिकतम है। सामान्यतया जनपद के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व में अतिरिक्त मानसून रहता है। जनपद में प्रतिवर्ष जो बरसात होती है, उसमें कोई विशेष मात्रात्मक भेद नहीं रहता है। 1901 से 1950 तक के 50 वर्षों में जो बरसात हुयी है, उसमें 1936 में रिकार्ड (सर्वाधिक) पानी गिरा है। यह साधारण बरसात का 130 % है। 1907 में निम्नतम बरसात हुयी। यह सामान्य बरसात का 54 प्रतिशत है। इस पच्चास वर्ष में 14 वर्ष की सालाना (वार्षिक) बरसात, सामान्य से 80 प्रतिशत कम रिकार्ड किया गया। जनपद के महराजगंज तहसील (सम्प्रति महराजगंज जनपद) में 28 सितम्बर 1900 को लगातार 24 घण्टे भारी बरसात रिकार्ड किया गया, जो 439.7 मि0 मी0 था। यह बरसात जनपद के सभी जगहों पर हुआ था।

गोरखपुर जनपद में अंतरिक्ष विद्या सम्बन्धी दो (Meteorological Observatories) वेधशालाएँ हैं। एक वेधशाला गोरखपुर और दूसरी नौतनवाँ में है। नौतनवाँ की वेधशाला से अंतरिक्ष विद्या सम्बन्धी जो जानकारी रिकार्ड की गयी है, वह मात्र कुछ ही साल पहले की है। लेकिन गोरखपुर में स्थापित वेधशाला, बहुत पहले की अंतरिक्ष सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध कराता है। गोरखपुर की वेधशाला से जो आँकड़े उपलब्ध

हुए हैं, वे जनपद की अंतरिक्ष सम्बन्धी अन्य जानकारियों में विशेष महत्त्व के हैं, अर्थात् ये आदर्श आँकड़े हैं। तुलना करने पर स्वीकार किया जा सकता है कि, जनपद के उत्तरी क्षेत्र में हल्की गर्मी (Milder summer) पडती है। नौतनवाँ के रिकार्ड से ऐसा संकेत मिलता है। जनवरी सबसे ठण्डा महीना है। इस महीने में दिन में औसत अधिकतम तापमान 22.8 डिग्री सेण्टीग्रेट और निम्नतम 9.3 डिग्री सेन्टीग्रेट रहता है। जाड़े के दिनों में ठण्डी तरंगे प्राकृतिक रूप से जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी उथल–पुथल के रूप में पूरब दिशा की ओर जाती हैं और तापमान 1 या 2 डिग्री सेन्टीग्रेट से लेकर बर्फ जमने तक नीचे गिर जाता है।

फरवरी के बाद दिन का तापमान बड़ी तेजी से बढ़ना शुरू हो जाता है। मई के महीने में सर्वाधिक गर्मी पड़ती है। इस महीने में दिन का अधिकतम औसत तापमान 38.4 डिग्री सेन्टीग्रेट और निम्नतम 25.1 डिग्री सेन्टीग्रेट हो जाता है। जून के मध्य में मानसून के आगमन के साथ ही दिन का तापमान कुछ पसंदीदा (अच्छा) होने लगता है। फिर भी रात गर्म होती है, जो कष्टप्रद रहती है। सितम्बर में दिन का तापमान बहुत धीमी गति से बढ़ता है। लेकिन रात का तापमान सितम्बर के बाद गिरने लगता है। अक्टूबर के प्रारम्भ से (जब मानूसन चला जाता है) तापमान तेजी से गिरने लगता है।

गोरखपुर में 26 मई, 1958 को दिन का अधिकतम तापमान 48.3 डिग्री सेन्टीग्रेट और 15 जनवरी 1933 को न्यूनतम तापमान 1.7 डिग्री सेन्टीग्रेट रिकार्ड किया गया।

आर्द्रता (Humidity) : वर्षा ऋतु (Monsoon) और परवर्ती वर्षा (Post-monsoon) ऋतु में आर्द्रता बहुत उच्च स्तर की रहती है, जो 70 और 85 प्रतिशत के बीच रहती है। जाड़े में आर्द्रता कम हो जाती है और गर्मी में तुलनात्मक रूप से हवा शुष्क हो जाती है।

बदली (Cloudiness) : दक्षिण–पश्चिम मानसून (मध्य जून से सितम्बर तक) के मौसम में प्रायः आकाश में घनी बदली छा जाती है। कभी–कभी पूरा आकाश बदली से ढक जाता है। इस मौसम को छोड़कर साल के शेष दिनों में (जाड़े के मौसम को छोड़कर) आसमान बिल्कुल साफ रहता है। यदि बदली रहती भी है तो बहुत हल्की। लेकिन जाड़े के दिनों में जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी ऊथल–पुथल (Western disturbancces) के कारण मौसम कभी–कभी प्रभावित हो जाता है, और आसमान में घनी बदली छा जाती है और पूरा आसमान बादलों से ढंक जाता है। लेकिन यह स्थिति बहुत कम समय तक रहती है। अधिक से अधिक दो या तीन दिन के बाद फिर मौसम सामान्य हो जाता है।

हवायें (Winds) : सामान्यतया गर्मी के अंतिम चरण और दक्षिण–पश्चिम मानसून के महीने में, हल्की एवं मंदगति से हवा चलती है। जाड़े के मौसम में मुख्यतया पश्चिमी पवन चलता है। यह पश्चिम दिशा से पूरब की ओर चलता है। गर्मी के प्रारम्भिक चरण में हवा पूरब की ओर से चलती है। लेकिन पश्चिमी पवन प्रबल रूप से चलती हैं। पूर्वी पवन और उत्तरी–पूर्वी पवन, गर्मी के अन्त और बरसात के मौसम में प्रायः चलता है। अक्टूबर में बहुत ही मन्द गति से हल्की और शांत हवा चलती है। मुख्यतया यह पश्चिम, उत्तर–पूर्व या पूर्व दिशा से चलती है।

मौसम सम्बन्धी खास विशेषतायें (Special Weather Phenomena) : गर्मी के अंतिम चरण और बरसात के मौसम में कभी–कभी बिजली की कड़क (गर्जना) के साथ तूफान (आँधी) आता है। जाड़े के अन्तिम चरण में भी जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी ऊथल–पुथल के कारण कभी–कभी खराब मौसम हो जाता है। यदा–कदा इस मौसम में बिजली की कड़क (गर्जना) के साथ ओले भीं पड़ते हैं। जनपद के उत्तरी हिस्से में सर्दी के मौसम में कभी–कभी वातावरण कोहरे (तुषार) से आच्छादित हो जाता है।

जीवजन्तु और वनस्पतियाँ

नेपाल से निकटता और जंगल के अत्यधिक विस्तार के कारण गोरखुपर जनपद में बहुत अधिक संख्या में जंगली जानवर पाये जाते हैं[141]। जंगल प्रायः मानव आवास से लगभग 10 किमी0 की दूरी पर हैं। ऐसी दशा में लोगों के द्वारा इन जानवरों का बहुत नुकसान होता है। लोग इनका शिकार भी कर लेते हैं। गोरखपुर जंगल मण्डल के उत्तरी जंगल के निचलौल रेंज में बाघ (Tiger) पाये जाते हैं। इस डिवीजन में बाघों की संख्या बाद में बढ़ी है। उत्तरी जंगल के प्रत्येक रेंज में चीते (Panthers) पाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त चीतल, बार्किंग डियर, (Barking deer) साँभर, नीलगाय, जंगली सूअर, सियार (Jackal) इत्यादि इन जंगलों में पाये जाते हैं।

इस मण्डल के दक्षिणी जंगलों में, जिनमें तिलकोनिया, बंकी, फरेन्दा और पकड़ी शामिल हैं, में सियार, (Jackal) जंगली सूअर, (Wild Pig) नीलगाय, चीतल, (Cheetal) खरगोश और गिलहरी इत्यादि पाये जाते हैं, जबकि चीतल और सूअर पकड़ी रेंज में अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते हैं। तिलकोनिया रेंज में वन्य-प्राणियों की संख्या कम है। डोमा ब्लाक, जो नारायणी नदी के किनारे है, में वन्य प्राणियों में मुख्यतः बाघ, चीतल, पारा (Para) और नीलगाय पाये जाते हैं। इस जंगल में पाये जाने वाले अन्य जन्तुओं में मुख्यतः जंगली बिल्ली, चीता या तेंदुआ, बन्दर और लाल लोमड़ी हैं।

पक्षी : इस जनपद में पाये जाने वाले पक्षी निकटवर्ती जनपदों के पक्षियों से समानता रखते हैं। शिकार करने वाले प्रमुख पक्षियों में विभिन्न प्रकार के पक्षी है, जिनमें बत्तख, कबूतर तथा तीतर या चकोर (Partridges) मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त जिले में मुख्यतः अन्य प्रकार के पक्षी भी पाये जाते हैं। इनमें प्रमुख हैं– मोर, कोयल, उल्लू, चाहापक्षी (Snipe), तोता, चील, (Kite) कौवा, गिद्ध, बुलबुल, मैना, बाया, गौरेया, तथा बगुला इत्यादि।

रेंगने वाले जन्तु (सरीसृप) : जनपद में विभिन्न प्रकार के रेंगने वाले जन्तु पाये जाते हैं। इनमें सर्प (साँप) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सरीसृप विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में पाये जाते हैं। कुछ सर्प बहुत ही खतरनाक किस्म के है, जैसे– गेहुँअन, करैत तथा रैट, स्नेक। अधिकतर सर्प कम जहरीले हैं। कुछ ऐसे भी सर्प हैं, जो बिल्कुल विषैले नहीं है। सर्पदंश से प्रत्येक वर्ष कुछ लोगों की मृत्यु होती है। जिले के अन्य सरीसृपों में मगरमच्छ, छिपकली, अजगर एवं विभिन्न प्रकार के रेंगने वाले (Lizard) जन्तुओं का उल्लेख किया जा सकता है।

मछलियाँ : मछलियाँ, मुख्यतः जनपद के नदियों, झीलों और तालाबों में पायी जाती हैं। साधारणतया जनपद में निम्न प्रजातियों की मछलियाँ पायी जाती हैं– रोहू, करौंच, बाटा, खुर्सा, भाकुर, नैन, रैया, दरही, पुतिया, परहन, टेंगरा, तिंगा, चेगना, गिरई, पतरा, मोई, माँगुर, सिंग्ही, चेलवा, बेलगगरा और गोंच इत्यादि।

वनस्पतियाँ

साधारणतया जनपद के उत्तरी भाग में जंगल पाया जाता है। यद्यपि पहले यह जंगल गोरखपुर जिले के दक्षिण तथा दक्षिण–पूर्वी हिस्से, जो राप्ती के साथ–साथ लगता था, में पाया जाता था[142]।

वन–विभाग के अन्तर्गत 55,235 हेक्टेयर भूमि में इमारती लकड़ी के अतिरिक्त अन्य पेड़ और झाड़ियाँ हैं। इनमें से फरेन्दा तहसील में 20720 हेक्टेयर, गोरखपुर में 4340 हेक्टेयर और महराजगंज जनपद में 30175 हेक्टेयर भूमि पर जंगल फैले हुए हैं। 1490 हेक्टेयर भूमि गाँव सभा के अधिकार में है, जिसमें जंगल है। इनमें से 626 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकड़ी तथा शेष पर अन्य प्रकार के पेड़ तथा झाड़ियाँ है। फरेन्दा तहसील में 206 हेक्टेयर तथा गोरखपुर में 11 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकड़ी के जंगल है। महराजगंज जनपद में लगभग 409 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकड़ी के वृक्ष हैं। अन्य वृक्ष और झाड़ियों के जंगल का फैलाव फरेन्दा तहसील में 30 हेक्टेयर, बाँसगाँव में 166 हेक्टेयर और गोरखपुर में 119 हेक्टेयर है। महराजगंज जनपद में 549 हेक्टेयर भूमि में जंगल (अन्य वृक्ष एवं झाड़ियाँ) है।

जनपद के जंगल में मुख्य वृक्ष साल का है। साल एक सदाबहार वृक्ष है। इसका पेड़ छोटा और झाड़ीनुमा होता है, जो नालों और छोटी नदियों के किनारों पर सघन रूप से पाया जाता है। महराजगंज जनपद के उत्तरी हिस्से में धोमखण्ड नामक वन पट्टी है। यहाँ सघन जंगल है, जिसमें पेड़ों की ऊँचाई मध्यम दर्जे से लेकर पर्याप्त ऊँचे हैं। इस क्षेत्र के वनों में जो वृक्ष पाये जाते हैं, उनमें मुख्यतः साल, बहेरा, हल्दू, फल्दू, असीध, तेन्दू, महुआ, डोमसल, जामुन, भकमल, शीशम, सेमल, तुन, ढाक, नीम, अमालतास और सागवान का उल्लेख किया जा सकता है।

550 हेक्टेयर जमीन में पुनः वृक्षारोपड़ का कार्यक्रम रखा गया, जिसमें से 300 हेक्टेयर में साल और सागौन लगाया गया। शीशम, खैर और सेमल इत्यादि 200 हेक्टेयर में लगाया गया। इसके अतिरिक्त वन–विभाग ने राष्ट्रीय राजमार्ग के दोनों किनारों पर पौधे लगाये।

कुछ जगहों पर घास की पतली पट्टी भी है। ये स्थल हैं– त्रुआ (तिलकोनिया), उत्तर में टेमर, दक्षिण में बंकी, चिलवा और भेलमपुर, कालान, फुलवरिया (भारी बसीरे में) तथा रामगढ़।

छोटे जंगल (Groves) : 1973 में जनपद में 13729 हेक्टेयर भूमि पर छोटे–छोटे जंगल थे। इनमें सबसे बड़ा क्षेत्र गोरखपुर तहसील में हैं। यह क्षेत्र 5277 हेक्टेयर में है। फरेन्दा में 2673 हेक्टेयर, महराजगंज में 1568 हेक्टेयर तथा बांसगाँव में 4211 हेक्टेयर भूमि में छोटे जंगल हैं। इनमें मुख्यतया आम, आँवला, नीबू, जामुन इत्यादि के पेड़ हैं।

जनसंख्या

1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसंख्या 3066002 हैं। इसमें 1593355 पुरुष तथा 1472647 महिलायें हैं[143]। ग्रामीण जनसंख्या 2490726 तथा नगरीय 575276 है। अनुसूचित जाति की जनसंख्या 675662 है। इस प्रकार 1981 की तुलना में, वर्ष 91 की जनसंख्या में 23.44 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है।

गोरखपुर जिले का क्षेत्रफल प्रदेश के क्षेत्रफल का कुल 1.185 प्रतिशत है, जबकि उत्तरप्रदेश की जनसंख्या का लगभग 2.20 प्रतिशत इस जनपद में निवास करता है। उत्तर प्रदेश में प्रति वर्ग किलोमीटर 473 व्यक्ति निवास करते हैं, जबकि इस जिले में प्रति वर्ग किलोमीटर 880 व्यक्ति निवास करते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर प्रति वर्ग किमी0 जनसंख्या का घनत्व 274 है।

1991 की जनगणना के अनुसार जनपद की जनसंख्या का लिंगानुपात प्रति एक हजार पुरुष की तुलना में 924 महिलायें है। प्रदेश में यह अनुपात प्रति एक हजार पर 870 है, तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रति एक हजार पर 927 महिलायें हैं।

1991 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों की जनसंख्या 67653 है, जो कुल जनसंख्या का 22.05 प्रतिशत है।

1991 की जनगणना के अनुसार जिले में कर्मकारों की संख्या 880620 है। इसमें 34086 कृषक, 248963 किसान मजदूर, पशुपालन तथा वृक्षारोपड़ जैसे कार्यों में, 4902 तथा 13549 लोग पारिवारिक धन्धों में लगे हैं। 272344 लोग अन्य विविध कार्यों से रोजगार प्राप्त कर रहे हैं। कुल जनसंख्या का 28.72 प्रतिशत कर्मकारों की संख्या है।

जिले की साक्षरता प्रतिशत 43.30 है। जिले में 60.62 प्रतिशत पुरुष तथा 24.49 प्रतिशत स्त्रियाँ साक्षर हैं। ग्रामीण अंचल में 37.22 प्रतिशत लोग साक्षर हैं, जिसमें 56.09 प्रतिशत पुरुष तथा 17.22 प्रतिशत महिलायें हैं। नगर क्षेत्र में 68.59 प्रतिशत लोग साक्षर हैं, जिसमें पुरुष 78.52 तथा 56.74 प्रतिशत महिलायें हैं।

प्रदेश का साक्षरता प्रतिशत 41.60 है, जिसमें पुरुष 55.72 तथा महिलायें 25.19 प्रतिशत साक्षर हैं।

सन्दर्भ :

1. वर्मा, राधाकान्त : *क्षेत्रीय पुरातत्त्व*, 2000 ई0, पृष्ठ 3
2. *विकास पुस्तिका*, गोरखपुर मण्डल 1996–97 (सूचना एवं जनसम्पर्क कार्यालय, गोरखपुर), पृ0 1
3. *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स*, गोरखपुर 1987, पृष्ठ 1
4. बनर्जी, ए0 के0 : *द नाथ योगी सम्प्रदाय एण्ड द गोरखपुर टेम्पुल*, पृष्ठ 12
5. *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स*, गोरखपुर, 1987, पृष्ठ 1
6. *बाल्मीकि रामायण*, उत्तरकाण्ड, श्लोक–102; पाण्डेय, राजबलि, *गोरखपुर जनपद का इतिहास और उसकी क्षत्रिय जातियाँ*, पृष्ठ 4
7. त्रिपाठी, आर0 एस0, *हिस्ट्री ऑफ ऐंशिएण्ट इण्डिया*, पृष्ठ 41
8. *विकास पुस्तिका* (गोरखपुर मण्डल), *पूर्वोद्धृत*, पृ0, 2
9. पार्जिटर, एफ0 ई0; *ऐन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन*, पृष्ठ 257;
   मैकडोनेल, ए0 ए0 एण्ड कीथ, ए0 बी0 : *वैदिक इण्डेक्स आफ नेम एण्ड सबजेक्ट*, पृष्ठ 109
10. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुसलकर, ए0 डी0 (सम्पादक), *दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल*, वाल्यूम I, पृष्ठ 276
11. *वाल्मीकि रामायण*, उत्तरकाण्ड, श्लोक 108

12. *डिस्ट्रिक्ट सेंसस हैण्डबुक, यू0 पी0, देवरिया डिस्ट्रिक्ट,* पृष्ठ 1

13. *रघुवंश,* 16–25

14. पाठक, विशुद्धानंद; *हिस्ट्री आफ कोशल अप टू दि राइज आफ दि मौर्याज,* पृष्ठ 276–278

15. *महाभारत,* सभा पर्व, श्लोक 30, पृष्ठ 3

16. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 56

17. तत्रैव

18. पाण्डेय, आर0 एन0 : *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,* पृष्ठ 54

19. *रामायण,* 2, 49, 11–12; 50–1; 7,104,15

20. *प्रा0 रा0 इ0,* पृष्ठ 78 (राय चौधरी, हेमचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास)*

21. 1, 4–1–1 *(शतपथ ब्राह्मण)*

22. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 41

23. पाण्डेय, आर0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 56

24. तत्रैव

25. *अथर्ववेद,* 10, 2, 32

26. *अष्टाध्यायी,* 4, 1, 171

27. पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 35

28. तत्रैव, पृष्ठ 35–36

29. जैन, जे0 सी0; *लाइफ इन ऐन्श्येन्ट इण्डिया,* पृष्ठ 303

30. पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 34

31. पार्जिटर, एफ0 ई0 : *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 257 : मैकडोनल, ए0 ए0 एण्ड कीथ, ए0 बी0 : *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 109; पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–47

32. पाठक विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 94–96

33. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 238; राय चौधरी, एच0 सी0; *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–155

34. राय चौधरी, एच0 सी0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 138

35. पाण्डेय, राजबलि; *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 4

36. डेविड्स, आर0 : *बुद्धिस्ट इण्डिया,* पृष्ठ 13–14, पाठक विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 247

37. डेविड्स, आर0 : *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 1

38. पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 269

39. फ्यूहरर, ए0, : *मान्यूमेण्टल एण्टीक्विटीज एण्ड इन्शक्रिप्सन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध,* पृष्ठ 237–38

40. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 274–75, पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 73

41. लॉ, बी0 सी0; *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया,* पृष्ठ 117

42. श्रीवास्तव, के0 एम0 : *डिस्कवरी आफ कपिलवस्तु,* पृष्ठ 48

43. लाक0 सीट मैप 11, पृष्ठ 444–5,. सी0 एफ0 पी0 एच0 ए0 आई, पृष्ठ 195, एफ0 एन0 4
44. राय चौधरी, एच0सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 143–144, पाठक, विशुद्धानंद; *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 70
45. *दिव्यावदान*, पृष्ठ 528
46. *महाभारत*, 111, 84–31 (तीर्थ यात्रा खण्ड)
47. *बुद्ध चरित*, भाग–1, श्लोक–2
48. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 68
49. पाण्डेय, आर0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 78
50. *महावस्तु* 1, 352–55
51. *कुणाल जातक* (जातक 219 और आगे)
52. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 268
53. *जातक* 1,337, 1,207
54. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 68
55. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 367
56. लॉ, बी0 सी0; *प्राचीन भारत का राजनीतिक भूगोल*, पृष्ठ 202
57. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 266
58. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 70
59. तत्रैव, पृष्ठ 69
60. ला, बी0सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 119
61. पाण्डेय राजबलि द्वारा उद्धृत, पृष्ठ 70
62. *ए0 जी0 आई0*; पृष्ठ 267
63. माथुर, बी0 कुमार; *ऐतिहासिक स्थानावलियॉ*, पृष्ठ 447
64. राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 144
65. राकहिल, *'दि लाइफ आफ दि बुद्धा'*, पृष्ठ 12
66. हिन्दुस्तान टाइम्स, 17 अप्रैल 1964 (श्री कृष्णानंद त्रिपाठी से ज्ञात)
67. पाठक विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 267
68. *थेरगाथा*, ह्वीयस 529 और *कुणाल जातक*, फौस वाल्स द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 413
69. मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुसलकर ए0 डी0; *दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल*, वाल्यूम II, पृष्ठ 8
70. *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, गोरखपुर* (1918), पृष्ठ 8
71. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 285–86
72. पाण्डेय, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 81
73. पाठक, विशुद्धानंद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 365
74. तत्रैव, पृष्ठ 213

75. पाण्डेय, आर० एन०, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 88

76. राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 150

77. इति निश्चित्य नन्दस्य भूपतेः कटकं वयम्।
अयोध्यास्थमगच्छाम त्रयः सब्रह्मचारिणः।। 1.4.97।।
(*कथासरित्सागर*)

78. पाण्डेय, राजबलि; *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 114–115

79. तत्रैव, पृष्ठ 177

80. (i) एक आलोचक के अनुसार 'वह अतुल धनराशि का स्वामी' था (देखिए, विल्सन : *विष्णु पुराण,* वाल्यूम IX, 184 n)
(ii) *महाभारत* (VII 553.1) के अनुसार महापद्मपुर नामक एक स्थान का पता चलता है।

81. *कलियुग राजवृत्तांत,* भाग–3, अध्याय–2

82. *विष्णु पुराण,* 4.24, 20–22

83. *मत्स्य पुराण,* 272.13–17; द्रष्टव्य, वी० एस० अग्रवाल, *मत्स्यपुराण ए स्टडी,* पृष्ठ 375

84. कथासरित्सागर, 1.4.135

85. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 117

86. राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 197

87. तत्रैव, पृष्ठ 198–99

88. *मुद्राराक्षस,* अंक 3, श्लोक 19

89. *कार्पस,* 4/2, पृष्ठ 389

90. नियोगी रोमा : *हिस्ट्री ऑफ दि गाहडवाल डाइनेस्टी,* पृष्ठ 69–71

91. पाण्डेय, जगत नारायण; *संसाधन उपयोग और संरक्षण,* पृष्ठ 12–13

92. लम्बाई उत्तर में महराजगंज जनपद के खनुआ नामक स्थान से दक्षिण में बड़हलगंज तक, तथा चौड़ाई पश्चिम में मगहर से पूरब में जगदीशपुर तक ली गयी है।

93. भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित, मिश्र, रामसहाय : *मानचित्रावली तथा भौगोलिक वर्णन गोरखपुर जनपद,* 1972, पृष्ठ 18,

94. *अवदानशतक* 163; 260 पाणिनि : *अष्टाध्यायी* 5, 3, 119, हार्डी : *मैनुअल आफ बुद्धिज्म,* पृष्ठ 15–17

95. वाटर्स, *आन युवान–च्वांग,* 1398–99

96. लॉ, बी० सी०, *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल,* पृष्ठ 103, श्रावस्ती की पहचान सहेत–महेत से किया जा चुका है, जो गोण्डा और बहराइच जिलों की सीमा पर अवस्थित है।

97. न सुकरम् उदकस्स पत्राणम गणेतुं– *संयुक्त निकाय* 5, 401

98. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 8

99. *विनयपिटक,* 3, 63

100. *उदान कामेन्ट्री,* पृष्ठ 336

101. *धम्मपद कामेन्ट्री* 3, पृष्ठ 10, *अटठारसकोटि–धनम्*

102. पाण्डेय, जगत नारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 17
103. सिंह, यू0 एवं पाण्डेय जे0 एन0 : *चेंजेज इन दि कोर्स आफ रिवर राप्ती एण्ड देयर इफेक्ट्स ऑन ऐटिलमेण्ट्स,* यू0 जी0 सी0 प्रोजेक्ट, गोरखपुर (1973)
104. भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण मानचित्र पर आधारित
105. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 9
106. *जातक*, कावेल, 5, 219 और आगे
107. *थेरगाथा* 5, 529 और 56
108. *जातक* 1, 327, 4, 207
109. लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 202–03
110. मुखर्जी, पूर्णचन्द्र, *ऐन्टिक्विटीज इन दि तराई आफ नेपाल*, पृष्ठ 4
111. कनिंघम, *ऐन्श्येन्ट जिओग्रफी आफ इण्डिया*, पृष्ठ 423
112. लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 111
113. *कुशीनगर का इतिहास*, पृष्ठ 58
114. उपाध्याय, भरतसिंह, *बुद्धकालीन भारतीय भूगोल*, पृष्ठ 133
115. *धम्मपद कामेन्ट्री* 1, 85
116. *डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ गोरखपुर* 1909, पृष्ठ 12
117. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 10
118. मिश्र, राम सहाय, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 20
119. पाण्डेय, जगतनारांयण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15
120. *ऋग्वेद*, 43018, 10649, 5539
121. आदिकाण्ड, 11वाँ सर्ग, श्लोक 1–2
122. *महाभारत*, 84, 70
123. *अष्टाध्यायी* 6, 4, 174
124. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 7
125. लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 79
126. *विष्णु स्मृति*, 85, 32
127. *रिलिजन्स ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 34
128. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 10
129. तत्रैव, पृष्ठ 11
130. लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 54
131. तत्रैव
132. *पद्मपुराण*, अध्याय 21

133. *योगिनी तंत्र,* 211, पृष्ठ 112–13

134. लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 129

135. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 12

136. तत्रैव, पृष्ठ 13

137. तत्रैव

138. जनवरी–फरवरी में सर्वेक्षण के दौरान रामगढ़ ताल के किनारे की ऊँची भूमि पर मैंने स्वयं धान की फसल देखा था।

139. पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 12

140. उत्तर–प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर, 1987, पृष्ठ 11

141. तत्रैव, पृष्ठ 10

142. तत्रैव, पृष्ठ 9

143. *विकास पुस्तिका,* 1995–96, पृष्ठ 13

अब तक किये गये कार्यों का विवरण

पुरातत्व, मानव को अपनी अतीत कालीन अस्मिता का बोध कराने का एक सशक्त माध्यम है। ऐतिहासिक ज्ञान के लिए यह सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत है। यह विषय मानव इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है। सभ्यता की प्रगति के इतिहास में मानव–जाति को अनेक उतार–चढावों के दौर से गुजरना पड़ा है। इस सुदीर्घ यात्रा में उसके जीवन में मानवेतर, मानव–सम और विकसित मानव के विभिन्न पड़ाव आए हैं। इस क्रम में उसने अपनी जीविका के लिए विविध उपकरण प्रकारों से साक्षात्कार किया है। धरती के गर्भ में लम्बे समय से छिपे हुए उसके ये शरीरेतर अवशेष मानव–जाति के बौद्धिक विकास की कहानी कहते हैं। ध्यातव्य है कि इन पुरावशेषों का अध्ययन पुरातत्त्व के अन्तर्गत किया जाता है।

भारतीय पुरातत्व के आरिम्भक चरण में एक अतिरिक्त रोचकता का अभाँव लक्षित होता है। लेकिन पुरातत्त्व के क्षेत्र में अब तक जो प्रयास हुए है, उनसे उक्त अभाव की पूर्ति हुयी है। सन् 1861 में पुरातत्त्व विभाग की विधिवत् स्थापना के लगभग 77 वर्ष पूर्व ही ऐसे कुछ कार्य आरम्भ हो गये थे जिनसे तत्कालीन अंग्रेजी शासन को इस ओर ध्यान देना पड़ा। सन् 1783 ई0 में विलियम जोन्स (William Jones) कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति होकर भारत आये। अपने भारत आगमन के एक वर्ष के अन्दर ही 15 जनवरी 1784 ई0 को रायल एशियाटिक सोसायटी (Royal Asiatic Society) की स्थापना में उन्होंने सक्रिय भूमिका निभायी[1]। इस संस्था के घोषित उद्देश्य थे : एशिया महाद्वीप के पुरावशेषों, कलाओं, विज्ञानों तथा साहित्यों के इतिहास के सम्बन्ध में अनुसंधान करना। विलियम जोन्स से पहले भी इस दिशा में अध्येताओं ने पहल की थी, किन्तु विलियम जोन्स को इस प्रकार के प्रयासों के मध्य तालमेल बैठाने तथा उन्हें एक सुनियोजित एवं सुव्यवस्थित दिशा देने का श्रेय दिया जा सकता है। अनुसंधित्सुओं की खोजों को प्रकाशित करने के लिए सन् 1788 ई0 में 'एशियाटिक रिसर्चेज'[2] (Asiatic Researches) नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ–साथ संग्रहीत पुरावशेषों के रखरखाव हेतु 1814 ई0 में एक संग्रहालय की स्थापना की गयी[3]। जोन्स के प्रयासों के परिणामस्वरूप भारत के दूसरे भागों में साहित्यिक सभाओं की स्थापना आरम्भ हो गयी[4]।

यद्यपि एशियाटिक सोसायटी का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था, तथापि इसके सदस्यों का रुझान प्राचीन साहित्य की ओर विशेष रूप से था। स्वयं विलियम जोन्स ने यूनानी साहित्य में वर्णित सैण्ड्रोकोट्टस (Sandrokottos) का प्राचीन भारतीय साहित्य के चन्द्रगुप्त मौर्य से तथा पालिबोथ्रा (Polybothra) नामक नगर का गंगा और सोन के संगम पर स्थित पाटलिपुत्र से तादात्म्य स्थापित किया था। विलियम जोन्स के एक सहयोगी चार्ल्स विलकिन्सन (Charles Wilkinson) के द्वारा गुप्त एवं कुटिल लिपियों का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया गया और ताजमहल, कुतुबमीनार आदि उत्तरी भारत के मध्यकालीन स्मारकों एवं एलोरा (Ellora), एलीफैण्टा (Elephanta) तथा कन्हेरी आदि पश्चिमी भारत में स्थित प्राचीन काल के स्मारकों का अत्यन्त काल्पनिक वर्णन प्रस्तुत किया गया था। जोन्स के बाद एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष एच0 टी0 कोलब्रुक (H. T. Colebrook) हुए। इस संस्था के अगले अध्यक्ष एच0 एच0 विल्सन (H. H. Wilson) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ध्यातव्य है कि सन् 1800 ई0 के पूर्व जो पुरातात्त्विक प्रगति हुयी, उसे व्यक्तिगत प्रयासों का परिणाम कहा जा सकता है। शासकीय स्तर पर सन् 1800 ई0 में फ्रांसिस बुकनन को मार्क्विस वेलेजली ने मैसूर के कृषि सम्बन्धी सर्वेक्षण के लिए नियुक्त किया। उनके कार्यों की महत्ता तब परिलक्षित हुयी, जब उन्होंने कृषि सम्बन्धी विवरणों के साथ–साथ पुरासम्पदाओं (Antiquities) तथा विभिन्न प्रजातियों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं प्रस्तुत की। डॉ0 बुकनन के पुरातात्त्विक जिज्ञासा से प्रेरित होकर 1807 ई0 में उन्हें फोर्ट विलियम प्रेसीडेंसी (Fort William Presidencey) के अधीनस्थ एवं समीपवर्ती क्षेत्रों के भौगोलिक, (Topography) ऐतिहासिक एवं पुरावशेषों के सर्वेक्षण का दायित्व सौंपा गया[5]। दीनाजपुर, रंगपुर, पूर्णिया, भागलपुर, बिहार, इलाहाबाद, गोरखपुर और आसाम का उन्होंने 8 वर्षों में सर्वेक्षण कार्य पूरा किया। इस सर्वेक्षण का विवरण सैंतीस जिल्दों में प्रस्तुत किया गया, जिनमें से अधिकांश का प्रकाशन नहीं हो सका। इनमें वे चार जिल्दें सम्मिलित नहीं हैं, जिनमें लगभग पॉच हजार स्मारकों एवं मूर्तियों (Sculptures) के रेखाचित्रों (Drawings) तथा बासठ (62) अभिलेखों की प्रतिकृतियों (Copies) का विवरण प्रस्तुत किया गया था। उनके द्वारा सर्वेक्षित प्रांतों की श्रृंखला में गोरखपुर क्षेत्र भी एक था। इस प्रकार गोरखपुर क्षेत्र में पुरातात्त्विक स्थलों के सर्वप्रथम सर्वेक्षण का श्रेय डॉ0 बुकनन का जाता है[6]।

डॉ0 बुकनन द्वारा प्रस्तुत विवरण पर 1838 ई0 तक किसी का ध्यान नहीं गया, फलतः ये विवरण अप्रकाशित रहे। 1838 ई0 में मान्टगोमरी मार्टिन ने डॉ0 बुकनन के अप्रकाशित विवरण के उपलब्ध अंश 'ईस्टर्न इण्डिया' नामक ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया। इस पुस्तक के खण्ड दो में गोरखपुर जनपद से सम्बद्ध विवरण उपलब्ध है, जिसमें यहाँ की भू–संरचना, नदियों की प्रकृति, झीलें, खानों इतिहास, जनसंख्या

रीति–रिवाज, प्राकृतिक उत्पादकता, जंगली जानवरों, घरेलू जानवर, कला के क्षेत्रों और वाणिज्य आदि विषयों के सम्बन्ध में सर्वप्रथम आधिकारिक विवरण प्रस्तुत किया गया[7]। 'इस्टर्न इण्डिया' इस क्षेत्र की जीवन–पद्धति को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इस ग्रन्थ में गोरखपुर जनपद के सम्बन्ध में विविध सूचनाओं के साथ प्राचीन अवशेषों एवं पुरास्थलों के विवरण भी प्राप्त हैं। पूर्वी उत्तर–प्रदेश के अनुसंधित्सुओं के लिए यह प्रथम मूल स्रोत है।

डॉ0 बुकनन के पश्चात् लगभग दो दशकों तक शासकीय स्तर पर कोई पुरातात्त्विक सर्वेक्षण नहीं हुआ। सन् 1833 ई0 में कलकत्ता टकसाल के निकष–अधिकारी (Assay-Master) जेम्स प्रिंसेप के एशियाटिक सोसायटी का सचिव नियुक्त होने पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यो में एक बार पुनः तेजी आयी। जेम्स प्रिंसेप वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पक्षधर थे। सन् 1834 और 1837 के मध्य प्रिंसेप ने प्राचीन भारत की ब्राह्मी एवं खरोष्ठी लिपियों का सफलतापूर्वक उद्वाचन (Decipherment) किया। इससे सम्राट प्रियदर्शी (पियदसि) के अनेक अभिलेख पढ़े जा सके। प्राचीन लिपियों के अतिरिक्त, प्रिंसेप मुद्राशास्त्र के ज्ञाता भी थे। जेम्स प्रिंसेप से भारतीय पुरातत्त्व को बड़ी–बड़ी आशाएँ थीं, किन्तु चालीस वर्ष की अल्प–आयु में ही 20 अप्रैल 1840 ई0 में उनके आकस्मिक निधन से इस कार्य की अपूर्णीय क्षति हुयी।

जेम्स प्रिंसेप के पश्चात् कई उत्साही अध्येता अपने व्यक्तिगत स्तर पर भारत के पुरातात्विक वैभव का मंथन करते रहे। ऐसे अध्येताओं में जेम्स फर्ग्युसन, (James Fergusson) मार्कम किट्टो, (Markham Kittoe) एडवर्ड थॉमस (Edward Thomas) और अलेक्जेण्डर कनिंघम, उत्तर भारत में, वाल्टर इलियट (Walter Eliate) दक्षिण भारत में, तथा कर्नल मीडोज टेलर, डॉ0 स्टीवेंशन एवं भाउदाजी (Bhou Daji) आदि पश्चिम भारत में कार्यरत् थे[8]। सन् 1829 से 1847 ई0 के बीच फर्ग्यूसन ने भारतीय वास्तुकला से सम्बन्धित सुरक्षित स्मारकों का विस्तृत सर्वेक्षण किया। उन्होंने सर्वेक्षण के अतिरिक्त भारतीय वास्तुकला के स्मारकों के वर्गीकरण की जो रूपरेखा प्रस्तुत किया, वह आने वाले कई वर्षों तक मानदण्ड के रूप में प्रचलित रहीं।

भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास में सन् 1861 का वर्ष विशेष महत्त्व रखता है, क्योंकि इसी वर्ष शासकीय स्तर पर इस देश की पुरानिधियों एवं पुरावशेषों की ओर ध्यान दिया गया था। 1861 ई0 से लेकर आजतक कुछ अपवादों को छोड़कर केन्द्रीय शासन, पुरातत्त्व सम्बन्धी गतिविधियों का प्रमुख सूत्रधार रहा है। प्रो0 एच0 डी0 सॉकलिया ने सन् 1861 ई0 से 1960 ई0 के मध्य के भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास को तीन कालों में विभाजित किया है :

प्रथमकाल : 1861 से 1902 ई0 तक

द्वितीय काल : 1902 से 1944 ई0 तक

तृतीयकाल : 1944 से 1960 ई0 तक

इस विभाजन को कुछ संशोधन एवं परिवर्द्धन के साथ अब चार प्रमुख कालों में विभाजित किया गया है।

1. प्रथमकाल : 1861 से 1902 ई0 तक;
2. द्वितीयकाल : 1902 से 1944 ई0 तक;
3. तृतीयकाल : 1944 से 1961 ई0 तक;
4. चतुर्थकाल : 1961 से अद्यावधि।

प्रथम काल को 'कनिंघम युग' भी कहा जाता है, क्योंकि इस काल की पुरातात्विक गतिविधियों का केन्द्र कनिंघम ही थे। सन् 1861 ई0 में जनरल कनिंघम ने तत्कालीन गर्वनर–जनरल, लार्ड केनिंग (Lard Canning) के समक्ष भारत की पुरातात्विक धरोहर के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए एक स्मरण–पत्र (Memorandum) दिया, जिसे गवर्नर–जनरल ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दिया। इस सर्वेक्षण के दायित्व को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया था : महत्त्वपूर्ण स्मारकों की रूपरेखा, नापजोख, रेखाचित्रों तथा छायाचित्रों एवं अभिलेखों के माध्यम से यथासम्भव तथ्यपरक वर्णन तैयार करना एवं उनके इतिहास एवं परम्पराओं का निरूपण एवं संकलन करना। कनिंघम को जब सर्वेयर नियुक्त किया गया, उसी वर्ष चीनी यात्रियों, फाह्यान और ह्वेनसॉग के यात्रा विवरण प्रकाशित हुए थे। अतः कनिंघम ने इस यात्रा विवरण को अपने पथ–प्रदर्शक के रूप में स्वीकार किया। 1861 से लेकर 1865 तक, उन्होंने पूर्व में गया से लेकर पश्चिम में सिन्धु तट तक और उत्तर में कालसी (देहरादून) से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्रों के प्राचीन स्थलों की यात्रा एवं स्मारकों का सर्वेक्षण किया। साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व के स्थलों की विस्तृत आख्याएं (Reports) भी तैयार किया। दुर्भाग्य से कनिंघम को अपना यह महत्त्वपूर्ण कार्य सन् 1866 ई0 में अचानक बन्द कर देना पड़ा, क्योंकि गवर्नर–जनरल लार्ड लारेन्स ने इसी वर्ष पुरातत्त्व विभाग को समाप्त कर दिया। उसके बाद शासन की ओर से कुछ वर्षो तक यत्र–तत्र पुरातात्त्विक अध्ययन का कार्य चलता रहा, किन्तु नियमित और व्यवस्थित न होने के कारण उनके परिणाम संतोषजनक नहीं हुए[9]। जिस वर्ष कनिंघम ने सर्वेक्षण कार्य आरम्भ किया, उसी वर्ष गोरखपुर के कमिश्नर ए0 स्वीट्न ने 1861 में गोरखपुर का इतिहास लिखा, जिसका अनुंवाद 'गोरखपुर दर्पण' के नाम से प्रकाशित हुआ। पुरावशेषों में रूचि होने के कारण स्वीटन ने अपनी पुस्तक में इनका विवरण दिया है।

11 जनवरी, 1870 ई0 को ई0 सी0 बेली (E.C. Bayley) नामक गृह सचिव (Secretary to the home Department) ने तत्कालीन भारत सरकार से पुरावशेषों एवं पुरानिधियों की ओर ध्यान देने का आग्रह किया। फलतः इसी वर्ष भारत सरकार ने 'भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण' नामक स्वतंत्र विभाग की स्थापना की और जनरल कनिंघम को उसका महानिदेशक (Director General) नियुक्त किया। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एवं अन्य स्मारकों की देशव्यापी खोज एवं लेखा–जोखा (Record) तैयार करने की महत्त्वाकांक्षी योजना बनायी गयी। फरवरी 1871 में कनिंघम ने अपना कार्य भार सँभाला। सबसे पहले कनिंघम ने मुगल साम्राज्य की महत्त्वपूर्ण दो राजधानियों, दिल्ली एवं आगरा का सर्वेक्षण किया। सन् 1873 से 1877 ई0 के मध्य का अपना समय कनिंघम ने संयुक्त प्रांत (वर्तमान उत्तर प्रदेश), बुंदेलखण्ड एवं मालवा के क्षेत्रों के सर्वेक्षण में व्यतीत किया। इसी दौरान उन्होंने भरहुत के अवशेषों की खोज भी की।

भारतीय पुरातत्व के अध्ययन का व्यवस्थित क्रम अलेक्जेण्डर कनिंघम (Alexarder Canningham) से प्रारम्भ होता है। कनिंघम ने पुरातत्त्व की प्रासंगिकता एवं उपादेयता को ऐतिहासिक स्रोत के रूप में स्वीकार किया। अतएव पुरातत्त्व अब एक स्वतंत्र विषय का स्वरूप ग्रहण करने लगा। उनकी यात्रा का मुख्य प्रयोजन–स्मारकों, पुरावशेषों, प्राचीन स्थलों का सर्वेक्षण, सिक्कों, अभिलेखों, मूर्तियों एवं पुरासम्पदाओं को प्रकाश में लाना था। इस बात का उल्लेख पहले किया जा चुका है कि कनिंघम के सर्वेक्षण का आधार चीनी–यात्रियों के विवरण थे। उन्ही के पदचिन्हों को ध्यान में रखते हुए कनिंघम पुरातात्त्विक अवशेषों एवं पुरास्थलों की खोज में निकल पड़े[10]। इस प्रकार वे मात्र पुरावशेषों की खोज तक सीमित न होकर उन बौद्ध केन्द्रों की खोज एवं पहचान के प्रति भी सजग हुए जिनका सम्बन्ध भगवान बुद्ध एवं महावीर से था। उनके सर्वेक्षण का क्रम मात्र उत्तर एवं उत्तर–पूर्व भारत तक ही सीमित रह गया[11]। कनिंघम के प्रयास से ही लोगों में पुरावशेषों के प्रति रूझान पैदा हुयी। इसके अतिरिक्त ये मात्र संग्रहालयों के अलंकरण–साधन न रहे, अपितु इन्हें इतिहास के मूल स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया।

गोरखपुर परिक्षेत्र में किए गए प्रारम्भिक कार्य

कनिंघम ने गोरखपुर जनपद में प्रवेश के पहले सीमावर्ती स्थलों का सर्वेक्षण किया। गोरखपुर और बस्ती जनपदों में सर्वप्रथम पुरातात्त्विक खोज कार्य 1874–75 और 1875–76 में ए0सी0एल0 कार्लायल (A.C.L. Carlleyle) ने जनरल कनिंघम के निर्देशन में प्रारम्भ किया[12]। इसी क्रम में उन्होंने अचिरावती (आधुनिक राप्ती) के दक्षिण श्रावस्ती (आधुनिक सहेत महेत) के कुछ टीलों का उत्खनन प्रारम्भ किया। श्रावस्ती छठी शताब्दी ई0 पू0 में कोसल जनपद का एक महत्त्वपूर्ण नगर था। ह्वेनसाँग ने अचिरावती को

अंचिलो कहा है। 1876 ई0 में कनिंघम ने दुबारा उत्खनन कार्य किया, जिसमें उन्हें 16 स्तूपादि के भग्नावशेष मिले। कोसम्ब कुटी के उत्तर में प्राप्त इमारत के खण्डहर की पहचान उन्होंने गन्ध कुटी से की, जिसमें भगवान बुद्ध स्वयं रहे थे[13]। कनिंघम ने बुद्ध से सम्बन्धित बौद्ध–स्थलों को खोजने का प्रयत्न किया और इस प्रसंग में बुद्ध के जीवन की घटनाओं से सम्बन्धित अनेक स्थलों की पहचान करने की चेष्टा की। ऐसे स्थलों में कपिलवस्तु, रामग्राम, पिप्पलिवन तथा कुसीनारा, प्रमुख थे। कनिंघम के पूर्व इन स्थलों के सम्बन्ध में कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं था।

श्रावस्ती के पश्चात् कनिंघम ने गोरखपुर जनपद से सम्बद्ध एवं निकटवर्ती पुरास्थलों की ओर ध्यान दिया। इस क्रम में उन्होंने सर्वप्रथम कपिलवस्तु की पहचान भुइलाताल से किया। किन्तु कालांतर में यह प्रमाणित नहीं हो सका[14]। स्मिथ, कपिलवस्तु को वर्तमान बस्ती जिले के पिपरहवा (पिपरावा) से, पर रिज डेविड्स, मुकर्जी, राहुल सांकृत्यायन, भरत सिंह उपाध्याय, तथा बी0सी0 लॉ प्रभृति विद्वान इसे पिपरहवा से लगभग 16 किमी, उत्तर–पश्चिम स्थित तिलौराकोट के भग्नावशेषों से समीकृत करते हैं[15]। मोरियनगर को भी उन्होंने अपने कार्य क्षेत्र में लिया। मोरियनगर की पहचान उन्होंने राजधानी नामक टीले से की[16]।

गोरियनगर के पश्चात् कनिंघम डोमिनगढ़ की ओर बढ़े। यह पुरास्थल गोरखपुर जनपद में प्रवाहित होने वाली नदियों, राप्ती तथा रोहिन (ऐहिन) के संगम पर स्थित है। ह्वेनसॉग ने इसे 'डाकुओं की बस्ती' कहा है। कनिंघम की मान्यता है कि यहाँ के निवासी लुटेरे डोम थे[17]। इनके मुखिया को डोमकटार कहा जाता था। जैसे, भरों के मुखिया को राजभर[18]। मि0 कुक (गोरखपुर जनपद के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट) ने यूरोप के जिप्सियों की तुलना गोरखपुर के डोमकटारों के साथ की है[19]।

गोरखपुर जनपद के प्रमुख पुरास्थलों के सर्वेक्षण के पश्चात् कनिंघम ने बताया कि मीठाबेल, भोपा, निग्रोधवन या मोरियनगर, राजधानी, डीह–घाट, उपधौलिया डीह, सहनकोट, बसवी और गुनेसरा, अवराताल एवं पियराताल तथा डोमिनगढ़ का विशेष पुरातात्त्विक महत्त्व है।

लगभग एक वर्ष के अंतराल पर कनिंघम ने जनपद के बांसगाँव तहसील एवं महराजगंज जनपद का भी सर्वेक्षण किया, जिससे कुछ नवीन पुरास्थल प्रकाश में आये[20]। ये पुरास्थल हैं – गगहा, कोटरवा, असुरन का पोखरा, रामगढ़, मोरियगढ़, बैतालगढ़, मोलाकल और पटवल, सेखुई, भीटा, राजाबारी, कानापार और गानापार, काख–खूरी, सरहरीडीह, चिलुआताल और उसके आसपास नरकटहाडीह, मटिहनियाँ, बेरइया और भटकोपा, भौवापार, मगहर, बरांव और बैरिया आदि।

कनिंघम के पश्चात् उनके सहयोगी ए0 सी0 एल0 कार्लायल ने भी इस क्षेत्र में सर्वेक्षण एवं उत्खनन का कार्य किया। कुशीनगर में उन स्तूपों को ढूँढ निकालने का कार्य भी कार्लायल ने किया जिनके उल्लेख ह्वेनसॉग ने अपने यात्रा विवरण में दिया है। यहां स्थित माथाकुँवर के कोट के गर्भ में परिनिर्वाण मंदिर तथा स्तूप को,1876–77 में प्रकाश में लाने का श्रेय कार्लायल को है[21]।

प्रारम्भ में कुशीनारा के तादात्म्य में काफी मतभेद था। किन्तु अब इसका तादात्म्य निर्विवादतः देवरिया से लगभग 34 किमी0 उत्तर, कसया और विशेषकर उसके निकट स्थित अनुरूधवा गॉव के टीले से किया जाता है। यहाँ से एक ताम्रपत्र भी मिला है 'जिस पर' '*परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट इति*' लेख उत्कीर्ण है। यहाँ से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर '*श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसंघस्य*' लेख भी मिलता है। फाह्यान ने कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बताया है[22]।

प्रारम्भ में मल्लों की दूसरी राजधानी पावा की पहचान के विषय में भी मतभेद था। कनिंघम ने पड़रौना के निकट छावनी नामक टीले के पावा होने की सम्भावना व्यक्त की[23]। कार्लायल ने सठियांवडीह जो आधुनिक फाजिलनगर बाजार से लगभग 1 किमी0 दक्षिण–पश्चिम दिशा में अवस्थित है, पावा होने की सम्भावना व्यक्त की[24]।

गोरखपुर जनपद मुख्यालय से लगभग 40 किमी0 दक्षिण बड़हलगंज मार्ग पर अवस्थित गगहा नामक पुरास्थल का सर्वेक्षण भी कार्लायल महोदय ने किया। यह स्थल राप्ती नदी से पश्चिम स्थित है। यहाँ से उन्होंने दो ताम्रपत्र अभिलेख उपलब्ध किया, जिन्हें सर्वप्रथम गोरखपुर के तत्कालीन कलेक्टर मि0 लक्सडन ने प्राप्त किया था। इसी क्रम में आगे बढ़ते हुए उन्होनें राप्ती के उस पार गगहा से पूरब मीठाबेल नामक स्थल का भी सर्वेक्षण किया, जहाँ उन्हें ईटों के दो शंक्वाकार ढेर मिले। उनका मत है कि ये ढेर स्तूपों के अवशेष हो सकते हैं[25]। गोरखपुर जनपद मुख्यालय से उत्तर बढ़ते हुए उन्होंने कपिलवस्तु का सर्वेक्षण किया। कपिलवस्तु के निकटवर्ती दो पुरास्थलों, सरकुइयॉ और हाथीगढ़ का भी उन्होंने पता लगाया। इन दोनों स्थलों का उल्लेख फाह्यान एवं ह्वेनसॉग ने भी किया है। आज भी ये स्थल इसी नाम से ख्यात हैं[26]।

गोरखपुर जनपद मुख्यालय से दक्षिण–पूर्व में अवस्थित मीठाबेल के अतिरिक्त कार्लायल ने खुन्दवली (खुन्दौली), रूद्रपुर, दुबौली, राजधानी, हरपुर आदि अनेक स्थलों का अवलोकन किया। राजधानी के टीलों की पहचान उन्होंने पिप्पलिवन से की है। तरकुलहा देवी स्थान का भी उन्होंने अवलोकन किया। इसी क्रम में भोपा में उन्हें तीन शंक्वाकार टीलों के अवशेष मिले। कार्लायल का अनुमान है कि ये टीले स्तूप हो सकते हैं। रूद्रपुर और राजधानी के मध्य अवस्थित, पुरास्थलों के अतिरिक्त उन्होंने निकटवर्ती नदी–नालों एवं जंगलों के

साथ ही इस क्षेत्र की भू–संरचना को भी समझने का प्रयास किया है। उन्होंने इस क्षेत्र में बहने वाली नदियों एवं नालों, गोर्रा, फरेन और मझने का वर्णन किया[27]। कार्लायल कोलियों (छठी शताब्दी ई0पू0 के) की राजधानी रामग्राम की पहचान वर्तमान रामपुर (देवरिया जिला) से करते हैं। बी0सी0 लॉ ने भी इसका समर्थन किया है[28]। कार्लायल के पूर्ववर्ती कनिंघम ने कोलियों के रामग्राम को कुशीनगर एवं कपिलवस्तु के बीच स्थित मानकर आधुनिक देवकली ग्राम से समीकृत करते हैं। वस्तुतः कार्लायल की सर्वेक्षण यात्रा का उद्देश्य जहॉ एक ओर पुरातात्त्विक मंथन था, वहीं दूसरी ओर सम्बन्धित क्षेत्र के भौगोलिक परिवेश का परिचय प्राप्त करना भी था।

गोरखपुर के सीमावर्ती जनपदों, गोण्डा एवं बहराइच की सीमारेखा पर अवस्थित सहेत–महेत (प्राचीन श्रावस्ती) के पुरावशेषों को उजागर करने का श्रेय जनपद के तत्कालीन कलक्टर डॉ0 हुई को है। 1875–76 ई0 में उन्होंने यहाँ उत्खनन कराया[29]। उत्खननोपरांत उन्हें कई जैन तीर्थंकरों की प्रतिमाएं मिलीं।

उत्खनन कार्य 1884–85 में भी जारी रहा। परिणामस्वरूप उन्हें 34 प्राचीन इमारतों के अवशेष मिले[30]। यहाँ से कई शिलालेख, मिट्टी की मुहरें, मूर्तियाँ तथा ताम्रमुद्राएं प्राप्त हुयी हैं, जिन्हें लखनऊ तथा कलकत्ता के संग्रहालयों में रक्खा गया है।

1895 ई0 में जनपद के ग्राम पाली से स्थानीय जमींदार श्री पृथ्वीपाल राय से डॉ0 हुई को एक अभिलेख प्राप्त हुआ[31]। यह अभिलेख लखनऊ संग्रहालय में सुरक्षित है। डॉ0 हुई को धुरियापार परगना के कहला नामक ग्राम से कलचुरि शासक सोढ़देव का अत्यंत महत्त्वपूर्ण अभिलेख, जनवरी 1895 में मिला[32]। यह अभिलेख भी राज्य संग्रहालय लखनऊ में सुरक्षित है। क्षेत्र के जमींदारों ने भी डॉ0 हुई से प्रेरणा लिया। फलतः उन्होंने स्थानीय पुरावशेषों को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। कुछ जमींदारों ने तो प्राचीन लिपियों को पढ़ने की भी कोशिश की। सोहगौरा के जमींदार पंडित सर्वजीत राम त्रिपाठी ने सोहगौरा का प्रसिद्ध ताम्रलेख प्राप्त किया था, जिसे उन्होंने डॉ0 हुई को दिया था[33]। डॉ0 हुई द्वारा इस क्षेत्र से प्राप्त कुछ मूर्तियाँ उनके नाम पर स्थापित, 'हुई पार्क' में आज भी सुरक्षित हैं, जिनमें पालयुगीन विष्णु की मूर्ति (छायाचित्र सं0–1) अवलोकनीय है। गोरखपुर महानगर में अवस्थित विष्णु मंदिर में भी पूर्व मध्ययुगीन विष्णु की एक मूर्ति (छायाचित्र सं0–2) स्थापित की गयी है।

1898 ई0 में डॉ0 हुई ने जनपद में सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया। डॉ0 हुई के अनुसार बघेल का पूर्वी तप्पा, जिसे बघौर भी कहा जाता है, सम्भवतः व्याघ्रपुर रहा हो। परसी बाजार से लगभग 6 कि0मी0 दक्षिण–पूरब, उन्होंने एक बिल्कुल सुरक्षित स्तूप का पता लगाया। परसी से 4 मील उत्तर नदी के छोड़ने में उन्हें एक स्तम्भ का मुख्य भाग मिला, जिसका व्यास 3.5 से 4 फुट तक था। यह स्तम्भ टेढ़ा था[34]।

डॉ0 हुई के पश्चात् गोरखपुर जनपद में जिन विद्वानों ने पुरातात्विक सर्वेक्षण किया, उनमें डॉ0 फ्यूहरर का नाम उल्लेखनीय है। फ्यूहरर एवं स्मिथ ने 1886–87 में अयोध्या एवं सहेत–महेत का मुख्य रूप से सर्वेक्षण किया। डॉ0 फ्यूहरर ने 1896 ई0 में लुम्बिनी के अशोक स्तम्भ का पता लगाया और इस स्थान की पहचान बुद्ध के जन्म स्थान से की[35]। उन्होंने कपिलवस्तु की पहचान तिलौराकोट (नेपाल में स्थित) से की है।

डॉ0 फ्यूहरर ने सरयू से लेकर सदानीरा तक व्यापक पैमाने पर (लगभग सम्पूर्ण भूखण्ड की) सर्वेक्षण कर भौगोलिक पृष्ठभूमि के आधार पर अपना विवरण प्रस्तुत किया। इस दौरान उन्हें पदयात्रा भी करनी पड़ी। अकेले गोरखपुर जनपद में उन्होंने 33 पुरास्थलों को खोज निकाला, जिसे उन्होंने *'मान्यूमेण्टल एन्टिक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध'* नामक ग्रन्थ में प्रकाशित किया। कनिंघम ने सीमित पैमाने पर सर्वेक्षण किया, फलतः इनकी सूची में कुछ महत्त्वपूर्ण पुरास्थलों का ही उल्लेख हुआ है। डॉ0 फ्यूहरर ने तराई में स्थित सगरवा ग्राम का भी उत्खनन कराया, किन्तु यह उत्खनन सफल नहीं हो सका। डॉ0 पी0सी0 मुकर्जी ने उस स्थल को नष्ट करने का श्रेय फ्यूहरर तथा नेपालियों को दिया[36]। डॉ0 फ्यूहरर ने न केवल बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थलों को ही सर्वेक्षण एवं उत्खनन के लिए लिया, बल्कि गोरखपुर जनपद के बौद्धेतर पुरास्थलों का भी सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान पुरास्थलों का पुरातात्त्विक महत्त्व तो दर्शाया ही गया, साथ ही उनके भौगोलिक स्वरूप एवं इतिहास का भी विस्तृत विवरण तैयार किया गया। ह्वीलर के पूर्व जान मार्शल आदि ने जो उत्खनन कार्य करवाये थे, उन उत्खनन कार्यों में स्तरीकरण के सर्वविदित सिद्धांतों को नहीं अपनाया गया था[37]।

विन्सेन्ट स्मिथ, जो एक आइ0 सी0 एस0 अधिकारी थे, का भारतीय इतिहास लेखन में महत्त्वपूर्ण योगदान है। उ0प्र0 में सेवाकार्य करते हुए उन्होंने कमिश्नर के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त किया। इस अवधि में उन्होंने गोरखपुर जिले के महत्त्वपूर्ण पुरास्थलों की ओर भी ध्यान दिया। पुरातत्त्व एवं इतिहास में रुचि होने के कारण उन्होंने जनपद के पुरास्थलों में सुरक्षित ऐतिहासिक धरोहरों का अध्ययन भी किया। अवकाश ग्रहण करने के पूर्व इनके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों के अतिरिक्त मुद्राशास्त्र, पुरातत्त्व एवं इतिहास से सम्बन्धित अनेक शोध–पत्र प्रकाशित हो चुके थे। हिन्दुकाल का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का भी इन्होंने प्रयास किया, जिसका प्रतिफल, *"अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया"* नामक प्रसिद्ध कृति थी। इसका प्रथम संस्करण 1904 में प्रकाशित हुआ[38]। अवकाश के 20 वर्षों में दो अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों *"हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन (1911)"* तथा *"आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (1910)"* के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए। स्मिथ के अनुसार "इतिहास क्रम का ज्ञान आधुनिक समस्याओं के समाधान में सहायक होता है[39]।"

डब्लू0 सी0 पेप्पे, पिपरहवा स्तूप का पता लगा रहे थे। पेप्पे महोदय के इस अनुसंधान में स्मिथ का सहयोग भी सराहनीय है। इस क्षेत्र के पुरातत्त्व के विषय में अपने महत्त्वपूर्ण विचारों को पेप्पे एवं स्मिथ ने "दी पिपरहवा स्तूप कन्टेनिंग रैलिक्स आफ बुद्ध" शीर्षक लेख में व्यक्त किया है[40]। कुशीनगर के तादात्म्य के विषय में कार्लायल के विचारों के प्रति स्मिथ ने शंका व्यक्त की है[41]। कसिया के सम्बन्ध में कनिंघम के विचारों को भी स्मिथ ने अस्वीकार किया[42]। उनका कथन था कि कुशीनगर नेपाल में स्थित था, जहाँ छोटी राप्ती और गंडक का संगम था[43]। महापरिनिव्वानसुत्त के अनुसार मल्लों का शालवन तथा कुशीनारा का उपवतन हिरण्यवती नदी के समीप थे[44]। स्मिथ ने इस नदी की पहचान गंडक नदी से की थी[45]। बाद के उत्खननों से कनिंघम का तादात्मय "कुशीनगर नेपाल में न होकर कसया के निकट" (सम्प्रति कुशीनगर जनपद, उ0प्र0) निश्चित हुआ।

कपिलवस्तु की पहचान के सम्बन्ध में उन्होंने पी0सी0 मुकर्जी के विचारों से सहमति व्यक्त करते हुए दो कपिलवस्तु होने की घोषणा की। उनकी मान्यता थी कि पिपरहवा, फाह्यान की कपिलवस्तु है, जबकि तिलौराकोट ह्वेनसांग की। इस पहचान से कपिलवस्तु के तादात्म्य की समस्या कुछ और जटिल हो गयी[46]।

स्मिथ ने सरयूपार के बौद्ध केन्द्रों के पहचान की दिशा में जो प्रयास किये, वे सभी सही सिद्ध नहीं हुए, तथापि उनके पुरातात्त्विक जिज्ञासा एवं अन्वेषी दृष्टि ने सबको आकर्षित किया। रिज डेविड्स के अनुसार तिलौराकोट ही प्राचीन कपिलवस्तु है। पेप्पे द्वारा पिपरहवा अन्वेषण के आधार पर इसे नवीन कपिलवस्तु होने की सम्भावना व्यक्त की गयी। उनका कथन है कि नये कपिलवस्तु का निर्माण, विड्डूभ द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु के नष्ट किये जाने के बाद किया गया[47]।

पी0सी0 मुकर्जी, फ्यूहरर के उत्तराधिकारी थे। पूर्वी उत्तर–प्रदेश में सर्वेक्षण एवं पुरावशेषों को प्रकाशित करने में इनका योगदान उल्लेखनीय है। 23 जनवरी, 1899 में विन्सेण्ट स्मिथ, कमिश्नर फैजाबाद तथा मि0 सी0 डब्लू0 ओडलिंग सी0 यस0 आई0, सेक्रेटरी एण्ड चीफ इंजीनियर टू गवर्नमेण्ट नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, से निर्देश प्राप्त करने के बाद मुकर्जी तौलिहवा पहुँचे[48]। उन्होंने अनेक स्थलों यथा, तौलिहवा, चित्रादेयी, सगरवा, विकुली, निगाली, अरौराकोट, गुटिबा, लोरी, कुदान, सिसैनियॉ आदि के सर्वेक्षण के पश्चात् विवरण तैयार किया। अशोक के रूम्मिनदेई स्तम्भलेख को उन्होंने प्राप्त किया। कपिलवस्तु का तादात्म्य उन्होंने तिलौराकोट से स्थापित किया। मुकर्जी ने पिपरहवा का भी अवलोकन किया। यद्यपि मुकर्जी के पूर्ववर्ती फ्यूहरर ने भी इस क्षेत्र के सम्बन्ध में अपना विवरण प्रस्तुत किया था, लेकिन यह विवरण यथेष्ट नहीं था। फ्यूहरर ने अपने विवरण में साहित्यिक विवरणों के अतिरिक्त दिशा और दूरी जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं

की उपेक्षा की थी। वस्तुतः यूरोपीय पुरातत्त्ववेत्ताओं का मुख्य उद्देश्य बुद्ध की जन्मस्थली और राजधानी कपिलवस्तु की खोज करना था। ध्यातव्य है कि पी0 सी0 मुकर्जी ने मात्र बुद्ध की जन्मभूमि और उनकी राजधानी कपिलवस्तु को ही अपने सर्वेक्षण का आधार नहीं बनाया, बल्कि उन्होंने बड़े पैमाने पर पुरास्थलों का सर्वेक्षण किया। साथ ही सर्वेक्षित पुरास्थलों का छायाचित्र एवं रेखाचित्र भी तैयार करवाया। मुकर्जी ने अन्य पुरातत्त्ववेत्ताओं की अपेक्षा कहीं अधिक वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया, जो उनकी पुस्तक में उपलब्ध है[49]।

इस अध्याय का वांक्षित पुरातात्त्विक विवरण डॉ0 बुकानन के विस्तृत विवरण का एक अंश मात्र है। भारत में पुरातत्त्व का अध्ययन डॉ0 बुकानन से प्रारम्भ होता है। उन्होंने भारत में अपने पुरातात्त्विक मंथन के द्वारा पुरातत्त्व के अध्येताओं में एक नयी चेतना का संचार किया। उनके सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप जमीन में चिरकाल से दबे हुए पुरावशेष, इतिहास के ऊपर समय के धुँधलके को मिटाने में महत्त्वपूर्ण उपादान सिद्ध हुए हैं।

भारत के पुरातात्त्विक वैभव के सर्वप्रथम मंथन का श्रेय कनिंघम एवं उनके सहयोगी कार्लायल को है। भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास के प्रथम चरण के नायक कनिंघम ही थे। कनिंघम चीनी यात्रियों के यात्रा–वृत्तांत को आधार बनाकर उन पुरास्थलों से बँधे रहे, जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में बुद्ध से था। प्रारम्भ में (19 वीं शती) श्रावस्ती, कुसीनारा, कपिलवस्तु, लुम्बिनी जैसे पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल अज्ञात थे। अतएव कनिंघम ने यदि इन पुरास्थलों को केन्द्र बनाकर सर्वेक्षण किया, तो इसे अन्यथा नहीं लिया जाना चाहिए। उन्होंने जिन पुरास्थलों का तादात्म्य स्थापित किया, उनमें से कुछ प्रमाणित नहीं हो सके, ऐसी दशा में उनकी पहचान निरापद नहीं मानी जाती, लेकिन ध्यातव्य है कि उस समय उन साक्ष्यों एवं सूत्रों का पूर्णतया अभाव था, जिनके सहारे पुरावेत्ता अपनी पुरातात्त्विक यात्रा पूरी करने की कोशिश करता है। बौद्ध–स्थलों के अतिरिक्त जो पुरास्थल अथवा पुरावशेष ज्ञात हुए, उनके विवरण भी कनिंघम लिखते रहे। प्रायः कनिंघम के ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि उनके अध्ययन के केन्द्र बिन्दु, बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थल ही रहे। उन्होंने प्रागैतिहासिक एवं आद्यऐतिहासिक पुरास्थलों के पुरातात्त्विक अवशेषों एवं तत्सम्बन्धी विवरणों को नजरअंदाज किया। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि उन्हें हड़प्पा से कुछ मुद्राएं मिली थीं। चूँकि उस समय तक भारतीय इतिहास की प्राचीनता के विषय में संदेह था। इसी संदेह के पृष्ठाधार में कनिंघम हड़प्पा से प्राप्त मुद्राओं के महत्त्व का ऑकलन नहीं कर सके। कनिंघम के कार्यों के समीक्षकों का आरोप है कि उन्होंने जहाँ एक ओर भौतिक अवशेषों की ओर अपने को केन्द्रित रक्खा, वहीं दूसरी ओर इतिहास की उपेक्षा भी की। उन्होंने उत्खनन की व्यापक एवं वैज्ञानिक विधियों को नहीं अपनाया। यहाँ

उल्लेखनीय है कि कनिंघम का युग भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास का पहला चरण था, जिसमें पुरातत्त्व अभी अपने शैशवकाल में था। साहित्य से ज्ञात महत्त्वपूर्ण प्राचीन स्थलों की पहचान लुप्त हो चुकी थी। अतएव कनिंघम के लिए ऐतिहासिक भूगोल का अध्ययन प्राथमिक आवश्यकता थी, जिसमें उनके योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता।

पूर्वी उत्तर–प्रदेश में कनिंघम के कार्य को आगे बढ़ाने वाले लोग भी बौद्ध स्थलों के प्रति आकर्षित होते रहे। पी0सी0 मुकर्जी तक जिन लोगों ने भी इस क्षेत्र के पुरातत्त्व में रूचि ली, उनके लिए बौद्ध स्थलों का अध्ययन ही मुख्य रहा।

डॉ0 फ्यूहरर को उत्तर–पश्चिम प्रान्त और अवध के शासन ने इस क्षेत्र के स्थलों, विशेष रूप से बौद्ध स्थलों के सर्वेक्षण, अध्ययन, मानचित्र निर्माण और कतिपय स्थलों के उत्खनन का कार्य सौंपा। फ्यूहरर की कार्य–पद्धति अत्यंत दोषपूर्ण थी। उनके विवरण और मानचित्रों की अशुद्धता की ओर उसी समय ध्यान गया। विन्सेण्ट स्मिथ ने पिपरहवा स्तूप सम्बन्धी उनके विवरण की अशुद्धता का उल्लेख किया है[50]। उन्होंने मानचित्रों के निर्माण और स्थलों के बीच दूरियों का भी वास्तविक वर्णन नहीं किया है। उनके विवरण भ्रामक तो थे ही, कहीं–कहीं असत्य भी थे। उनके द्वारा कराये गये अव्यवस्थित उत्खनन के प्रमाण, सगरवा के निकट उत्खनन के निमित्त एक साथ लगाए गये 200 मजदूर हैं। कल्पना की जा सकती है कि यह उत्खनन कैसा रहा होगा। उत्खनन में प्राप्त स्तूपों के नीचे अस्थि-अवशेषों को प्राप्त करने के लिए समूल खोद डाला गया[51]।

फ्यूहरर के बाद पी0सी0 मुकर्जी को यह कार्य सौंपा गया। उन्होंने बड़ी योग्यता और कुशलता से तराई क्षेत्र के पुरावशेषों का अध्ययन किया। मानचित्रों एवं छायाचित्रों की ओर भी उन्होंने विशेष ध्यान दिया। आधुनिक पुरातत्त्व की दृष्टि से उनकी कार्य पद्धति को दोषमुक्त नहीं कहा जा सकता, फिर भी अपने दायित्व का निर्वाह बड़ी निष्ठा के साथ उन्होंने किया। इस बात का प्रमाण उनकी पुस्तक *"ए रिपोर्ट आन ए टूर ऑफ एक्सप्लोरेशन आफ दी ऐन्टिक्विटीज आफ कपिलवस्तु, तराई आफ नेपाल (1899)"* है।

विन्सेण्ट स्मिथ ने भी बौद्ध स्थलों की पहचान सम्बन्धी अनेक समस्याओं पर सुविस्तृत विचार किया। साथ ही पुरातात्त्विक सर्वेक्षण एवं उत्खनन में पर्याप्त रूचि ली। कुसीनारा के पहचान के सम्बन्ध में उनका मत कनिंघम से भिन्न था और वे मानते थे कि यह स्थान नेपाल में होना चाहिए। श्रावस्ती के सम्बन्ध में भी वे कनिंघम से असहमत थे। कपिलवस्तु के सम्बन्ध में उनका एक अलग विचार था। उनके अनुसार, फाह्यान द्वारा वर्णित कपिलवस्तु की पहचान पिपरहवा तथा ह्वेनसांग के कपिलवस्तु की पहचान तिलौराकोट से की

जानी चाहिए। अन्य स्थलों की पहचान के विषय में भी उन्होंने अपने विचार प्रस्तुत किए। फ्यूहरर और पूर्णचन्द्र मुकर्जी के कार्यों के सम्बन्ध में फैजाबाद के कमिश्नर के रूप में वे निर्देश देते रहे[52]। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकांश स्थलों के विषय में स्मिथ द्वारा प्रस्तावित मत असिद्ध हो चुके हैं तथापि स्मिथ का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

वायसराय लार्ड कर्जन (Viceroy Lord Curzon) ने 23 सितम्बर, 1899 ई0 के अपने एक कार्यवृत्त विवरण (Minutes) में भारत में पुरातत्त्व के क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था एवं विसंगतियों के सम्बन्ध में अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। 20 दिसम्बर, 1900 ई0 में उन्होंने भारत सचिव के समक्ष कुछ अत्यन्त ठोस एवं रचनात्मक सुझाव रखे। इन सुझावों में पुरातत्त्व के क्षेत्र में 'तत्कालीन गैरजिम्मेदारी और अव्यवस्था को समाप्त करने' के साथ ही साथ पुरातत्त्व के महानिदेशक के पद को फिर से बहाल (Rivival) करने की पेशकश की गयी थी। 6 फरवरी, 1900 में एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल के समक्ष आभिलेखिकी के सम्बन्ध में बोलते हुए लार्ड कर्जन ने पुरातत्त्व सम्बन्धी दायित्व को इस प्रकार स्पष्ट किया– "उत्खनन और खोज करना, वर्गीकरण, प्रतिलिपि और विवरण तैयार करना, प्राचीन लिपियों की अनुकृति बनाना, पढ़ना तथा इन सबकी यादगार बनाये रखने के लिए उन्हें सुरक्षित रखना हमारा दायित्व है।" भारत सचिव ने कर्जन के प्रस्तावों को स्वीकार किया और 22 फरवरी, 1902 ई0 में जान मार्शल भारत के पुरातत्त्व महानिदेशक बन कर आये।

मार्शल के कार्यभार संभालने के एक वर्ष के अन्दर ही उत्खनन और जीर्णोद्धार या संरक्षण (Conservation) के सम्बन्ध में स्पष्ट नीति एवं निश्चित सिद्धान्तों का निर्धारण किया गया। मार्शल उत्खनन के क्षेत्र में अवैज्ञानिक (Unscientific) तरीकों से कार्य करने के विरूद्ध थे। प्राचीन स्मारकों के रख–रखाव एवं संरक्षण के निश्चित नियम निर्धारित किये गये। महानिदेशक की वार्षिक आख्याओं (Annual Reports of the Archaeological Survay of India) को वे केवल सरकारी रिकार्डों की सूची मात्र बनाने के पक्षधर नहीं थे। इन आख्याओं में वे सामान्य अध्येता के लिए भी कुछ पाठ्य–सामग्री प्रदान करना चाहते थे, ताकि वह भारतीय पुरातत्त्व की नवीन शोधों की प्रगति से अवगत हो सके। इसके अतिरिक्त वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण स्मारकों के जीर्णोद्वार (Restoration) तथा प्राचीन स्थलों (Sites) के परिरक्षण (Preservation) पर जोर दिया गया। महत्त्वपूर्ण उत्खनन कार्यों के सचित्र प्रकाशन को भी बरीयता प्रदान की गयी। मार्शल की महत्त्वपूर्ण भावी योजनाओं में पुरातत्त्व संग्रहालयों एवं भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के लिए एक सुसज्जित पुस्तकालय की स्थापना का कार्य विशेष उल्लेखनीय था। सन् 1903–04 के भारतीय पुरातत्त्व के बजट में पुस्तकालय के लिए 4000 रूपयों का प्रावधान किया गया था[53]। 28 अप्रैल, 1906 को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग को

स्थायी बना दिया गया। 6 सितम्बर, 1928 में अवकाश लेने के बाद भी वे विशिष्ट कार्य के लिए पुनः नियुक्त किये गये और अंततः 1934 में उन्होंने भारत से प्रस्थान किया[54]।

मार्शल यूनान के क्लासिकल (Classical) पुरातत्त्व के मर्मज्ञ एवं विशेषज्ञ थे। इसलिए प्राचीन भारतीय पुरावशेषों में यूनानी तत्त्वों की खोज में उनकी विशेष दिलचस्पी थी। इसके लिए उन्होंने वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित तक्षशिला के टीलों (Mounds) का सन् 1913 ई0 से लेकर 1934 ई0 के मध्य विस्तृत पैमाने पर उत्खनन करवाया[55]। इसके अतिरिक्त इस अवधि में नालंदा, सांची, सारनाथ और भीटा का भी उत्खनन किया गया। इन उत्खननों से बहुमूल्य पुरासम्पदाएं प्रकाश में आयीं। 1915 में इन कार्यों की सारगर्भित आख्या उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी[56]। उन्हीं के कार्यकाल में सैंधव सभ्यता प्रकाश में आयी।

जहाँ तक पूर्वी उत्तर प्रदेश का प्रश्न है, मार्शल के कार्यकाल में 1904 और 1912 के मध्य कुशीनगर का उत्खनन तथा 1907–8 और 1908–9 के मध्य श्रावस्ती का उत्खनन किया गया। इन दोनों सुप्रसिद्ध बौद्ध स्थलों के उत्खनन में अनेक संरचनाएं और पुरावशेष प्राप्त हुए। इस उत्खनन ने कुसीनारा की पहचान के सम्बन्ध में सारे भ्रम समाप्त कर दिये। इन स्थलों के उत्खनन का कार्य श्री दयाराम साहनी और श्री हीरानंद शास्त्री ने सम्पादित किया। उल्लेख्य है कि श्री दयाराम साहनी ने गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलों का सर्वेक्षण भी किया था। यथा सोहगौरा, रूद्रपुर इत्यादि[57]। आज जिस रूप में श्रावस्ती और कुशीनगर के अवशेष उपलब्ध हैं, उसका श्रेय इन्हीं के प्रयत्नों को है।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तथा बीसवीं शताब्दी के आरम्भिक वर्षों में गोरखपुर क्षेत्र के पुरातत्त्व में रूचि लेने वाले कुछ प्रशासनिक अधिकारी और स्थानीय जमींदार भी थे। गोरखपुर के कलक्टर, डॉ0 हुई के कार्यों का उल्लेख इस अध्याय के आरम्भ में ही किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त गोरखपुर के जिलाधिकारियों, डब्लू0 वोस्ट तथा पी0एम0 खरेघाट के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनके कार्यो का विस्तृत विवरण तो उपलब्ध नहीं हो सका है, किंतु इन लोगों के पत्र स्थानीय जमींदार परिवारों में अवश्य सुरक्षित हैं, जिनसे इनकी पुरातत्त्व में रूचि का परिचय मिलता है[58]। इन जमींदारों, में दो लोगों के नाम विशेष रूप से स्मरणीय हैं : वर्डपुर के जमींदार, डब्लू0 सी0 पेप्पे तथा सोहगौरा के पं0 सर्वजीत प्रसाद राम त्रिपाठी। पेप्पे ने 1897 में पिपरहवा के टीले का उत्खनन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उसमें बौद्ध स्तूप के अवशेष दबे हुए हैं। अगले वर्ष उन्होंने इस टीले का विस्तृत उत्खन्न किया, जिसमें अनेक वस्तुओं के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध पिपरहवा मंजूषा प्राप्त हुआ[59]। इसी लेख के आधार पर स्मिथ ने पिपरहवा की पहचान कपिलवस्तु से की थी। ध्यातव्य है कि यह भारत का प्राचीनतम अभिलेख है। पुरातत्त्व में रूचि लेने वाले दूसरे व्यक्ति पं0

सर्वजीत राम त्रिपाठी थे, जिन्हे सोहगौरा का सुविख्यात अभिलेख प्राप्त हुआ था। पुरातत्त्व में उनकी रूचि का ज्ञान उनके परिवार में सुरक्षित डॉ0 हुई, डब्लू. वोस्ट, तथा पी0एम0 खरेघाट के अतिरिक्त दयाराम साहनी के पत्रों से होता है[60]।

भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास में सन् 1944 का विशेष महत्त्व है। इसी वर्ष चार वर्ष के अनुबन्ध पर आर0 ई0 मार्टीमर ह्वीलर (R.E. Mortimer Wheeler) ने रायबहादुर के0 एन0 दीक्षित के उत्तराधिकारी के रूप में भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक का पद ग्रहण किया। ह्वीलर उत्खनन कार्य में वैज्ञानिक विधियों के प्रबल पक्षधर थे। प्रो0 हँसमुख धीरज लाल सांकलिया के शब्दों में "ह्वीलर के व्यक्तित्व में पुरातत्त्व के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों का मणि–कांचन योग था। पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यों के अनुभवी, अनुशासनप्रिय एवं नियोजन सम्बन्धी नैसर्गिक प्रतिभा के धनी ह्वीलर ने भारत में पुरातत्त्व सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण परिवर्तनों तथा उसकी सर्वांगीण प्रगति के लिए अनेक कार्य किए"। 1945 ई0 में केन्द्रीय पुरातत्त्व सलाहकार परिषद् का गठन किया गया, जिसका उद्देश्य, पुरातत्त्व सम्बन्धी आवश्कताओं एवं भावी योजनाओं के विषय में केन्द्रीय शासन को परामर्श देना था। ह्वीलर, स्तर–विन्यास एवं त्रिविमित्तीय नाप–जोख पद्धति (Three dimensional Recording) के प्रबल हिमायती थे[61]।

19 वीं शताब्दी के पश्चात् लगभग छः (6) दशकों तक गोरखपुर परिक्षेत्र महत्त्वपूर्ण पुरातात्विक अनुसंधानों से वंचित रहा। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस परिक्षेत्र में 1959 में पहली बार वैज्ञानिक विधि से श्रावस्ती का उत्खनन करने का श्रेय काशीहिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 कृष्णकुमार सिन्हा को है[62]। इस उत्खनन के मूलतः दो प्रयोजन थे– प्रथम, स्थल की प्राचीनता एवं सांस्कृतिक क्रम का ज्ञान तथा द्वितीय, संरचनाओं का विवरण अर्थात् विशाल भवनों के निर्माण के इतिहास का ज्ञान।

श्रावस्ती के उत्खनन से तीन कालों के अवशेष प्रकाश में आये[63]। यहाँ के प्रथम काल से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्डों के साथ चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के टुकड़े प्राप्त हुए। यहां से प्राप्त चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के टुकड़े हस्तिनापुर के समान, स्वतंत्र रूप से अलग स्तर में न प्राप्त होकर उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्डों के साथ प्राप्त हुए हैं, जिसका काल 600–300 ई0 पू0 निर्धारित है। इसके अलावा पशुओं की मृण्मूर्तियों के साथ मिट्टी की अनेक तश्तरियॉ भी प्राप्त हुयी हैं। कॉंच की चूड़ियों के साथ–साथ तांबे एवं लोहे की उपस्थिति भी इस काल में अवलोकनीय है।

द्वितीय काल से अत्यंत उपयोगी बर्तनों, यथा–छोटे कटोरे, गर्दन–युक्त जार आदि प्राप्त हुए हैं, जिन पर अलंकरण का अभाव परिलक्षित होता है। इस काल से मानव मृण्मूर्तियाँ भी प्राप्त हुयी हैं। इनमें मिथुन

मूर्तियाँ तथा हाथी की अलंकृत मूर्ति महत्त्वपूर्ण हैं। इन सभी मूर्तियों का विशेष धार्मिक महत्त्व है। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के मटके भी प्राप्त हुए हैं। इस काल के सबसे निचले स्तर से प्रचुर मात्रा में बाणाग्र भी प्राप्त हुए हैं। इस काल में भवनों का निर्माण किया गया। कच्ची मिट्टी की दीवारों के ऊपर, पकी ईटों से दुर्ग बनाये जाने के प्रमाण भी मिले हैं, जो कई चरणों में निर्मित किये गये थे। इस काल से तीन प्रकार के सिक्के प्रकाश में आये, अलिखित ढले हुए सिक्के, आहत सिक्के तथा अयोध्या के शासकों के सिक्के।

तृतीय काल में नगर के वीरान् होने के प्रमाण मिले हैं। प्राचीन भवनों के ऊपर (यत्र–तत्र) लोगों ने अपने गृह निर्मित कर लिये। इस काल से उपयोगी पात्रों के अवशेष भी मिले हैं। इसके अतिरिक्त मृण्मूर्तियॉ भी प्रकाश में आयी हैं।

1961–62 में पहली बार गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से राप्ती एवं आमी नदियों के संगम पर स्थित सोहगौरा के टीले का उत्खनन किया गया। टीला लगभग 150 एकड़ क्षेत्र में फैला हुआ था। यह उत्खनन सरयूपार परिक्षेत्र के पुरातत्त्व के लिए एक अतिरिक्त प्रेरणा साबित हुआ। इतिहासकार प्रो0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय के निर्देशन एवं डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी तथा डॉ0 दयानाथ त्रिपाठी के सहयोग से प्रथम बार गोरखपुर जनपद में सोहगौरा नामक पुरास्थल का सर्वेक्षण एवं पूर्ण वैज्ञानिक विधि से सीमित पैमाने पर उत्खनन कार्य किया गया[64]। सोहगौरा के टीले के उत्खनन से ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अस्तित्व का उद्घाटन हुआ। इसकी पहचान सफेद रंग से चित्रित काले एवं लाल रंग के पात्रों से होती है। पुनः इस पुरास्थल का सम्पूर्ण सांस्कृतिक अनुक्रम, टीले के उत्तरी पश्चिमी भाग में 5 वर्ग मीटर की खन्ती खोदकर प्राप्त किया गया। यह उत्खनन 1974–75 में किया गया। सम्पूर्ण सांस्कृतिक अनुक्रम को छः कालों में विभक्त किया गया है, जो नवपाषाण काल से लेकर मध्ययुगीन सँस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ जो उत्खनन कार्य हुआ उसका मुख्य उद्देश्य था[65]–

(1) यहाँ के सांस्कृतिक अनुक्रम का निर्धारण करना।

(2) विभाग के पोस्टग्रेजुएट विद्यार्थियों को मैदानी पुरातत्व या क्षेत्रीय पुरातत्त्व (Field Archaeology) के क्षेत्र में निष्पक्ष एवं व्यवहारिक प्रशिक्षण देना।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से डॉ0 डी0 मित्रा के नेतृत्व में नेपाल तराई के मध्य क्षेत्र के सर्वेक्षण हेतु 1962 में एक सर्वेक्षक दल आया। इस दल ने कोदान का व्यापक तथा तिलौराकोट का आंशिक उत्खनन किया, लेकिन तिलौराकोट से ऐसा कुछ नहीं प्राप्त हुआ जिससे इस स्थल को कपिलवस्तु

स्वीकार किया जा सके। उन्होंने यह अनुशंसा की कि, पिपरहवा निग्रोधाराम है तथा उसके निकट के टीले कपिलवस्तु सम्भव है, न कि तिलौराकोट[66]।

गोरखपुर जनपद में ही पूर्व ऐतिहासिक स्थल, बनरसिहा के सर्वेक्षण के दौरान उन्हे ईंटों से निर्मित अवशेष प्राप्त हुए। भूरे एवं लाल पात्र, कैरीनेटेड हाड़ी तथा भोजन पकाने के बर्तनों के अतिरिक्त कुषाण सिक्के (तॉबे के), मिट्टी के मनके एवं मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुयी है[67]।

बी0 एच0 यू0 (बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी) के प्रो0 ए0 के0 नारायण ने 1962–63 में अपने सहयोगी श्री पी0 सी0 पंत के साथ गोण्डा, बस्ती एवं देवरिया जनपदों के अनेक पुरास्थलों का सर्वेक्षण किया[68]।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के डॉ0 आर0 बी0 सिंह ने 1963–64 में बस्ती, देवरिया एवं गोरखपुर की कुछ तहसीलों का सर्वेक्षण किया, जिसमें महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाश में आयी[69]। गोरखपुर जनपद में उन्होंने बांसगाँव एवं फरेन्दा तहसीलों का सर्वेक्षण किया। बांसगाँव तहसील के बहुत से स्थलों से काले–लाल मृद्भाण्डों के टुकड़े मिले। इसके अलावा एन0बी0पी0 (उत्तरी काली चित्रित) मृद्भाण्ड से सम्बन्धित बहुत से स्थल प्रकश में आये। इसी क्रम में उन्हें परसा दयाराम एवं राजधानी नामक पुरास्थलों से चाँदी की आहत मुद्राएं प्राप्त हुयीं। गोरखपुर जनपद में खडखोड़ा एवं सहजनवां में उन्हें स्तूप एवं चैत्य के अवशेष मिले। उन्हें मध्ययुगीन ग्लेज्डवेअर के टुकड़े (ठीकरे) भी बहुत से पुरास्थलों से मिले। पात्रों के ठीकरों के अतिरिक्त मानव एवं पशुओं की बहुत सी (गुप्त–युग एवं मध्य–युग की) मृण्मूर्तियाँ भी उपलब्ध हुयीं। कुछ पुरास्थलों से कुषाण सिक्के भी पाये गये।

जनवरी 1971 में श्री के0 एम0 श्रीवास्तव, पुरातत्त्व अधीक्षक पटना सर्किल, ने पिपरहवा का उत्खनन प्रारम्भ किया, जिसका मूल प्रयोजन कपिलवस्तु की पहचान करना था। इस उत्खनन से जहाँ कपिलवस्तु की पहचान सम्भव हुयी, वहीं अनेक पुरावशेष भी प्रकाश में आए। यथा अनेक प्राचीन, संरचनाओं के अवशेष, मुद्राछाप, मृण्मूर्तियॉ, सिक्के एवं मनके आदि[70]।

गेनवरिया (यह पुरास्थल पिपरहवा के निकट है) के उत्खनन से विभिन्न सांस्कृतिक कालों की जानकारी हुयी[71]। यहॉ के प्रथम काल से भूरे रंग के पात्र, लालरंग के पात्र, लाल लेपित, चाकलेट लेपित तथा काले चमकीले–पात्रों के टुकड़े प्राप्त हुए।

यहाँ के द्वितीय काल से मुख्य रूप से उत्तरी कृष्ण मार्जित टुकड़ों के अतिरिक्त काले चमकीले पात्रों के टुकड़े प्राप्त हुए।

तृतीय काल से भी भूरे मृद्भाण्डों के साथ ही कृष्ण लेपित पात्रों के टुकड़े प्रकाश में आए। किंतु इनका रंग एवं आकार पूर्णतया परिवर्तित हो चुका था।

चतुर्थकाल से लाल बर्तनों के अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस काल से लाल, चमकीला गेहुँआ तथा लाल पात्रों के अनेक कटोरे प्राप्त हुए हैं। चाकलेट लेपित पात्रों के टुकड़े भी इस काल में मिलते हैं।

पिपरहवा उत्खनन से अनेक स्तूप, बिहार तथा अन्य संरचनाएं प्रकाश में आयीं। स्तूप के पूर्वी किनारे से वह मुद्राछाप प्राप्त हुआ, जिस पर *"देवपुत्र बिहारे कपिलवस्तु भिक्खु संघस"* "लेख अंकित था"[72]। सरयूपार क्षेत्र की पुरासम्पदा एवं बौद्ध पुरास्थलों की पहचान की दिशा में उक्त मुद्रा प्राप्ति से अभिनव प्रकाश पड़ा। कपिलवस्तु की स्थिति निर्धारित हो जाने के बाद अब अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलों को प्रकाश में लाने के लिए भी एक प्रेरणा मिली, साथ ही साथ नेपाल की तराई के सांस्कृतिक कालक्रम का ज्ञान सम्भव हो गया।

1975–76 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी एवं संग्रहालयाध्यक्ष (क्यूरेटर) श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने सरयूपार क्षेत्र, विशेषतः बस्ती जनपद के पुरास्थलों यथा, लहुरादेवा, सूसीपार, रामनगर घाट, बडगो तथा गेडार से लघु पाषाण उपकरण उपलब्ध किया। श्री त्रिपाठी के पुरातात्त्विक मंथन के फलस्वरूप सरयूपार क्षेत्र के पुरातत्त्व मे एक नवीन अध्याय का श्री गणेश हुआ । 1977–79 में प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी तथा उनके सहयोगियो, सर्वश्री कृष्णानन्द त्रिपाठी, टी0 एन0 दूबे एवं चन्द्र मौलि शुक्ल ने सरयूपार क्षेत्र के देवरिया, गोरखपुर एवं बस्ती जनपदों में उत्खनन तथा सर्वेक्षण कार्य किया[73]।

जनपद के बांसगॉव तहसील में भी सर्वेक्षण कार्य किया गया। यहाँ के प्रमुख पुरास्थलों में कुरी बाजार, कोठा एवं नरहन का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुरी बाजार से जो अवशेष प्राप्त हुए हैं, उनमें लाल, काले एवं लाल, कृष्ण लेपित, भूरे एवं उत्तरी कृष्णमार्जित बर्तनों के पुरावशेष प्राप्त हुए।

बांसगाँव तहसील के अन्तर्गत राप्ती के तट पर स्थित कोठा नामक पुरास्थल से ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड वेअर, रेड–एण्ड ग्रे–वेअर, के पुरावशेष मिले हैं।

बस्ती जनपद में बड़गों, सूसीपार, गेड़ार आदि स्थलों से कार्डेड वेअर, ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक स्लिप्ड–वेअर, ग्रे–वेअर एवं रेड–वेअर के टुकड़ों के साथ लघु पाषाण उपकरण भी मिले, जिनमें कोर, प्लेट, प्लेट के टुकडे, चैल्सिडनी, क्वार्टज, क्रिस्टल और चर्ट उल्लेखनीय हैं[74]।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग की ओर से 1974–75 के दौरान व्यापक रूप से सर्वेक्षण कार्य किया गया जिसमें लगभग 50 स्थलों को खोजा गया। यह खोज कार्य सरयू नदी के किनारे बांसगाँव तहसील में हुआ[75]। ये स्थल तालिका सं0 1 में वर्णित हैं :

तालिका सं० 1 : बांसगाँव तहसील, गोरखपुर जनपद के पुरास्थलों की सूची

जनपद	ग्राम / पुरास्थल	सांस्कृतिक अवशेष
गोरखपुर	वघौरा (Baghaura)	मध्यकालीन पात्र
"	बाहपुर (Bahpur)	"
"	बालाबनीति (Bala Baniti)	"
"	बनवल डीगार (Banaval Deegar)	"
"	बड़दादेई (Baradadei)	"
"	बड़गों (Baragaon)	"
गोरखपुर	बड़ानगर (Baranagar)	एन0बी0पी0, प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
"	बड़हलगंज	मध्यकालीन–पात्र
"	बाड़पुर	"
"	बेलसरहा	"
"	बीउरी (Beuri)	"
"	भरौली	"
"	भील्टा	"
"	बिसुनपुरा	प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
"	चरन पुदुका (Charan Puduka)	मध्यकालीन पात्र
"	चड़हाहर (Charhahar)	"
"	छितौना	ग्रे–वेअर
"	छोटी बीउरी	मध्यकालीन पात्र
"	धुरियापार	प्रारम्भिक ऐतिहासिक, मध्यकालीन पात्र
"	दुघवा (Dughava)	ग्रे वेअर, प्रारम्भिक–ऐतिहासिक, पात्र एवं कुषाण सिक्के
"	गोपालपुर	मध्यकालीन पात्र
"	कहला	"
"	खुटहन	"
"	कौरर (Kaorar)	"
"	कुकरहवा	"
"	कुकुरभुक्का (Kukurbhukka)	"

क्रमशः :

जनपद	ग्राम / पुरास्थल	सांस्कृतिक अवशेष
गोरखपुर	कुरहवा ऐम (Kurhawa Am)	मध्यकालीन पात्र
"	मदरिया	मध्यकालीन पात्र व सिक्के
"	मेहरा (Mehara)	मध्यकालीन पात्र
"	मजुआपार (Majuapar)	"
"	मकंदवार	ग्रे–वेअर, प्रारम्भिक ऐतिहासिक, पात्र एवं कुषाण सिक्के
"	मकरमपुर (Makrampur)	मध्यकालीन पात्र
"	माया बाब्ला का भीटा (Maya Babla ka Bhita)	"
"	नरहन	ग्रे–वेअर, प्रारम्भिक ऐतिहासिक, पात्र
"	नरहपुर	मध्यकालीन पात्र
"	नारायनपुर	मध्यकालीन पात्र
"	नवदा	"
"	नेउरा–देउरा (Neura-Deura)	"
"	ओझौली	"
"	पडौली के समय का थाना (Padaulee-Kesamai-ka-Thana)	"
"	पुष्कर	"
"	राजा साहेब का कोट	"
"	रमामन (Ramaman)	"
"	रानीपुर	"
"	रसुलपुर	"
"	सहदौली	एन0 बी0 पी0
"	सहसौली	प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
"	सनीचरा	"
"	शाहपुर	ग्रे वेअर
"	योगीवीर	मध्यकालीन पात्र

क्षेत्र में किए गए अन्य खोज कार्य

गोरखपुर जनपद में स्थित नरहन नामक पुरास्थल का उत्खनन 1983 से 1988–89 तक अनवरत चलता रहा। यह उत्खनन कार्य बी0एच0यू0 (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह के विशेष निर्देशन में चला। इस उत्खनन में पाँच सांस्कृतिक कालों के अवशेष मिले, जिनका विस्तृत विवरण तृतीय एवं चतुर्थ अध्याय में दिया गया है। उत्खनन के दौरान प्रो0 सिंह एवं उनके सहयोगियों के मन में इस संस्कृति के विस्तार को जानने की नैसर्गिक जिज्ञासा उत्पन्न हुयी। फलतः कुआनों और घाघरा (सरयू) नदियों के किनारे बसे गॉवों का व्यापक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के दौरान नरहन संस्कृति से सम्बन्धित लगभग एक दर्जन पुरास्थल प्रकाश में आए[76], जिनका संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित पंक्तियों में दिया जा रहा है :

तुलसीडीह / डीघा :

यह पुरास्थल गोरखपुर जनपद में सिकरीगंज से 12 किमी0 उत्तर–पश्चिम दिशा में स्थित है। टीला लगभग 10 एकड के क्षेत्र में विस्तृत है। यहॉ से ब्लैक एण्ड रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर और रेड वेअर के ठीकरे प्राप्त हुए हैं। टीले से गुप्तकाल तक के आवासीय साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं।

अम्मादेई :

यह पुरास्थल बस्ती जनपद में मुखालिसपुर से 2 किमी0 पूरब स्थित है। टीले का लगभग दो तिहाई भाग कुआना नदी की धारा में विलीन हो चुका है। यद्यपि यहॉ से ब्लैक स्लिप्ड वेअर और रेड वेअर के ठीकरे प्राप्त हुए हैं, तथापि यहॉ पर मुख्यतः ब्लैक स्लिप्ड वेअर ही मिलते हैं। ब्लैक स्लिप्ड वेअर में अच्छे कटोरे और कलश प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ से कुछ नए प्रकार के बर्तनों के अवशेष भी खोजे गए हैं। यहाँ से लाल रंग के नोकदार तसले (Lipped basines) भी प्राप्त हुए हैं। यह पुरास्थल कुषाणों और गुप्तों के समय बहुत ही समृद्ध था, जिसका प्रमाण इनके भवनों के अवशेष हैं।

गायघाट :

यह टीला बस्ती जनपद में स्थित मुखालिसपुर से 3 किमी0 पूरब, लगभग 10 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ से डिस आन स्टैण्ड / पेडस्टल बाउल ऑफ ब्लैक एण्ड रेड वेअर भी मिले हैं। वर्तमान समय में यहॉ पर कृषि–कार्य किया जा रहा है तथा ग्रामीणों के द्वारा इसे चौरस या समतल बना दिया गया है।

कोडवट

यह पुरास्थल 5 एकड़ के क्षेत्र मे विस्तृत है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह टीला करूही (Karuhi) के निकटवर्ती टीले का एक भाग है। टीले पर कृषि-कार्य हो रहा है। ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर तथा रेड वेअर के ठीकरे यहाँ से प्राप्त हुए हैं, जिनकी समानता अहिच्छत्र के ऊपरी सतह से प्राप्त 10 A प्रकार से की जा सकती है।

सिकरीडीह :

यह टीला गोरखपुर-गोला मार्ग पर स्थित सिकरीगंज के निकट है, जो लगभग 10 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है। यहॉ से एक पृथक (एकल) संस्कृति के संकेत मिलते हैं, जिनकी तुलना नरहन से बहुतायत से मिले, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरों से की जा सकती है। यहाँ के अन्य महत्त्वपूर्ण मृद्भाण्ड उद्योगों में ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड–स्लिप्ड–वेअर और रेड–वेअर हैं। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (बी0आर0डब्लू) के कुछ चित्रित टुकडे भी यहाँ से प्राप्त हुए हैं। वर्तमान समय में यहाँ पर कृषि–कार्य किया जा रहा है। इस टीले को ग्रामीणों के द्वारा समतल बना दिया गया है।

इमलीडीह :

यह पुरास्थल गोला–गोरखपुर मार्ग पर अवस्थित है। टीला लगभग 15–20 एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत है। वर्तमान समय में इमलीडीह गाँव, टीले के पूर्वी छोर पर बसा हुआ है। यहाँ से नरहन और सिकरीडीह के समान पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। सिकरीडीह के समान यहाँ भी पृथक संस्कृति के साक्ष्य मिलते हैं। यहाँ का सांस्कृतिक जमाव 3.5 मीटर से अधिक नहीं है। यहां से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के ठीकरे बहुतायत से मिले हैं। पात्रों में पेडस्टल बाउल, तसले और कलश (Vases) प्राप्त हुए हैं। ये सभी पात्र ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के स्तर से प्राप्त हुए हैं। ब्लैक-स्लिप्ड पात्रों में मुख्य रूप से कटोरे तथा थालियाँ मिली हैं। इसके अतिरिक्त कुछ चित्रित, बी0 एस0 डब्लू0 (ब्लैक स्लिप्ड वेअर) भी खोजे गए हैं। यह पुरास्थल पूरी तरह सुरक्षित है, तथा बाद में कोई जमाव नहीं हुआ है।

धुरियापार :

यह टीला गोरखपुर जनपद मुख्यालय से 46 किमी0 की दूरी पर कुआनो नदी के बाम–तट अवस्थित है। इस पुरास्थल के इतिहास के विषय में कहा जाता है कि कौशिक राजा धूरचन्द्र ने यहाँ पहली बार

आक्रमण किया था। परम्परा के अनुसार धूरचन्द्र ने अपने नाम के आधार पर इस स्थान का नामकरण धुरियापार किया और एक लम्बे समय तक यहॉ कौशिकों की स्थिति बहुत मजबूत रही।

यह टीला लगभग 20 एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत है। अनुमान है कि यहाँ का सांस्कृतिक जमाव लगभग 6 मीटर है। मृण्पात्रों में मुख्यतया ब्लैक-एण्ड रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर और लाल रंग के पात्र हैं। ब्लैक-स्लिप्ड पात्रों में कटोरे और थालियाँ तथा ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर में कलश मुख्य पात्र हैं। मध्यकाल तक के आवासीय साक्ष्य इस टीले से प्राप्त हुए हैं। टीले के कटान से कुषाण और गुप्त कालो की पकी हुयी ईटों से बनी इमारतों के साक्ष्य दिखायी पड़ते हैं।

मदरहा :

यह टीला घाघरा नदी के बाम तट पर नरहन से लगभग 3 किमी0 की दूरी पर स्थित है। टीला लगभग 3 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है। यहाँ से प्राप्त मृद्भाण्डों में मुख्यतया ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड–स्लिप्ड वेअर और रेड–वेअर प्राप्त हुए हैं। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर में मुख्यतः डिसेज आन स्टैण्ड/पेडस्टल बाउल मिलते हैं। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर में कटोरे भी विशेष रूप से मिलते हैं। पेन्टेड ब्लैक-स्लिप्ड के कुछ ठीकरे सतह से प्राप्त किये गए हैं।

उपर्युक्त पुरास्थलों के अतिरिक्त कुछ अन्य पुरास्थल भी हाल के वर्षो में प्रकाश में आए हैं।

खैराडीह :

यह पुरास्थल घाघरा नदी के बाम तट पर अवस्थित है, जहाँ पर आजमगढ़,देवरिया और बलिया की सीमाएं मिलती हैं। यह पुरास्थल तकनीकी दृष्टि से बलिया जनपद में अवस्थित है। इस पुरास्थल का उत्खनन बी0एच0यू0 के प्रो0 के0 के0 सिन्हा एवं वीरेन्द्र प्रताप सिंह ने 1980–86 के दौरान किया है, लेकिन ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का जमाव अंतिम दो सत्रों के उत्खनन के दौरान ही मिला है। इस पुरास्थल के सभी लक्षण 'नरहन संस्कृति' से मिलते हैं। मुख्य अंतर मात्र इतना है कि श्वेत–चित्रित– ब्लैक–स्लिप्ड वेअर अधिक भारी हैं। श्वेत चित्रित काले एवं लाल रंग के पात्रों का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। खैराहीह के प्रथम काल से तीन रेडियो कार्बन (C^{14}) तिथियाँ मिली हैं, जो निम्नलिखित है : 1120±90 बी0सी0, 1030±160 बी0सी0 और 940±150 बी0सी0। ये तिथियॉ नरहन की रेडियो कार्बन तिथियों (C^{14}) 1100±110 बी0सी0 तथा 1160±110 बी0सी0 से समानता रखती हैं। ये तिथियाँ सोहगौरा की दो तिथियों : 1335±113बी0सी0 और 1235±134 बी0सी0, से भी समानता रखती हैं।

ब्रह्मपुर :

आजमगढ़ जनपद में सरयू नदी के पुराने तट पर (नदी के प्रारम्भिक मार्ग) दो प्राचीन बस्तियाँ है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण स्थल, ब्रह्मपुर है, जो लटघट (Latghat) से 2 किमी0 पश्चिम, राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर स्थित है। यह मार्ग आजमगढ और गोरखपुर को जोड़ता है। इस पुरास्थल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, कार्डेड वेअर, ग्रे–वेअर और रेड–वेअर उपलब्ध हुए हैं[77]।

लालमनपुर :

यह पुरास्थल विकास खण्ड कोयलसा (Koylsa) में बुरहानपुर (Burhanpur) जो कि आजमगढ़–फैजाबाद उच्चमार्ग पर स्थित है, से 4 किमी0 उत्तर–पश्चिम दिशा में अवस्थित है। यहाँ पर प्राचीन सरयू नदी जनपद आजमगढ़ और फैजावाद के बीच एक विभाजक रेखा बनाती है। प्राचीन बस्ती (आबादी) प्राचीन नदी के दोनों किनारों पर फैली हुयी है। प्राचीन नदी का तल कई एकड़ में विस्तृत है। इस पुरास्थल का कुछ भाग फैजाबाद जनपद में पड़ता है। वर्तमान समय में ग्रामीणों के द्वारा इस पुरास्थल पर ईंट के निमित्त भट्ठा बनाया गया है। फलतः यह पुरास्थल नष्ट हो चुका है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, ग्रे–वेअर और रेड–वेअर उपलब्ध हुए हैं।[78]

कुछ पुरास्थलों से बाद के काल के अवशेष, यथा एन0 बी0 पी0 वेअर तथा इससे जुड़े हुए अन्य मृण्पात्रों के साथ ही कुषाण एवं गुप्त काल की पकी हुयी ईटों की इमारतों के अवशेष तथा अन्य पुरावशेष, इस बात के संकेत देते हैं कि कुछ स्थलों पर 'नरहन संस्कृति' के बासिन्दों के बाद भी अनवरत रूप से बस्तियाँ बसती रहीं। इन स्थलों को बस्ती और गोरखपुर जनपदों में कुआनो और घाघरा नदियों के किनारे खोज लिया गया है, जिनका उल्लेख निम्न तालिका में किया जा रहा है :

तालिका संख्या 2

गोरखपुर जनपद में खोजे गये पुरास्थलों की सूची

(प्राग्धारा अंक 1, 1990–91, पृ0 77–79 के आधार पर)

नं0	स्थल का नाम	तहसील	मृण्पात्र उद्योग	अन्य अवशेष	प्रा0 संदर्भ	विशेष (Remarks)
1.	अरांव जगदीश	बॉसगॉव	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा रेड वेअर	मिट्टी का लोढ़ा (Pestle)		टीले पर निर्माणाधीन ट्यूब–बेल का साक्ष्य
2.	असौंजी	गोला	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, तथा रेड–वेअर			
3.	बनकटी		बी0एस0डब्लू0 और अहिच्छत्र का 10 ∧	गुप्त और कुषाण काल की ईंटे		
4	भरवलिया (Bharwalia)	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, और रेड वेअर			
5.	धुरियापार	गोला	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड–स्लिप्ड वेअर और एन0 बी0 पी0 वेअर।	मिट्टी की बनी मानव और पशु मूर्तियाँ, मिट्टीं का बना लोढ़ा, मिट्टी के मनके एवं बिम, (Pottery disc) पत्थर की बनी विष्णु की मूर्ति, कुषाण, गुप्त और मध्यकाल के भवनों के अवशेष।		टीले पर एक बड़े शहर के ध्वंसावशेष (साक्ष्य) मिले हैं।
6.	दुघरा (Dughara)	गोला	ग्रे वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, रेड वेअर।			अन्य पुरास्थलों की अपेक्षा पूरी तरह सुरक्षित पुरास्थल है।
7.	दुरूई (Durui)	गोला	बी0 एस0 डब्लू, जी0 डब्लू0, आर0 डब्लू0, और रस्सी की छाप वाले मृण्पात्र	टेराकोटा या मिट्टी की बनी मानव मूर्तियाँ, मिट्टी का बना हुआ लोढ़ा, तॉबे के सिक्के, कुषाण और गुप्तकाल के भवन।		टीला लगभग 20 एकड़ में फैला हुआ है यह टीला पूरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है, क्योंकि यहाँ से नदी का पानी नहर में बहाया गया है। यह टीला कुआनो और घाघरा नदियों के संगम पर स्थित है। टीले पर एक बड़े कस्बे के अवशेष या साक्ष्य विद्यमान है।
8.	गोपालपुर	गोला	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा रेड वेअर	टूटी हुयी मानव मृण्मूर्ति।		
9.	इमलीडीह	खजनी	प्लेन–एण्ड–पेन्टेड ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, प्लेन–एण्ड–पेन्टेड ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर,	मिट्टी के बने गेंद और परित्यक्त पत्थर के फलक।		एक ताम्रपाषाणिक पुरास्थल। बर्तनों का आकार नरहन के बर्तनों के समान है। एक आधुनिक मस्जिद टीले पर है।

क्रमशः –

			रेड–स्लिप्ड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, तथा एसोसिएटेड रेड–वेअर			टीले का आधा भाग मानव निवास में प्रयुक्त।
10.	जददूपट्टी	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ग्रे वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड वेअर।			वर्तमान समय में यह गाँव (जददूपट्टी) टीले पर स्थित है।
11.	झौन (Jhaun)		रेड वेअर।			प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल
12.	कोटवा	खजनी	ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड–वेअर			
13.	मदरहा	गोला	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर।			
14.	मलौली (Malauli)		रेड वेअर			प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल
15.	मकन्दवार	गोला	रेड वेअर	छोटे आकार की मिट्टी की मानव मूर्ति।		एक बड़ा शहर होने की सम्भावना। टीले पर मकंदवार गाँव बसा हुआ है।
16	राजधानी		ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर।	पाषाण निर्मित शिव की मूर्ति।		कृषि–कार्य के कारण टीला बुरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है।
17.	रसूलपुर		रेड वेअर	पशु–मृण्मूर्ति		प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल।
18.	सिकरीडीह	खजनी	प्लेन एण्ड पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेड वेअर, प्लेन एण्ड पेन्टेड ब्लैक स्लिप्ड वेअर।			टीले का आधा हिस्सा लोगों के आवास के रूप में है।
19.	तुलसीडीह / डीहवा	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–सिल्पड वेअर, एन0बी0पी0, रेड वेअर, रस्सी के छाप वाले मृण्पात्र तथा अच्छित्र 10A।	लोढ़ा तथा मिट्टी के बर्तन के बिम या चक्रिका (Pottery disc)		ताम्रपाषाणिक स्थल
20.	त्रिलोकपुर	बांसगॉव	रेड वेअर।			
21.	उरूवा–डिहवा	गोला	ग्रे वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर	मिट्टी का बना लोढ़ा।		टीले पर वर्तमान समय में उरूवा नामक गाँव बसा हुआ है।
22.	उस**रैन**	खजनी	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर, मुस्लिम काल के ग्लैज्ड वेअर।	मिट्टी के मनके		

1990–91–92 में उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व संगठन की ओर से इस परिक्षेत्र में किए गये सर्वेक्षण में लगभग 400 पुरास्थल (ग्राम) प्रकाश में आए[79]। यह सर्वेक्षण दो चरणों में सम्पादित हुआ। प्रथम चरण का सर्वेक्षण 1990–91 में दिसम्बर से लेकर मार्च तक चला। पुनः दूसरे चरण का सर्वेक्षण कार्य अगस्त 1992 से

सितम्बर 1992 तक चला। फलतः जो पुरास्थल प्रकाशित हुए उनमें गोरखपुर जनपद में अवस्थित स्थलों की चर्चा यहाँ निम्न पंक्तियों में की जा रही है–

अतर सिंगारी :

अतर सिगारी गांव, खजनी के निकट स्थित है। स्थानीय रूप से यह 'उजार मौजा' के नाम से जाना जाता है। प्रारम्भ में जब यह गाँव अस्तित्व में आया, उसी समय से 'राजस्व विभाग के रिकार्ड में इस नाम का प्रयोग किया जा रहा है। सर्वेक्षण के दौरान यहॉ से रेड–वेअर और कृष्ण मार्जित बर्तनों के ठीकरे प्राप्त हुए हैं।

ग्रामवासियों ने यह जानकारी दी कि बरसाती कटाव के कारण प्राचीन काल में निर्मित ईटें भी इस पुरास्थल से मिलती हैं। वर्तमान समय में यहाँ पर तेजी से कृषि–कार्य हो रहा है।

बॉसपार (Lat 26°, 43', 48" N, Long 83° 14' 49" E)

यह पुरास्थल गोरखपुर मुख्यालय से 15 कि0मी0 की दूरी पर खजनी मार्ग पर जैतपुर (Jaitpur) के निकट स्थित है। यहाँ की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा रेड वेअर की है, जिसमें कटोरे, थालियाँ और पानी के पात्र, (Water vessels) मुख्य पात्र-प्रकार हैं। यहाँ से एक ऐसे बर्तन का ठीकरा भी प्राप्त हुआ है, जिस पर पकाने के बाद खरोंच के निशान (Scratches) हैं। यह विशेष महत्त्वपूर्ण पात्र है।

भीटी-खोरिया (Lat 26°, 41', 13" N, Long 83° 16' 36" E)

यह गाँव गोरखपुर जनपद में सहजनवां से लगभग 1 किमी0 की दूरी पर स्थित है। इस गाँव का यह टीला अपने समीपवर्ती तल से लगभग 1 मीटर ऊँचा है। यह पुरास्थल लगभग 10 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है, जो गोरखपुर से लखनऊ की ओर जाने वाले राष्ट्रीय उच्चमार्ग के द्वारा दो भागों में विभक्त हो चुका है। यहॉ से निम्नलिखित मृद्भाण्ड परम्पराएं उपलब्ध हुयी हैं :

(1) ब्लैक-एण्ड रेड वेअर

(2) ब्लैक-स्लिप्ड वेअर

(3) रेड वेअर

यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का एक ऐसा ठीकरा प्राप्त हुआ है, जिसके आकार (Shape) की पहचान नहीं हो सकी है। ठीक इसी तरह ब्लैक–स्लिप्ड वेअर का भी एक ठीकरा उपलब्ध हुआ, जिसकी पहचान नहीं हो सकी है।

रेड वेअर इस पुरास्थल का मुख्य मृद्भाण्ड है। इसमें से कुछ चट्टाई की छाप से युक्त (Mat-impressed) और कुछ साधारण कोटि के हैं। चट्टाई की छाप वाले अथवा कार्डेड वेअर के जो टुकड़े (ठीकरे) मिले हैं, उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि इन बर्तनों को आग में अच्छी तरह पकाया गया होगा। इन बर्तनों का आन्तरिक अनुभाग (Core) मोटा है, लेकिन आकार (Shape) स्पष्ट नहीं है।

सामान्य रेड वेअर (Simple red ware) के मृद्भाण्डों में कुछ चौड़े वारी वाले कटोरे, कुछ आकारहीन बारी वाले कटोरे, (Bowl with featurless rim) छोटे गर्दन वाले पानी के बर्तन, हैन्डिलयुक्त बर्तन, चाकलेटी लेपयुक्त कोखदार हांड़ी, (Carinated Handi), चौड़े कालर वाले पात्र (Wide Collared Pot) जो कि गर्दनरहित (Without neck) हैं, तथा कुछ मुड़े हुए कालर से युक्त बारी वाले (Folded collared rim) पात्र हैं।

इस स्थल पर एन0 बी0 पी0 संस्कृति से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के आवासीय साक्ष्य मिले हैं।

चॉदबारी (Lat 26°, 48', 19" N, Long 83° 7' 33" E)

यह गाँव मगहर से लगभग 13 किमी0 की दूरी पर अवस्थित है, जहाँ सेमारी (Semari) गाँव से होते हुए पहुँचा जा सकता है। यह पुरास्थल लगभग 6 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है तथा समीपवर्ती तल से लगभग 4 मीटर ऊँचा है।

यहाँ की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा रेड वेअर की है, जिसमें पानी के बर्तन, कोखदार हांडी तथा संग्रह–पात्र (Storage Pot) उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी की एक छोटी मूर्ति भी, जो आग में पकी हुयी है, इस पुरास्थल से मिली है। इन पुरावशेषों से प्रतीत होता है कि यहाँ गुप्तोत्तर काल से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के लोग निवास किये थे।

हरदीडीह (Lat 27°, 35', 21" N, Long 82° 39' 71") :

यह गॉव गोरखपुर जनपद के तहसील खजनी से 3 कि0 मी0 की दूरी पर स्थित है। यह प्राचीन टीला 20 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है, जो बिल्कुल समतल है। यहाँ तेजी से कृषि–कार्य हो रहा है। टीले के एक भाग पर ग्रामीणों के द्वारा आवास बना लिया गया है। इसके अतिरिक्त टीले पर ईंट–भट्ठा भी स्थापित किया गया है, जिससे टीला बुरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है।

यहाँ से निम्नलिखित मृद्भाण्ड परम्पराओं के साक्ष्य मिले हैं :–

1.ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर (प्लेन)

2. ग्रे–वेअर

3. रेड–वेअर

ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर और ग्रे–वेअर के बर्तनों का आकार स्पष्ट नहीं है। रेड वेअर मे कटोरे, टोंटीदार पात्र और पानी के पात्र (Water Vessels) मिले हैं।रेड वेअर के कुछ ऐसे ठीकरे भी मिले हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि बर्तन की बारी (Rim) पर काली रेखायें खींची गयी हैं।

कुसाहा ताल (Lat 26°, 33', 37" N, Long 83° 24' 42" E)

कुसाहा ताल जयन्तीपुर (Jayantipur) गाँव के समीप स्थित है, जो कि कौड़ीराम और बाँसगाँव के मध्य आमी नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित है। सम्भव है कि यहाँ का टीला बाढ़ के कारण नष्ट हो गया हो।

इस पुरास्थल की मुख्य की मृद्भाण्ड परम्परायें निम्नवत् हैं–

1. ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (प्लेन)

2. ग्रे–वेअर

3. रेड–वेअर

ठीकरे अत्यन्त छोटे आकार में मिले हैं, जिससे बर्तनों के आकार स्पष्ट नहीं हो सके हैं।

लालपुर (Lat 27°, 3', 5" N, Long 82° 46' 4" E)

यह गाँव, बांसगाँव मार्ग पर कौड़ीराम से लगभग 3–4 किमी0 की दूरी पर स्थित है। यह टीला अपने समीपवर्ती तल से लगभग 10 मी0 ऊँचा है, जो कि आमी नदी के दाहिने किनारे के समीप है। टीला 5 एकड़ के क्षेत्र में फैला हुआ है, जो बिल्कुल समतल है। वर्तमान समय में इस टीले पर कृषि–कार्य हो रहा है।

रेड–वेअर इस स्थल की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा है, जिसमें मुख्यतः टोंटीदार (Spouted) बर्तन और पानी के पात्र (Water Vessels) हैं।

नगवा (Lat 26°, 43', 4" N, Long 83° 16' 12" E)

यह गाँव गोरखपुर खजनी मार्ग पर जैतपुर क्रांसिग से 2 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है। यह टीला आमी नदी के बहुत ही समीप है। खेती के उद्देश्य से इसे बहुत समतल बना दिया गया है। यहाँ की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा निम्नवत् है :

1. हस्त निर्मित (हैण्ड–मेड) कार्ड इम्प्रेस्ड पोट्री
2. ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर
3. ब्लैक–स्लिप्ड वेअर
4. एन0 बी0 पी0 वेअर
5. ग्रे वेअर
6. रेड वेअर

हस्तनिर्मित मृद्भाण्डों एवं रस्सी की छाप वाले पात्रों के ठीकरों में कुछ ऐसे भी हैं, जिनका आकार स्पष्ट नहीं है। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्र सादे हैं। ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के मुख्य पात्रों में कटोरे और मोटे गढन के पानी के पात्र (Water Vessels with thick fabric) हैं। ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर में मुख्यतया उन्नतोदर थालियाँ (Convex sides dishes), खड़े पार्श्व वाले कटोरे (Straight sided bowls), और सपाट आधार वाली थालियाँ (Flat based dises) मिली हैं। यहाँ से एन0 बी0 पी0 पात्रों के जो ठीकरे उपलब्ध हुए हैं, वे इतने छोटे हैं कि बर्तन का आकार स्पष्ट नहीं हो सका है।

रेड वेअर के पात्रो में मुख्य रूप से उन्नतोदर थालियॉ, कटोरे, गर्दन रहित और गर्दन युक्त पानी के पात्र, नोकदार कटोरे (Lipped bowls), सपाट बारी वाले कटोरे (Bowls with flatted rim), तसले, छोटे आकार के बर्तन (Miniature pots), दावातनुमा ढक्कन, बटननुमा नाब वाले ढक्कन (Button Knobbed lids), अन्दर की ओर घूमी हुयी बारी वाले कटोरे (bowls with inturned rim) या कोखदार कटोरे (Carinated bowls) और छिद्र युक्त ढक्कन (Perforated lids) उपलब्ध हुए हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ से घड़े के आकार का मिट्टी का एक मनका तथा पत्थर के कुछ उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। पत्थर के उपकरणों में से एक त्रिभुजाकार है, जिसके किनारे बुरी तरह घिसे हुए हैं, जबकि दूसरा प्रस्तर उपकरण टूटा हुआ है।

परमेशरपुर (Lat 26°, 42', 54" N, Long 83° 7' E)

यह गाँव मगहर से लगभग 7 कि0मी0 दक्षिण अवस्थित है। यह पुरास्थल लगभग 4 एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत है, और समीपवर्ती तल से 2 मीटर ऊँचा है। वर्तमान समय में यहाँ पर कृषि–कार्य हो रहा है।

यहॉ मुख्य रूप से रेड वेअर के पात्र मिले हैं, जिनमें हस्तनिर्मित तथा चाक पर बने हुए, दोनों प्रकार के पात्र हैं। मुख्य पात्रों में पानी के बर्तन, कोखदार हांडी और कालरयुक्त बारी वाले बर्तन हैं। ये पुरावशेष गुप्तोत्तर युग से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के हैं।

सरया तिवारी (Lat 26°, 38', 17" N, Long 83° 16' 34" E)

यह गाँव गोरखपुर-बांसगाँव सड़क पर स्थित खजनी से लगभग 3 किमी0 की दूरी पर एक प्राचीन टीले के ऊपर अवस्थित है। टीले का अधिकांश भाग आवासीय उद्देश्य (Residential purpose) से और शेष भाग कृषि–कार्य के लिए पूरी तरह समतल किया जा चुका है।

यहाँ से मटमैले श्वेत रंग की बलुए प्रस्तर (Buff sand stone) की एक मूर्ति मिली है, जिसके आधार के रूप में कमल है। मूर्ति ललितासन मुद्रा में बैठी हुयी है। यह मूर्ति किसी देवता की प्रतीत होती है। इसे उदरबध, बाजूबंध तथा कंगन (Kankana) जैसे आभूषणों से अलंकृत किया गया है। इसके कंधे से 'यज्ञोपवीत' (Yajnopavita) लटक रहा है। मूर्ति अभय मुद्रा में है, जिसके दाहिने हाथ में अक्षमाला तथा बाँये हाथ में कमण्डल धारण कराया गया है। देवता की दाढ़ी काफी लम्बी दर्शायी गयी है। निचला हिस्सा भेड़े जैसा प्रतीत होता है। सम्भवतः भेड़े का अंकन देवता के वाहन के रूप में किया गया है। उपर्युक्त विवरणों के आधार पर मूर्ति की पहचान अग्नि–देवता के रूप में की गयी है। मूर्ति के दोनों ओर अग्नि की लपटें दर्शायी गयी हैं। बनावट की विशेषताओं के आधार पर मूर्ति परवर्ती मध्ययुगीन प्रतीत होती है। इस प्रतिमा के पास किसी संरचना का एक त्रिशाखायुक्त टुकड़ा रखा हुआ मिला है।

गाँव के सीमाप्रांत पर सहस्रों लिगों का एक ढेर, एक अठ पहलू भवन के ढॉचे के ऊपर मिला है। लिंग की ऊँचाई 76 सेमी0 और अर्द्ध व्यास (Radius) 33 सेमी0 है।

सठियांव - फाजिलनगर का उत्खनन

सठियांव–फाजिलनगर का टीला देवरिया जिले (सम्प्रति कुशीनगर जनपद) में अवस्थित है[80]। यह टीला कुशीनगर से 18 किमी0 दक्षिण–पूर्व में स्थित है। यह पुरास्थल लम्बे समय से पुराविदों और

इतिहासकारों (Historians) का ध्यान आकर्षित करता रहा है। कार्लायल ने पहली बार यह स्पष्ट किया कि फाजिलनगर–सठियांव का जुडवा पुरास्थल प्राचीन पावा का प्रतिनिधित्व करता है। प्राचीन समय में पावा मल्लों की राजधानी थी। यह स्वीकार किया जाता है कि इसी पवित्र–स्थल पर चौबीसवें जैन तीर्थंकर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया था। इस मत के प्रतिपादक विद्वानों में डॉ0 राजबली पाण्डेय, बी0सी0 लॉ, भिक्षुधर्मरक्षित, योगेन्द्र मिश्र, विजयेन्द्र सूरी तथा अन्य बहुत से इतिहासकारों का नाम लिया जा सकता है। साहित्यिक साक्ष्यों से भी इसका कुछ समर्थन होता है।

कुशीनगर से इस पुरास्थल (पावा) की दिशा और दूरी की जानकारी पालि साहित्य से भी मिलती है। इस जानकारी के पृष्ठाधार में उक्त पुरास्थल के प्राचीन पावा होने की प्रबल सम्भावना की ओर संकेत मिलता है। तथापि फाजिलनगर–संठियॉव को अंतिम रूप से पावा केवल उसी परिस्थिति में स्वीकार किया जा सकता है, जब, पुरातात्त्विक खोजों के द्वारा असंदिग्ध रूप से इसकी (फाजिलनगर–पावा) पहचान पावा के साथ कर लिया जायेगा। इस बात को ध्यान में रखते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं सस्कृति विभाग ने सठियॉव–फाजिलनगर में उत्खनन करने का निर्णय लिया।

कार्लायल का विचार था कि सठियॉव का टीला प्राचीन पावा नामक कस्बे का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि वर्तमान फाजिलनगर से 1/2 किमी0 उत्तर–पूर्व दिशा में स्थित था। यहाँ पर मल्लों ने एक स्तूप बनाया था, जिसमें बुद्ध के अस्थि-अवशेष रखे गये थे। सठियाँव के निचले टीले पर, उत्तर–पूर्व में एक छोटे से भाग को छोड़कर शेष भाग का उपयोग आवास के रूप में हो रहा है। गाँव के अन्दर और उसके इर्द–गिर्द, मंडल–कूपों (Ring-wells) के साक्ष्य मिले हैं। पूरे गाँव में पकी हुयी ईटों के दीवाल (burnt brick walls) के साक्ष्य मिले हैं। गाँव के चारों ओर की निचली (Low lying Land) भूमि से संकेत मिलता है कि यह पुरास्थल चारों ओर से सरोवरों से घिरा हुआ था। वर्तमान समय में दो बड़े बारहमासे सरोवर (Perennial Ponds) अस्तित्व में हैं। इनमें पहला, गांव के उत्तर–पश्चिम और दूसरा दक्षिण दिशा में है।

फाजिलनगर का टीला सम्भवतः सठियॉव नामक पुरास्थल का एक भाग था। समीपवर्ती तल से टीले की ऊँचाई 9 मीटर से भी अधिक है। वास्तव में यहाँ पर दो टीले मिलते हैं, जो आपस में मिले हुए (Fused togethers) हैं। प्रथम टीले (निचले टीले) की ऊँचाई कुछ कम है, जबकि दूसरा टीला अधिक ऊँचा है। निचला टीला, उत्तर–पूर्व दिशा में है, जिस पर एक मजार बना हुआ है। दूसरा टीला पश्चिम दिशा में है। यह टीला उत्तर से दक्षिण 80 मीटर और पूरब से पश्चिम 120 मीटर है। टीला मानव और प्रकृति के द्वारा बहुत हद तक प्रभावित (Heavily suffered) हुआ है। सम्पूर्ण टीला घने जंगल और घासों से आच्छादित हो चुका है।

सठियाँव :

खोज–कार्य के इस क्रम में सठिगाँव की निचली भूमि का जमाव कम्पोस्ट खाद के निमित्त बनाये गए गर्त के रूप में मिला, जिसे तराशने (Scrapping) के लिए लिया गया। तराशने (Scrapping) के दौरान् यहाँ से पकी हुयी ईंटो से निर्मित दीवाल के अवशेष प्रकाश में आए, जो कुछ समय पहले ही तोड़ डाले गए थे।

ईंटो की माप 42 सेमी0 X 26 सेमी0 X 6 सेमी0 के अनुपात में मिला। यहां के संयुक्त पर्तों से रेड वेअर, कुछ ब्लैक-स्लिप्ड के ठीकरे तथा एन0बी0पी0 वेअर उपलब्ध हुए हैं। यहॉ से उपलब्ध अन्य पुरावशेषों में मृण्मूर्तियाँ, मनके, एक टूटा हुआ महुर-छाप (Sealing) तथा लोहे के कुछ उपकरण हैं। सतह से उपलब्ध पुरावशेषों में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरे तथा स्क्रेपिंग से उपलब्ध अन्य अवशेष स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि यह पुरास्थल मौर्यों के पहले से आबाद रहा है, जो मध्यकाल तक के इतिहास की निरन्तरता (Continuous history up to the medieval period) का सूचक है।

फाजिलनगर :

ऊपरी टीले (Higher Mound) के शीर्ष भाग (Flat Top) एवं उत्तरी ढलान पर उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के दौरान सतह की मिट्टी को हटाते ही बहुतायत से प्राचीन भवनों के अवशेष प्राप्त हुए। इन अवशेषों के आकार को देखकर ऐसा लगा कि ये संयुक्त आवास के उद्देश्य से बनाए गये थे। चूँकि यह उत्खनन बहुत सीमित दायरे में हुआ था, अतएव इन भवनों की निश्चित योजना के बारे में पता नहीं लगाया जा सका। इन भवनों को दो युगों से सम्बद्ध किया जा सकता है। प्रथम युग का सम्बन्ध गुप्तकाल से और दूसरे युग का मध्यकाल से स्थापित किया जा सकता है।

गुप्तकाल :

यहॉ से एक विशाल समकोण चतुर्भुज के आकार का सीढ़ीयुक्त प्लेटफार्म मिला है, जिसकी माप 14. 40 x 17.80 है। यह प्लेटफार्म इस क्षेत्र से उपलब्ध अन्य भवनों की तुलना में कुछ विशिष्टता लिए हुए है। इसको पूरी तरह उद्घाटित नहीं किया गया था। इसका निर्माण तत्कालीन टीले के ऊपर किया गया था।

प्लेटफार्म के चारों ओर एक रक्षात्मक दीवाल (Retaining Wall) बना हुआ है, जो बिल्कुल अखण्ड है। प्लेटफार्म के पूर्वी दीवाल की चौड़ाई 1 मीटर है, जो अच्छी तरह सुरक्षित है। दीवार के ऊपरी

भाग पर बढते हुए क्रम में सजावट किया गया है। यह सजावट ईंटों की तीन श्रेणियों में है। सबसे ऊपरी भाग की सजावट में किनारे घुमावदार हैं। मुख्य दीवार पर सजावट की इस श्रेणी में क्रमशः गिरावट आती गयी है। यह दीवार गहराई में मात्र 70 सेमी0 था।

पुरावशेष :

यहाँ से प्रायः ईट–निर्मित इमारतों के पुरावशेष बहुतायत से मिले हैं। इसके अतिरिक्त कुछ पुरावशेष शीर्ष तल (Top levels) से भी प्राप्त किए गए हैं। इनमें से सभी गुप्त काल से सम्बन्धित हैं। इनमें मृण्मूर्तियाँ, मुहरें (Seals) एवं मुहरछाप (Sealings) विशेष महत्त्वपूर्ण पुरावशेष हैं।

यहाँ से मृण्मूर्तियॉ भी बहुतायत से मिली हैं, जिनमें पुरूष, स्त्री और पशुओं की मृण्मूर्तियॉ विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। मानव मृण्मूर्तियाँ मध्यम दर्जे की हैं, तथा सॉचे में बनायी गयी (Mould made) हैं। मूर्तियाँ आकार में छोटी और अच्छी मिट्टी की बनी हुयी हैं। इन मूर्तियों में गुप्तकाल की आदर्शभूत विशेषताएँ अंतर्निहित है।

पशु मूर्तियों में घोड़े की कुछ ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं, जिन पर घुड़सवार बैठा हुआ है। यद्यपि ये पूरी तरह से ध्वस्त हैं, फिर भी इससे इनकी उत्कृष्टता का आभास होता है। घोड़े की मूर्ति सम्भवतः दौड़ते हुए रूप में बनी है।

गुप्तकाल से सम्बन्धित मिट्टी की बनी सात मुहरें एवं मुहर छाप उपलब्ध हुए हैं। इन मुहरों पर पॉचवीं शताब्दी ई0 की गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि में लेख उत्कीर्ण है। इनमें से एक मुद्रा–छाप पर गुप्त कालीन ब्राहमी लिपि में '*श्रेष्ठिग्राम अग्रहारस्य*' लेख उत्कीर्ण है। उक्त लेख से आबादी की प्रकृति एवं स्थल के नाम की जानकारी मिलती है, जो विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस पर फनयुक्त सर्प (Hooded Snake) की आकृति भी उत्कीर्ण है। मुद्रा–छाप के पृष्ठ भाग पर मुद्रा को निर्गत करने वाले व्यक्ति का नाम भी उत्कीर्ण है, लेकिन उचित रख रखाव के अभाव में यह अच्छी अवस्था में नहीं है। अतएव नाम स्पष्ट रूप से पढ़ा नहीं जा सका है। पौराणिक कथाओं में इस पुरास्थल के विषय में दो महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं। प्रथम, सठियॉव ग्राम 5 वीं शताब्दी ई0 में श्रेष्ठि–ग्राम के नाम से जाना जाता था और द्वितीय, यह स्थल 'अग्रहार' नामक भूमि का प्रतिनिधित्व करता है। 'अग्रहार', भूमि का एक ऐसा प्रकार था, जो कि विद्वान ब्राह्मणों को दान के रूप में दिया जाता था। इस भूमि से जो आय होती थी उस पर इन विद्वान ब्राह्मणों का अधिकार था। इसी आय से उनकी जीविका चलती थी। यह आबादी शिक्षा–केन्द्र के रूप में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। मुद्रा–छाप से स्पष्ट रूप से यह द्योतित होता है कि गुप्त काल में यह स्थल शिक्षा का केन्द्र था

जो कि 'श्रेष्ठिग्राम' के नाम से जाना जाता था। यही श्रेष्ठि–ग्राम आधुनिक सठियाँव है, जिसके निकट आधुनिक फाजिलनगर अवस्थित है।

मध्ययुग :

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य–युग में यह स्थल मुस्लिम आक्रमणकारी सेना के अधीन था। इस सेना का उद्देश्य आक्रमण करना था। इस क्षेत्र का उच्चतम स्थल आक्रमणकारियों के लिए विशेष सुविधाजनक रहा होगा। टीले के शीर्ष भाग पर मुस्लिम सेना के द्वारा एक छोटे किले का निर्माण किया गया था।

नए बासिन्दों (Occupants) के आने के बाद यहां के प्रारम्भिक भवनों को तोड़ दिया गया। उन्होंने किले के निर्माण में ईंट के टुकड़ो का उपयोग किया था। ईंट के टुकड़े यहॉ बहुतायत से उपलब्ध थे। मध्य काल की इमारतें पूरी तरह नष्ट हो चुकी हैं। केवल भिन्न–भिन्न जगहों पर कुछ दीवालों के अवशेष बचे हुए हैं। पूर्ववर्ती सरचना के ऊपर निर्मित गोलाकार मीनारों के प्रमाण उत्तर–पूर्व और दक्षिण–पश्चिम कोनों से प्राप्त हुए हैं, जो इस बात का संकेत करते हैं कि इस तरह की मीनारें चारों किनारों पर निर्मित थी।

इस स्थल पर ऊपरी सतह से बहुतायत से उपलब्ध लोहे की बनी हुयी तीर की नोकों (Arrow heads) के साक्ष्य, यहाँ पर मध्यकालीन बस्ती की प्रकृति और उद्देश्य की कहानी कहते हैं।

संदर्भ :

1. पाण्डेय, जे0एन0, 1983, *पुरातत्त्व विमर्श*, पृष्ठ 36
2. तत्रैव -
3. तत्रैव .
4. *ऐन्श्येन्ट इण्डिया* नं0 9, पृष्ठ 5, साहित्यिक सभा बाम्बे (1804) तथा मद्रास (1818) की स्थापना हुयी
5. पाण्डेय, जे0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 37
6. 1801 की सन्धि में गोरखपुर जिला कम्पनी को नवाब से प्राप्त हुआ था।
7. *इस्टर्न इण्डिया*, पृष्ठ 291–581
8. **पाण्डेय,** जे0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 38
9. ऐन्श्येन्ट इण्डिया नं0 9, पृष्ठ 11–12
10. घोष, ए0; *इ0 आर्क0*, पृष्ठ 3
11. तत्रैव -
12. कार्लायल, ए0 सी0 एल0; *आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, ए रिपोर्ट*, वाल्यूम 8
13. *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 11, पृष्ठ 78 तथा आगे, वाल्यूम 1, पृष्ठ 330 तथा आगे।

14. *ऐन्श्येन्ट इण्डिया* नं0 9, पृष्ठ 6

15. पाण्डेय, आर0 एन0 : *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास*, पृष्ठ 76

16. *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 18, पृष्ठ 31–33

17. तत्रैव, वाल्यूम 22, पृष्ठ 41

18 तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

19 तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

20. दन्त, नलिनाक्ष एव बाजपेयी, कृष्णदत्त : *उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास*, पृष्ठ 262

21 तत्रैव, पृष्ठ – 364

22. गाइल्स : *ट्रवेल्स ऑफ फाहियान*, पृष्ठ 40–41

23 *ए0 एस0 आई0 आर0*, 1962–63, वाल्यूम 1, पृष्ठ 74–75; कनिंघम : *ऐन्श्येन्ट जागर्फी ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 366–77, (पुनर्मुद्रित, वाराणसी, 1963)

24. कार्लायल, ए0 सी0 एल0 : *रिपोर्ट आफ टूर्स इन गोरखपुर सारन एण्ड गाजीपुर*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 29–31 (1877–80), (वाराणसी–1966)

25. *ए0एस0आई0आर0*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 50

26. फाह्यान एवं ह्वेनसॉग के यात्रा विवरण

27. *ए0 एस0 आई0 आर0*, जिल्द 18 पृष्ठ 31–33

28. लॉ0 बी0 सी0 : *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया*, पृष्ठ 119

29. दत्त एव बाजपेयी, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 273

30. तत्रैव

31 *ए0 इ0*, वाल्यूम 5, पृष्ठ 113

32. तत्रैव, पृष्ठ 85

33. शुक्ल चन्द्रमौलि : *युग – युगीन सरयूपार*, पृष्ठ 16–18, 1987 (उ0प्र0 इतिहास संकलन समिति द्वारा प्रकाशित)

34. मुखर्जी, पी0सी0, *एन्टीक्विटीज आफ कपिलवस्तु आफ नेपाल*, 1899, पृष्ठ 2; स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोटस*, पृष्ठ 18 (पायनियर 25 मार्च 1898)

35. श्रीवास्तव, के0 एम0 : *डिस्कवरी आफ कपिलवस्तु*, पृष्ठ 26

36. मुकर्जी, पी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 3

37. पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 55

38. वाशम, ए0एल0, *स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर*, पृष्ठ 201

39. *आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया*, वाल्यूम 23 एवं 24

40. *जे0 आर0 ए0 एस0*, 1898, पृष्ठ 573

41. *ए0 एस0 आई0 ए0 आर0*, 1904–05, पृष्ठ 43

42. स्मिथ, द *रिमेंस नियर कसया*, इलाहाबाद 1896, *जे0 आर0 ए0 एस0* 1902, पृष्ठ–139। इस प्रसंग में डॉ0 हुई का लेख भी द्रष्टव्य है। देखें, *जे0ए0एस0बी0*, वाल्यूम यल0–19, प्लेट 175, एफ0 एफ0 और एल0 20

43 स्मिथ, विन्सेण्ट, *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया* पृष्ठ 159 (तृतीय संस्करण), नोट : हिरण्यवती वास्तव में छोटी गण्डक है।

44 *दीर्घ निकाय* 2, 137, *जे0 आर0 ए0 एस0*, 1906, पृष्ठ 659

45. दत्त एव बाजपेयी, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 257

46. मुकर्जी, पी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, न0 26, पार्ट 1, 1890, *ए0 एस0 आई0 आर0*, इम्पीरियल सीरीज (रिप्रिन्टेड, वाराणसी 1969), स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोट*, पृष्ठ 10

47. रिज, डेविड्स, *बुद्धिस्ट इण्डिया* (लन्दन 1903), पृष्ठ 15 एन

48 मुकर्जी, पी0 सी0, *इण्ट्रोडक्शन, नरेटिव आफ माई टूर*, पृष्ठ 3 (1899)

49. तत्रैव

50. तत्रैव, प्रीफेस, पृष्ठ 1

51. तत्रैव, पृष्ठ 3

52. तत्रैव, स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोट*, पृष्ठ 1–22

53. पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 47

54. *एन्श्येन्ट इण्डिया*, नं0 9, पृष्ठ 38

55. पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 49

56 *इण्डियन आर्क्योलाजिकल पालिसी*, 1915 (कलकत्ता 1916), विशेष के लिए द्रष्टव्य, तत्रैव, पृष्ठ 35, पाद टिप्पणी 4

57. साहनी, दयाराम, *ए0 एस0 आई0 ए0 रि0*, 1906–07, पृष्ठ 193–94

58. शुक्ल, चन्द्रमौलि, *युग–युगीन सरयूपार*, पृष्ठ 15–18, 1987 (उ0प्र0 इतिहास संकलन समिति द्वारा प्रकाशित)

59. पेप्पे, डब्लू0 सी0, पिपरहवा स्तूप कन्टेनिंग रैलिक्स आफ बुद्ध, *जर्नल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड*, 1898 पृष्ठ 575

60. शुक्ल, चन्द्रमौलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15–18

61. पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 54–56

62. सिन्हा, के0 के0, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*, 1959 प्रीफेस

63. तत्रैव, पृष्ठ 7–12

64. चतुर्वेदी, एस0 एन0, एडवांस ऑफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चैल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालयन तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रिजन ऑफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, 1985 पृष्ठ 101–103

65. *इण्डियन आर्क0*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 46–47

66. मित्रा, डी0 : *बुद्धिस्ट मान्यूमेंटस*, कलकत्ता 1972, पृष्ठ 253

67. *इ0 आर्क0*, 1961–62, पृष्ठ 103–104

68. तत्रैव, 1962–63, पृष्ठ 33

69. तत्रैव, 1963–64 पृष्ठ 45

70. श्रीवास्तव, के0 यम0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 42–48

71 तत्रैव, पृष्ठ 247–256

72 तत्रैव, पृष्ठ 48

73. चतुर्वेदी, एस0 एन0, एक्सकेवेशन ऐट सठियांव–फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्स्प्लोरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर–प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम 1, नं0 1–2, 1980, पृष्ठ 333–340

74. त्रिपाठी, कृष्णानन्द, *ई0 आर्क0 ए रिव्यू*, 1983–84, पृष्ठ 87

75. *इंडियन आर्क्यालजी, ए रिव्यू*, 1974–75, पृष्ठ 45–46

76. सिंह, पुरूषोत्तम, सिंह, अशोक कुमार और सिह, इन्द्रजीत; एक्सप्लोरेशंस एलांग दि कुआनो रिवर, इन डिस्ट्रिक्ट गोरखपुर एण्ड बस्ती, *प्राग्धारा*, अंक 1, 1990–91, पृ0 72–79

77. सिंह, डी0पी0 और सिंह, जे0 के0, 1986, आजमगढ़ जनपद का मूलभूत इतिहास, अग्रगामी अध्ययन, *भारतीय इतिहास सकलन समिति*, पत्रिका, वाराणसी, पृष्ठ 350

78 तत्रैव, पृष्ठ 350

79 तिवारी, आर0 एवं श्रीवास्तव, आर0के0; एक्सप्लोरेशन्स एलांग द आमी रिवर एण्ड इन इट्स नियरबाइ एरियाज इन डिस्**ट्रिक्ट्**स सिद्धार्थनगर, बस्ती एण्ड गोरखपुर, *प्राग्धारा*, अंक–4, 1993, पृष्ठ 14

80. चतुर्वेदी, एस0एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333–340 -

वर्तमान अध्ययन (सर्वेक्षण) और सांस्कृतिक अनुक्रम

नवपाषाण कालीन संस्कृति

मानव की सांस्कृतिक प्रगति के इतिहास में नवपाषाण या नूतन पाषाण काल का बहुआयामी महत्त्व है, क्योंकि जहाँ एक ओर नवपाषाणिक मानव के द्वारा कृषि एवं पशुपालन के क्षेत्र में एक ऐसी परम्परा की शुरूआत की गयी जिसका अनुकरण थोड़े बहुत अंतर के साथ हम आज भी कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इस युग की अर्थव्यवस्था ने कांस्यकाल की सभ्यताओं के उदय एवं विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान की। नूतन पाषाण काल की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए गार्डन चाइल्ड ने इस परिवर्तन को 'नूतन पाषाणकाल की क्रान्ति' कहा है।

भारत में कर्नाटक प्रान्त के लिंगसुगुर नामक पुरास्थल से सन् 1842 ई0 में सर्वप्रथम नूतन पाषाणिक उपकरण मैसूर रियासत के पुरातत्त्व अधिकारी एम0 एच0 कृष्ण द्वारा प्रतिवेदित किये गये थे[1]। सन् 1860 ई0 में ले मेसुरिये (Le Mesurier) को इलाहाबाद जिले में स्थित टोंस घाटी से नूतन पाषाणिक कतिपय उपकरण प्राप्त हुए थे। तद्नन्तर इस प्रकार के पाषाण उपकरणों का प्रतिवेदन, बुन्देलखण्ड, दक्षिण तथा पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रों से समय–समय पर होता रहा। ब्रूस फूट नामक पुराविद् ने दक्षिण भारत के कई स्थानों पर स्थित राख के ढेरों को नूतन पाषाणिक बतलाया[2]।

सन् 1947 ई0 में मार्टीमर ह्वीलर ने कर्नाटक प्रांत के चीतलदुर्ग जिले के मोलकालमुरू तालुका में स्थित ब्रह्मगिरि नामक पुरास्थल का उत्खनन कराया, जिससे दक्षिण भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृति के सांस्कृतिक उपादानों के साथ ही साथ उसके सम्भावित कालानुक्रम के विषय में जानकारी प्राप्त हुयी। तब से लेकर आज तक भारत के विभिन्न क्षेत्रों में स्थित अनेक नूतन पाषाणिक पुरास्थलों का उत्खनन हो चुका है। कालानुक्रम की दृष्टि से भी भारत के विभिन्न क्षेत्रों की नूतन पाषाणिक संस्कृतियाँ समकालिक या एक दूसरे के थोड़ा आगे पीछे विकसित हुयी, ऐसा प्रतीत होता है। समकालिक होते हुए भी इन संस्कृतियों में

उल्लेखनीय क्षेत्रीय–विभेद दृष्टिगोचर होता है। बी0डी0 कृष्णस्वामी ने सन् 1960 ई0 में भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृतियों का विभाजन चार क्षेत्रों में किया था। 1964 ई0 में बी0के0 थापड़ ने उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी इन तीन प्रमुख क्षेत्रों में विभाजन किया था। 1968 ई0 में अल्चिन दम्पति ने भारत की विभिन्न नूतन पाषाणिक संस्कृतियों को निम्नलिखित पाँच वर्गों में विभाजित किया– (1) उत्तरी वर्गः कश्मीर घाटी (2) दक्षिणी वर्गः गोदावरी के दक्षिण का क्षेत्र, (3) पूर्वी वर्गः असम का क्षेत्र (4) मध्यवर्ती वर्गः गंगा के दक्षिण का पठारी क्षेत्र (5) पूर्वी मध्य वर्गः बिहार, उड़ीसा और छोटा नागपुर का पर्वतीय क्षेत्र।

सन् 1975 ई0 में बी0 के0 थापड़ ने अल्चिन दम्पित्त के वर्गीकरण को संशोधित करके उपर्युक्त पाँच वर्गों में उत्तरी–पश्चिमी एक छठाँ वर्ग और जोड़ दिया। इस छठें वर्ग में पाकिस्तान के बलूचिस्तान एवं सिंध प्रांत की नूतन पाषाणिक संस्कृति को भी जोड़ा गया। लेकिन डॉ0 जे0 एन0 पाण्डेय[3] के अनुसार पाकिस्तान के नूतन पाषाणिक क्षेत्र को भारत के नूतन पाषाणिक विवेचन में सम्मिलित करना यथेष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृतियों को अधोलिखित छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. उत्तरी भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृति
2. विन्ध्य क्षेत्र की नूतन पाषाणिक संस्कृति
3. दक्षिण भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृति
4. मध्य गंगा घाटी की नूतन पाषाणिक संस्कृति
5. मध्य–पूर्वी नूतन पाषाणिक संस्कृति
6. पूर्वोत्तर भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृति

गोरखपुर जनपद मध्यगंगा घाटी में अवस्थित है। जनपद एवं सीमावर्ती जनपदों के विविध पुरास्थलों से उपलब्ध प्राचीनतम पुरावशेषों का सम्बन्ध नवपाषाण काल से जोड़ा जा सकता है। इस प्रकार यहाँ का सांस्कृतिक अनुक्रम नवपाषाण काल से प्रारम्भ होता है। प्रश्न उठता है कि जनपद में नवपाषाणिक मानव का आगमन कहाँ से हुआ? इस प्रश्न के उत्तर में प्रो0 जी0 आर0 शर्मा की मान्यता है कि विन्ध्य क्षेत्र का मानव इस काल में हिमालय की तराई तक पहुँच चुका था[4]। प्रो0 शर्मा ने जनपद में प्रवाहित सरयू एवं कुआनों के तटवर्ती पुरास्थलों से उपलब्ध लघुपाषाणिक उपकरणों के आधार पर यहाँ की प्राचीनतम संस्कृति की तुलना नवपाषाण काल से की है। ध्यातव्य है कि विन्ध्य क्षेत्र के पाषाण खण्डों से निर्मित लघु उपकरण प्रायः जनपद

के दक्षिणी भाग से उपलब्ध हुए हैं। ऐसी दशा में प्रतीत होता है कि सम्भवतः विन्ध्य मानव ने सरयू नदी को पारकर तटवर्ती क्षेत्रों को अपना प्रथम आवास बनाया होगा[4]”।

जनपद के विभिन्न पुरास्थलों से नवपाषाणिक उपकरणों के अतिरिक्त कोई अन्य पुरावशेष न मिलने के कारण इन सीमित पुरावशेषों के आधार पर नवपाषाणिक मानव के बहुआयामी जीवन के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है।

19वीं शदी से लेकर बीसवीं शदी के प्रारम्भ तक (स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक) इस क्षेत्र में अंग्रेज पुरातत्त्वविदों ने पुरातात्त्विक खोजों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनमें बुकनन, कनिंघम, कार्लायल, फ्यूहरर, स्मिथ, पेप्पे, तथा डॉ0 हुई जैसे अंग्रेज पुराविद् एवं प्रशासनिक अधिकारियों का प्रयास स्तुत्य है। लेकिन ये पुराविद् बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थलों एवं कलावशेषों की सीमाओं में सीमित रहे। सन् 1959 में प्रो0 के0 के0 सिन्हा ने श्रावस्ती[5] का उत्खनन किया, जहाँ उन्हें बुद्ध से कुछ पहले के अवशेष मिले। लेकिन इन अवशेषों का सम्बन्ध बौद्धकाल के प्रारम्भिक चरण से कुछ ही पहले का है। इसी क्रम में सत्तर के दशक के प्रारम्भ में (1961–62) गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से सोहगौरा के टीले का पहली बार उत्खनन किया गया। ध्यातव्य है कि इस उत्खनन में पुराविदों का फावड़ा **सोहगौरा** की सांस्कृतिक सीमाओं तक नहीं जा सका। यह उत्खनन ताम्रपाषाणिक स्तर तक ही सीमित रहा, क्योंकि इसके नीचे प्राकृतिक मिट्टी मिली थी। यहाँ के अवशेषों में मुख्यतः ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (सादे एवं चित्रित), तथा भूरे रंग के पात्र (सादे एवं चित्रित) मिले हैं। भूरे रंग के जिन मृद्भाण्डों पर चित्रण हैं, वे हस्तिनापुर के भूरे रंग के चित्रित मृद्भाण्डों से भिन्न हैं।

सम्पूर्ण जनपद में सर्वेक्षण के दौरान धरातल से उपलब्ध मृद्भाण्डों के सम्यक् विश्लेषण के पश्चात् मैंने महसूस किया कि मृद्भाण्डों के ये ठीकरे जनपद को दो भागों में विभक्त करते हैं– 1. उत्तरी और 2. दक्षिणी। जनपद के प्राचीनतम पुरावशेषों का सम्बन्ध दक्षिणी भाग से जोड़ा जा सकता है। दक्षिणी भाग के अन्तर्गत उस भू–भाग को सम्मिलित किया जा सकता है, जो कि दक्षिण में सरयू या घाघरा, उत्तर में आमी, पूर्व में राप्ती (अचिरावती) और पश्चिम में कुआनों से घिरा हुआ है।

यह स्पष्ट हो चुका है कि गोरखपुर जनपद में सांस्कृतिक अनुक्रम का प्रारम्भ नवपाषाण काल से होता हैं।[6] इसके साथ ही प्रश्न उठता है कि इस क्षेत्र में ऐसी कौन सी भौगोलिक विशेषता थी, जिससे प्रेरित होकर नवपाषाणिक मानव ने यहाँ अपना प्रथम अधिवास बनाया। मानव जीवन के लिए नदियों का बहुआयामी महत्त्व प्राचीनकाल से ही स्वीकार किया जाता रहा है। यही कारण है कि प्राचीनतम मानव बस्तियाँ प्रायः नदियों के किनारे ही मिलती हैं। पूरे जनपद में नदियों का जाल फैला हुआ है। इन नदियों के प्रवाह के

कारण उर्बर कछार का निर्माण होता रहता है, जो कृषि कार्य के निमित्त अत्यन्त उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त नदियों के तटवर्ती ऊँची भूमि, सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त रही होगी।

मानव अधिवास के निमित्त उत्तम एवं उपयोगी जलवायु का होना अति आवश्यक है, जिसके विविध कारक हैं। जलवायु का उत्तम होना, समुद्र से स्थल की ऊँचाई एवं दूरी पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण जनपद समुद्रतल से लगभग 316 फीट ऊँचा है। यह समुद्र से बहुत दूर भी है। अतएव यहाँ न तो अधिक सर्दी रहती है और न गर्मी। सर्दी और गर्मी सामान्य होने के कारण भी यहाँ नवपाषाणिक मानव का आगमन हुआ होगा।

1974 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग ने गोरखपुर, बस्ती एवं देवरिया जनपदों में व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण कार्य किया[7]। यह सर्वेक्षण विभाग के प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी के नेतृत्व में श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी (क्यूरेटर) तथा कुछ विभागीय शोध छात्रों ने किया, जिसका प्रकाशन इण्डियन आर्क्यालाजीकल रिव्यू, 1974–75 के अंक में प्रकाशित है। इसी बीच 1974 मे ही प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन में श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी ने सोहगौरा में उत्खनन कार्य किया। इस उत्खनन के दौरान, विभाग के ही प्रो0 प्रेमसागर चतुर्वेदी भी अध्ययन–अध्यापन की व्यस्तता के बावजूद बीच–बीच में आते रहे। इस उत्खनन में कई ट्रेंच्स (खन्तियाँ) लगाए गये। कुछ ट्रेन्चों में प्राकृतिक मिट्टी तक उत्खनन किया गया, लेकिन वहाँ स्पष्ट रूप से साँस्कृतिक स्वरूप का निर्धारण नहीं हो पाया। इन ट्रेन्चों से प्राप्त अवशेष वैसे ही मिले जैसे पूर्व के उत्खनन में प्राप्त हुए थे। संयोगवश टीले के सबसे ऊँचे जगह पर लगाए एक बड़े ट्रेंच को प्राकृतिक मिट्टी तक खोदा गया, जिसमें पहली बार मध्यगंगाघाटी के इस पुरास्थल से नवपाषाणकालीन हस्तनिर्मित कार्डेड वेअर के टुकड़े स्वतंत्र स्तरों से प्राप्त हुए (रेखाचित्र संख्या–3)। इस प्रकार यहाँ नवपाषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक, छः सांस्कृतिक कालों के अवशेष लगभग 4.5 मी0 के जमाव में प्राप्त हुए।

प्रथम– नवपाषाणकाल

द्वितीय– उत्तरनवपाषाणकाल एवं प्रारम्भिक ताम्र पाषाणकाल

तृतीय– ताम्रपाषाणकाल

चतुर्थ– बुद्धकाल, मौर्यकाल, शुंगकाल, एन0बी0पी0वेअर

पंचम– कुषाण एवं गुप्तकाल

षष्टम् –पूर्व मध्य एवं मध्यकाल

1975 से लेकर 1982–83 के मध्य तक श्री कृष्णानंद त्रिपाठी (संग्रहालयाध्यक्ष) ने सोहगौरा के प्रथम एवं द्वितीय काल के सांस्कृतिक विस्तार के अनेक स्थलों का पता लगाया। इस प्रकार मध्य गंगाघाटी के इस क्षेत्र में नवपाषाण एवं ताम्रपाषाणकालीन अनेक स्थलों के उद्घाटन से इस परिक्षेत्र की ओर देश के विभिन्न क्षेत्र के पुराविदों का ध्यान, आकर्षित हुआ। अब सोहगौरा ही नहीं अपितु अनेक ऐसे स्थल प्रकाश में आ चुके हैं, जिनमें से कुछ स्थलों पर बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के विद्वान, प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने पुनर्सर्वेक्षण कर उत्खनन कार्य भी किया है। इसमें नरहन का उत्खनन रिपोर्ट प्रकाशित हो चुका है। श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने 1974–75 में जिन तीन स्थलों का खोज किया था, उनमें प्रथम **लहुरादेवा** (संतकबीर नगर जनपद में) है। यहाँ से नवपाषाणकालीन कार्डेड वेअर के साथ कुछ माइक्रोलिथ्स के टुकड़े एवं ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, ग्रे वेअर, तथा रेड वेअर के अवशेष मिले। ये सभी मृद्भाण्ड प्लेन एवं पेन्टेड हैं, जो कि धरातल से प्राप्त हुए हैं। इन्हीं के साथ सेलखड़ी के मनके, माइक्रोलिथ्स के टुकड़े, प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के एन0बी0पी0 के टुकड़े तथा ऐतिहासिक काल के लालरंग के बर्तन भी मिले थे। इस तरह से सोहगौरा संस्कृति के प्रसार का पता लगाने के क्रम में लहुरादेवा स्थल की खोज, एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह पूर्व बुद्धयुगीन सांस्कृतिक इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। इसके बाद इस स्थल पर प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने अपने सहयोगियों तथा श्री राकेश तिवारी, राज्य पुरातत्त्व संगठन उत्तर प्रदेश, स्वर्गीय के0के0 सिन्हा के सहायक एक शोध छात्र, राना तथा सिन्हा साहब के सहायक वी0 पी0 सिंह साहब ने सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट राज्य पुरातत्त्व संगठन की पत्रिका में प्रकाशित किया है। सबसे पहले इसका प्रकाशन हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालजी, इलाहाबाद में प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी ने किया था। इससे भी पहले स्थानीय पत्रों में, श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी के द्वारा किए गए खोज में इस स्थल का विशेष उल्लेख किया गया था।

1974–75 में लहुरादेवा के सर्वेक्षण के क्रम में वर्ष 1975 ई0 में ही गोरखपुर जनपद में सरयू के तटवर्ती क्षेत्रों के सर्वेक्षण के दौरान श्री त्रिपाठी ने अपने सहयोगी श्री टी0 एन0 दूबे के साथ नरहन, मकन्दवार और मदरहा से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा ग्रे वेअर के टुकड़े भी धरातल से खोज डाले। इस प्रकार सोहगौरा संस्कृति के द्वितीय एवं तृतीय काल से सम्बन्धित अवशेष इन तीनों स्थलों के धरातल से प्राप्त हुए हैं।

नरहन से चित्रित मृद्भाण्डों के टुकड़ों के साथ ही ब्लैक–एण्ड वेअर का डिस आन स्टैण्ड पात्र भी मिला है, जो विशेष आकर्षक है। इसे देखकर वर्ष 1980–81 में इलाहाबाद में आयोजित राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर की संगोष्ठी में मध्य गंगा घाटी के नवपाषाणकालीन उत्खनित प्रथम दो स्थलों : सोहगौरा एवं चिराँद की प्रदर्शनी लगायी गयी थी। सोहगौरा के साथ नरहन के डिस–आन स्टैण्ड को भी प्रदर्शनी में

लगाया गया था, जिससे आकर्षित प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने नरहन के उत्खनन की योजना बनायी। दुर्भाग्यवश नरहन गाँव के पूरब ऊँचे टीले को, जिसे चिड़ीहार कहते हैं, उन्होंने खोद डाला। यहाँ पर उन्हें सोहगौरा के प्रथम एवं द्वितीय काल के अवशेष नहीं प्राप्त हुए। अतएव प्रो0 सिंह ने असम में आयोजित राष्ट्रीय संगोष्ठी में अपने लेख 'नरहन चिड़ीहार उत्खनन' में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर इशारा करते हुए आरोप लगाया कि पता नहीं कैसे गोरखपुर विश्वविद्यालय के लोगों ने यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा अन्य ताम्रपाषाणिक पुरावशेष खोज निकाले, जबकि मुझे नरहन चिड़ीहार के उत्खनन एवं समीपवर्ती क्षेत्रों के सर्वेक्षण से भी कहीं ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का टुकड़ा नहीं मिला[8]। वहाँ उपस्थित प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी ने उन्हें सुझाव दिया कि आपकी टीम ने सम्भवतः नदी के कगार को नहीं देखा, जहाँ उसके कटान में ही उक्त पुरावशेष दिखायी पड़ते हैं। प्रो0 त्रिपाठी ने प्रो0 सिंह को बताया कि, 'आप गाँव के पूरब उत्खनन करा रहे थे, और मुझे श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने बताया है कि नरहन गाँव के पश्चिम, तटवर्ती खेतों में सोहगौरा के द्वितीय एवं तृतीय काल से सम्बन्धित अवशेष बिखरे पड़े हैं।' उन्हें नदी के कटान से भी देखा जा सकता है। यदि आप उक्त स्थल का पुनः अवलोकन करेंगे तो आपको लगेगा कि हमारे विभाग ने सोहगौरा के द्वितीय एवं तृतीय काल के अवशेष सही में खोजे हैं।

प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने उक्त स्थल को देख कर वहीं उत्खनन किया, जहाँ उन्हें इस उत्खनन के द्वारा बहुत ख्याति मिली। यहाँ उन्हें अपेक्षित पुरावशेष भी उपलब्ध हुए[9]। इसी तरह से नरहन के पूरब, मदरहा टीला जो सरयू के तट पर स्थित है, यहाँ भी ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा ब्लैक स्लिप्ड वेअर के टुकड़े धरातल से प्राप्त हुए हैं। इसी क्रम में सरयू के तट पर ही मकन्दवार नामक टीले पर जिसका अधिकांश भाग नदी में विलीन हो चुका है, कुछ प्राचीन अवशेष मिले, जिसमें ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ग्रे–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 वेअर, के टुकड़े मुख्य हैं। नदी के कगार पर रिंग–वेल तथा कुषाण कालीन दीवारों के अवशेष दिखायी दे रहे थे।

1979–80 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन में तथा प्रो0 डी0 एन0 त्रिपाठी के सह निर्देशन में श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी तथा श्री टी0 एन0 दूबे ने फाजिलनगर एवं सठियाँव का उत्खनन किया[10]।

1981–82 में श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने बस्ती जनपद मुख्यालय से गोरखपुर जनपद में सरयू–कुआनों के संगम स्थल तक अनेक ऐसे पुरास्थल खोज निकाले, जो नवपाषाण काल या उससे कुछ पूर्व के हैं। इन स्थलों से ताम्रपाषाण काल एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल तक के अवशेष प्राप्त हुए, जिनमें **सूसीपार** (बस्ती जनपद में) से माइक्रोंलिथ इण्डस्ट्री तथा हस्तनिर्मित–मृद्भाण्ड (कार्डेड वेअर, ब्लैक एण्ड रेड वेअर, ब्लैक

स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर तथा कुछ गेरूए रंग के मृद्भाण्ड) एवं कुछ दूरी पर ऐतिहासिक काल के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। ठीक इसी प्रकार के अवशेष सिसवनिया से भी मिले हैं, जिनमें माइक्रोलिथ्स, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा एन0बी0पी0 वेअर के टुकड़े मिले हैं। **रामनगरघाट** एवं **बड़गों** में माइक्रोलिथ इण्डस्ट्री से लेकर सूसीपार के सभी अवशेष मिले हैं, जबकि गेड़ार बहुत बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है, जहाँ माइक्रोलिथ्स नहीं दिखे। यहाँ हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड तथा ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, ग्रे–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, तथा ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले हैं। गोरखपुर जनपद में अवस्थित इमलीडीह से सर्वेक्षण के दौरान मुझे धरातल से नवपाषाणिक (हस्तनिर्मित कार्डेड वेअर) एवं ताम्रपाषाणिक मृद्भाण्डों (रेखाचित्र संख्या 29, नं0 1, 2, 3) के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं। इसके पहले श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी को भी ये अवशेष मिल चुके हैं। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने भी यहाँ से उत्खनन के दौरान इन पात्रावशेषों से साक्षात्कार किया है, जिसका विवरण प्राग्धारा अंक 3 (आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द–1992) में दिया गया है। इमलीडीह के प्रथम काल से कार्डेड वेअर (रेखाचित्र संख्या–4) के साथ ही प्लेन–रेड वेअर (रेखाचित्र संख्या–7) भी मिले हैं। कार्डेड–वेअर में कुछ ऐसे भी पात्र मिले हैं, जिन पर आसञ्जन विधि से अलंकरण किया गया है (रेखाचित्र संख्या–5)। इसी काल से कुछ ऐसे मृद्भाण्डों के ठीकरे भी मिले हैं, जिन पर पकाने के बाद विविध आकृतियाँ उत्कीर्ण की गयी हैं (रेखाचित्र संख्या—6)। उपर्युक्त मृद्भाण्ड प्रकारों के अतिरिक्त प्रथम काल से कुछ अन्य पात्र–प्रकारों के टुकड़े भी मिले हैं जिन पर विविध प्रकार की आकृतियाँ बनायी गयी हैं (रेखाचित्र संख्या–8)।

1982–83 में श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने नवपाषाणकालीन एवं ताम्रपाषाणकालीन अवशेषों को वर्तमान संतकबीर नगर जनपद में स्थित बखिराझील के किनारे **बड़गों, चिलवनखोर, बाड़ोंडीह** तथा **नेवास** एवं **गेनौरा** आदि पुरास्थलों से खोज निकाला। इन सभी नवपाषाणिक एवं ताम्रापाषाणिक स्थलों से सम्बन्धित लेखों का वाचन स्थानीय बौद्ध संग्रहालय (गोरखपुर) के एक व्याख्यान में सर्वप्रथम श्री त्रिपाठी ने किया, जिसे तमाम स्थानीय समाचार पत्रों ने प्रकाशित किया। इसके बाद उन्होंने राष्ट्रीय स्तर के अनेक अधिवेशनों में इन खोजों के सम्बन्ध में वाचन किया। दुर्भाग्यवश उन्होंने अभी तक स्वतंत्र रूप से अपना कोई शोध लेख प्रकाशित नहीं किया है।

हाल के वर्षों (1996–97 के मध्य) में महराजगंज जनपद के कई स्थलों से नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक स्थलों को खोजकर श्री त्रिपाठी ने इस सांस्कृतिक विस्तार को प्राचीन सदानीरा तथा बूढ़ी गण्डक के छाड़न पुरैना खण्डी ताल के तट पर, ऊँचे धूस पर लगभग एक कि0मी0 लम्बे क्षेत्र तक पहुँचाया है[11]। इस क्षेत्र से नवपाषाणकालीन कार्डेड वेअर के टुकड़े, माइक्रोलिथ्स के टुकड़े तथा ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर,

ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर तथा एन0 बी0पी0 वेअर तक के अवशेष उन्होंने प्राप्त किये। इस प्रकार नवपाषाणकालीन संस्कृति का विस्तार सदानीरा के तट तक खोजकर एक नये अध्याय की शुरूआत की गयी। ध्यातव्य है कि सदानीरा का उल्लेख शतपथ ब्राहमण में मिलता है। यह खोज वहाँ के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक श्री विजयकुमार के साथ श्री कृष्णानंद त्रिपाठी[12] ने महराजगंज जनपद में किया, साथ ही रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन आदि बौद्ध–युग से सम्बन्धित स्थलों की खोज, जंगल–झाड़ियों एवं नदियों के किनारे की गयी। इसके बहुत पहले एक दर्जन से कम ही पुरास्थलों की खोज हुयी थी, जिनमें महत्त्वपूर्ण स्थलों की खोज जून 1973 में श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने किया था। इसके पूर्व श्री शिवाजी सिंह ने मनिआरभार को रामग्राम तथा श्री सी0 डी0 चटर्जी ने बनरसिहाकला को देवदह, के रूप में पहचान किया था। लेकिन श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी एवं श्री विजय कुमार ने कुछ ही महीनों के अन्दर पूरे जनपद के प्रत्येक गाँव तथा जंगलों का व्यापक सर्वेक्षण करते हुए चार सौ के लगभग पुरास्थलों को खोज डाला, जहाँ से नवपाषाणकाल, ताम्रपाषाणकाल, बौद्धकाल, मौर्यकाल, कुषाणकाल, गुप्तकाल, एवं पूर्व मध्यकाल तक के अवशेष मिले हैं, जो इस क्षेत्र के ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्वरूप के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगे। इस क्षेत्र में प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह के द्वारा इमलीडीह, नरहन, तथा धुरियापार के उत्खनन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी गयी है। इसके उपरांत आजतक इस पूरे परिक्षेत्र में समय–समय पर गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से सर्वेक्षण कार्य किए गये।

1997–98 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी एवं प्रो0 आर0 के0 वर्मा के निर्देशन एवं श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी तथा विभाग के शोधछात्रों के सहयोग से उसमानपुर (बीरभारी टीला) में उत्खनन कार्य सीमित क्षेत्र में हुआ, जिसमें कुषाणकालीन एक बस्ती का अवशेष दिखायी दिया।

वर्ष 1996 में कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की ओर से एक बड़ी परियोजना के तहत प्रो0 डी0 के0 चक्रवर्ती, इस क्षेत्र के पुरास्थलों को देखने की योजना लेकर आए। प्रो0 चक्रवर्ती ने कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर, महराजगंज, सिद्धार्थनगर, संतकबीरनगर, बस्ती, तथा गोण्डा जनपदों के महत्त्वपूर्ण पुरास्थलों का सर्वेक्षण, गोरखपुर विश्वविद्यालय के कृष्णानंद त्रिपाठी तथा बी0 एच0 यू0 के डॉ0 आर0 एन0 सिंह के साथ किया। इस सर्वेक्षण कार्य का प्रकाशन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विशेष बुलेटिन में संयुक्त रूप से प्रो0 डी0 के चक्रवर्ती, डा0 आर0 एन0 सिंह और श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी के नाम से हुआ है।

इस प्रकार सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा, सूसीपार, रामनगरघाट, बड़गो, गेड़ार, (मानचित्र संख्या–2) आदि पुरास्थलों से मुख्यरूप से नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। इनमें अधिकांश पुरावशेष धरातलीय सर्वेक्षण में मिले हैं।

ताम्रपाषाणिक संस्कृति

गोरखपुर जनपद में साँस्कृतिक अनुक्रम का दूसरा चरण ताम्रपाषाणकाल से प्रारम्भ होता है। ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अन्तर्गत उस संस्कृति को रखा गया है, जिसमें ताँबे के उपकरणों के साथ ही साथ पाषाण निर्मित औजारों का प्रचलन मिलता है। जहाँ तक इस संस्कृति के तिथिक्रम का प्रश्न है, कोई ऐसी तिथि निर्धारित नहीं हो सकी है, जो सभी क्षेत्रों की ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों की संवादी हो। इसका कारण यह है कि इस संस्कृति का अस्तित्व विविध क्षेत्रों में अलग–अलग समयों में रहा है। उत्खनन से उपलब्ध ताम्रपाषाणिक पुरावशेषों के रेडियो कार्बन तिथियों के आलोक में गोरखपुर परिक्षेत्र में इस संस्कृति के प्रारम्भ के लिए 1500 से 1400 ई0 पू0 का समय निर्धारित किया जा सकता है।

गोरखपुर–बड़हलगंज–वाराणसी राजमार्ग पर कौड़ीराम से लगभग 3 कि0मी0 पूरब आमी–राप्ती नदियों के संगम पर स्थित सोहगौरा का प्रथम उत्खनन 1961–62 में गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग की ओर से प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय के निर्देशन में उनके सहयोगी डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी एवं डॉ0 डी0 एन0 त्रिपाठी ने किया। इस उत्खनन में जो प्राचीनतम संस्कृति मिली वह ताम्रपाषाणिक थी। क्योंकि इसके ठीक नीचे प्राकृतिक मिट्टी मिली थी। इस उत्खनन में चार सांस्कृतिक कालों के अवशेष प्रकाश में आये[13]।

वर्ष 1974–75 में पुनः प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन में श्री कृष्णानंद त्रिपाठी (संग्रहालयाध्यक्ष) ने यहाँ उत्खनन कार्य किया[14]। इस उत्खनन में कुल छः सांस्कृतिक कालों के अवशेष मिले, जिनमें द्वितीय और तृतीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाणकाल से जोड़ा गया है। द्वितीय काल से उत्तर–नवपाषाणिक एवं प्रारम्भिक ताम्रपाषाणिक अवशेष उपलब्ध हुये हैं। तृतीय काल का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से ताम्रपाषाणकाल से जोड़ा गया है। सोहगौरा के द्वितीय काल से ताम्रपाषाणिक रेडवेअर (रेखाचित्र संख्या–9 एवं 10), ब्लैक–एण्ड–रेडवेअर (रेखाचित्र संख्या–11), ब्लैक–स्लिप्ड–एण्ड–ग्रे वेअर (रेखाचित्र संख्या–12), पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेडवेअर (रेखाचित्र संख्या–13), पेन्टेड ब्लैक वेअर (रेखाचित्र संख्या–14) के साथ ही नक्काशी एवं आसञ्जन विधियों से बनायी गयी आकृतियों वाले मृद्भाण्डों के ठीकरे (रेखाचित्र संख्या–15) मिले हैं।

जनपद का दूसरा उत्खनित ताम्रपाषाणिक स्थल **नरहन** है। इस पुरास्थल की स्थिति 26°19′ (Late) तथा 83°24′ (Long) पर है। यहाँ गोरखपुर जनपद के बांसगॉव तहसील में गोरखपुर–गोला–बड़हलगंज मार्ग पर स्थित भरोह से पहुँचा जा सकता है। यह स्थल घाघरा (सरयू) के बायें तट पर अवस्थित है। यहाँ दो टीले हैं। नरहन तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व

एवं संस्कृति विभाग के डॉ0 आर0 बी0 सिंह ने किया[15]। बांसगाँव तहसील में वर्ष 1974–75 में इसी विभाग के प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन में सर्वेक्षण कार्य सम्पन्न हुआ[16]। सर्वेक्षण के दौरान श्री टी0 एन0 दूबे को 1974 में नरहन से अत्यंत महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुयी, जिसे उन्होंने स्थानीय समाचार पत्र में प्रकाशित किया (17 अक्टूबर, 1978)। ये पुरावशेष पू0 सं0 में सुरक्षित हैं। इस पुरास्थल पर 1983 से 1988 तक कई सत्रों में उत्खनन कार्य हुआ। यहाँ से पाँच सांस्कृतिक कालों के अवशेष मिले[17]। टीले की ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 6 मीटर है।

नरहन के प्रथम काल से पेन्टेड–ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर बहुतायत से मिले हैं (रेखाचित्र संख्या–18–21)। इनमें मुख्यतः श्वेत चित्रित ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के पात्र हैं। प्रथम काल से बर्निस्ड–ब्लैक–एण्ड रेड वेअर (रेखाचित्र संख्या–22) के मृद्भाण्डों के टुकड़े भी मिले हैं। इसी काल से कार्डेड वेअर के ठीकरे (रेखाचित्र संख्या–23) भी प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड–स्लिप्ड वेअर तथा प्लेन–रेड वेअर भी प्रथम काल से मिले हैं। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के कुछ पात्रों पर श्वेत रंग के चित्रण अभिप्राय मिलते हैं। यहाँ ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर की संख्या लगभग 58 प्रतिशत है। यहाँ से कटी हुयी हड्डियों के प्रमाण मिले हैं। पात्रों में तश्तरियाँ एवं मिट्टी के मनके मुख्य रूप से उपलब्ध हुए हैं।

द्वितीय काल का सांस्कृतिक जमाव लगभग 90 सेन्टीमीटर है। यह जमाव प्रथम टीले पर है। इस जमाव में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (सादे एवं चित्रित) का पूर्णतः अभाव है। लेकिन ब्लैक–स्लिप्ड पात्रों की संख्या अत्यधिक हैं। रेड–स्लिप्ड वेअर बहुत सीमित मात्रा में विद्यमान हैं। प्लेन-रेड वेअर (सादे लाल पात्र) को यहाँ के मुख्य मृद्भाण्ड उद्योग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर में मुख्यतः कटोरे और थालियाँ हैं। रेड वेअर में भी प्रमुख रूप से कटोरे, थालियाँ और तसले बहुतायत से मिलते हैं। यहाँ हड्डी के नुकीले नमूनों पर गोलाकार चिन्ह निर्मित किया जाता था। इस प्रकार के साक्ष्य यहाँ से मिल चुके हैं। इस काल से शीशे एवं मिट्टी के मनकों के अतिरिक्त मिट्टी के गेंद तथा मिट्टी की बनी हुयी घोड़े की मूर्ति भी मिली है। इसके अतिरिक्त द्वितीय काल से लोहे के उपकरण भी मिलने लगते हैं।

उपर्युक्त पुरावशेषों के आलोक में यह स्पष्ट हो चुका है, कि नरहन के द्वितीय काल में ताम्रपाषाण एवं प्रारम्भिक लौह काल कुछ दिनों तक साथ–साथ चलते रहे। इसके अनन्तर नरहन की तृतीय संस्कृति का प्रारम्भ होता है, जिसकी प्रमुख पात्र–परम्परा एन0 बी0 पी0 वेअर है।

नरहन का प्रथम काल 1300 बी0सी0 से लेकर लगभग 800 बी0 सी0 तक चलता रहा। यह काल विशुद्ध रूप से ताम्रपाषाणिक था। दूसरा काल 800 बी0सी0 से 600 बी0सी0 तक चलता रहा[18], जो परवर्ती ताम्रपाषाण एवं प्रारम्भिक लौह काल की मिश्रित संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करता है।

नरहन संस्कृति के उद्घाटन के पश्चात् इस संस्कृति के विस्तार की समस्या को ध्यान में रखते हुए उत्खाता के नेतृत्व में कुआनों नदी (घाघरा की सहायक) के तटवर्ती गॉवों में व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण कार्य किया गया। उक्त सर्वेक्षण गोरखपुर एवं बस्ती जनपदों में किया गया। इस तरह नरहन संस्कृति से सम्बन्धित 17 पुरास्थल खोजे गये। इसी क्रम में धुरियापार का उत्खनन किया गया, जिसके निचले स्तर से 'नरहन संस्कृति' से मिलते-जुलते अवशेष मिले। लेकिन धुरियापार का प्राचीनतम स्तर डिस्टर्व (क्षत-विक्षत) हो चुका था। ऐसी दशा में यहाँ की सांस्कृतिक सीमा का उद्घाटन सम्भव नहीं हो सका। इसी क्रम में **इमलीडीह** का उत्खनन किया गया। ध्यातव्य है कि इमलीडीह की प्राचीनतम संस्कृति नवपाषाणिक थी। इमलीडीह का द्वितीय काल, नरहन संस्कृति के प्रथम काल का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका समय 1300 बी0 सी0 से 800 बी0 सी• निर्धारित किया गया है[19]।

धुरियापार (Late $83^{0}10'30'$ E, & $26^{0}25'25''$ Long N) जनपद मुख्यालय से लगभग 46 कि0मी0 दक्षिण, कुआनों नदी के वाम तट पर अवस्थित है। यहाँ पहुँचने के लिए सर्वप्रथम गोरखपुर-सिकरीगंज-गोला राजमार्ग पर स्थित उरूआ बाजार जाना पड़ता है। यहाँ से लगभग 4 कि0 मी0 दक्षिण-पश्चिम कुआनों नदी है, जिसके वामतट पर यह पुरास्थल अवस्थित है। टीले का क्षेत्रफल लगभग 7-8 एकड़ है। धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 2.5 मीटर है।

इस स्थल का सर्वप्रथम सर्वेक्षण ए0 फ्यूहरर ने किया था[20]। पुनः श्री कृष्णानंद त्रिपाठी (गो0 वि0वि0) ने इस पुरास्थल का पुनर्सर्वेक्षण किया। श्री त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् मैंने भी इस पुरास्थल का सर्वेक्षण किया, जहाँ मुझे ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर तथा कार्डेड वेअर के ठीकरों के साथ ही ब्लैक-स्लिप्ड, भूरे रंग के पात्रों के ठीकरे (पतली और मोटी गढ़न के) तथा एन0बी0 पी0 के टुकड़े भी उपलब्ध हुये। यहाँ मध्यकालीन ईटों के टुकड़े भी बिखरे हुए मिले थे।

इस पुरास्थल का नाम 'धुरियापार' कौशिक क्षत्रिय राजा धूरचन्द्र के नाम पर पड़ा है। धूरचन्द्र ने 14वीं शदी के मध्य में यहाँ किलेबन्दी कर अपना शासन स्थापित किया था[21]। धुरियापार का उत्खनन बी0 एच0 यू0 के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने किया है। यह उत्खनन सीमित पैमाने पर सम्पन्न हुआ, जिसका संक्षिप्त विवरण प्राग्धारा अंक-2 में दिया गया है[22]।

धुरियापार के उत्खनन में कुल चार सांस्कृतिक कालों के अवशेष उपलब्ध हुए। प्रथम काल का समय लगभग 1300 बी0 सी0 से 600 बी0 सी0 निर्धारित किया गया है। गोरखपुर परिक्षेत्र में ताम्रपाषाणिक संस्कृति के प्रारम्भ का समय 1500-1400 बी0 सी0 निर्धारित किया गया है। अतएव धुरियापार के प्रथम काल का

सम्बन्ध ताम्रपाषाणयुग से जोड़ा जा सकता है। स्पष्ट है कि सोहगौरा संस्कृति के द्वितीय–तृतीय काल का विस्तार यहाँ भी हुआ है।

प्रथम काल के पुरावशेषों में मुख्य रूप से श्वेत रेखाओं से युक्त ब्लैक एण्ड रेड वेअर हैं (रेखाचित्र संख्या -22)। इस पात्र परम्परा के पात्रों में साधार कटोरे (Pedastal bowl), तसले और कलश विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ से ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर, तथा रेड वेअर (लाल रंग के पात्र) के अवशेष भी उपलब्ध हुए हैं। ब्लैक–स्लिप्ड पात्रों में मुख्यतया कटोरे और थालियाँ है। भूरे रंग के पात्रों में भी कटोरे और थालियाँ उल्लेखनीय है। रेड वेअर के पात्रों में कटोरे और कलश मिले हैं। यहाँ से कुछ लघु आकार के पुरावशेष भी मिले हैं, जिनमें मिट्टी के मनके, गेंद, हड्डी के बने बाणाग्र एवं कंघियाँ (Points and combs of bone) तथा बर्तनों के टुकड़ों की बनी चक्रिका (Pottery disc) हैं। यह सांस्कृतिक जमाव स्पष्ट करता है कि यहॉ से प्राप्त पुरावशेष 'नरहन संस्कृति' से समानता रखते हैं, तथापि धुरियापार के प्राचीनतम स्तर से प्राप्त रस्सी की छाप वाले पात्रों के ठीकरे (रेखाचित्र संख्या–24, नं0 18) एवं हस्तनिर्मित कटोरे (ग्रे वेअर) इस बात की ओर संकेत करते हैं कि धुरियापार में मानव आवास 'नरहन संस्कृति' से पहले ही स्थापित हुआ होगा। चूँकि धुरियापार का धरातल मानव एवं प्रकृति के हाथों से डिस्टर्व हो चुका था, अतएव वहां विस्तृत पैमाने पर उत्खनन सम्भव नहीं था। अतएव कुछ सीमित पुरावशेषों के आधार पर धुरियापार की सांस्कृतिक सीमाओं तक पहुँचना सम्भव नहीं है। फिर भी नरहन की अपेक्षा इसकी प्राचीनता में कोई संदेह नहीं रह जाता है।

1974 ई0 में श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी ने बस्ती जनपद में स्थित **लहुरादेवा** का संर्वेक्षण किया था। इसी क्रम में 1975 में सरयू के तटवर्ती क्षेत्रों का सर्वेक्षण भी उन्होंने अपने सहयोगी श्री टी0 एन0 दूबे के साथ किया। इस सर्वेक्षण के दौरान **नरहन**, **मकन्दवार** और **मदरहा** से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा ग्रे वेअर के टुकड़े उन्हें मिले थे। इस प्रकार सोहगौरा संस्कृति के द्वितीय एवं तृतीय काल का विस्तार इन स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। श्री त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् मैंने भी इन पुरास्थलों का पुनर्सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान मुझे भी इन स्थलों के धरातल से इस प्रकार के ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले। इन पुरावशेषों के आधार पर इन स्थलों का सम्बन्ध ताम्रपाषाण काल से जोड़ना सर्वथा यथेष्ट हैं। नरहन, मकन्दवार और मदरहा गोरखपुर जनपद में हैं।

वर्तमान संतकबीरनगर जनपद में स्थित बखिरा झील के किनारे, **बड़गो**, **चिलवनखोर बाड़ोडीह**, **नेवास** तथा **गेनवरा** नामक पुरास्थलों से श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने 1982–83 में नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक पुरावशेष प्राप्त किए थे। इन पुरावशेषों की प्राप्ति के पश्चात् गोरखपुर परिक्षेत्र में नवपाषाणिक संस्कृति से सम्बन्धित पुरास्थलों की श्रृंखला में वृद्धि हुयी। इस खोज का विवरण तत्कालीन स्थानीय समाचार पत्रों में

व्यापक रूप से दिया गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर की अनेक संगोष्ठियों में भी श्री त्रिपाठी ने इसका उल्लेख किया है[23]।

गोरखपुर मुख्यालय से 35 किलोमीटर दूर बखिराझील के निकट, गोरखपुर एवं बस्ती जनपदों की सीमा पर गेनवरा नामक पुरास्थल स्थित है। यहाँ एक टीला है जो लगभग समतल हो चुका है। यहाँ से उपलब्ध लाल रंग के खण्डित पात्रों के अवशेष, लेट नवपाषाण तथा ताम्रपाषाण युगीन लाल रंग के पात्रों के समान हैं। अन्य पात्रों में ब्लैक–एण्ड–रेड, वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, तथा एन0बी0पी0 वेअर के टुकड़े प्रमुख हैं। कुषाण कालीन मृण्मूर्तियों के खण्डित भाग भी उपलब्ध हुए हैं। किंतु अत्यधिक घिसे एवं अस्पष्ट होने के कारण उनका विवरण देना सम्भव नहीं है।

इमलीडीह खुर्द ($26^{0}30'30''$ Lat $83^{0}12'5''$ Long) का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने किया था। पुनः अप्रैल–मई 1991 में धुरियापार के उत्खनन के दौरान बी0एच0यू0 के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने इस पुरास्थल का अवलोकन किया। इस टीले का कुछ भाग कृषि– कार्य के द्वारा नष्ट का हो चुका है। शेष तीन चौथाई हिस्से पर ग्रामीणों ने अपना घर बना लिया है।

यह पुरास्थल गोरखपुर–मार्ग पर सिकरीगंज से लगभग 1 कि0मी0 उत्तर-पश्चिम दिशा में अवस्थित है। इसका विस्तार लगभग 6–7 हेक्टेयर है। वर्तमान समय में इमलीडीह ग्राम टीले के पूरब में विद्यमान हैं। सर्वेक्षण के दौरान शोधकर्ता को धरातल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, कार्डेड–वेअर, ब्लैक स्लिप्ड (प्लेन एवं पेन्टेड), भूरे रंग के पात्रों तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के ठीकरे उपलब्ध हुए हैं।

मार्च–मई, 1992 में इस पुरास्थल का उत्खनन बी0एच0यू0 के प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने सीमित पैमाने पर किया था[24]। उत्खनन के बाद यहां जो पुरावशेष उपलब्ध हुए, उनके आधार पर इस संस्कृति के द्वितीय काल का सम्बन्ध 'नरहन संस्कृति' से जोड़ा गया। यहां तीन सांस्कृतिक अनुक्रम मिले, जिसमें द्वितीय संस्कृति ताम्रपाषाणिक है। यह नरहन संस्कृति की समकालिक है, जिसका समय 1300 बी0सी0 से 800 बी0 सी0 के मध्य चलता रहा। इस प्रकार इमलीडीह का द्वितीय काल विशुद्धतः ताम्रपाषाणिक है।

द्वितीय काल में मिट्टी के दो क्रमिक फर्शों पर भवन–निर्माण के साक्ष्य मिले हैं। इसके अतिरिक्त अनेक स्तम्भ–गर्त (Post-Hols) और चूल्हे या भट्ठियों के प्रमाण मिले हैं। इस युग की मुख्य पात्र–परम्परा (**रेखाचित्र संख्या** 16, 17) श्वेत चित्रित काले एवं लाल रंग के पात्र हैं, जो कि नरहन की प्रमुख पात्र–परम्परा है। यहाँ से 30 कि0 मी0 पूर्व–उत्तर–पूर्व में नरहन अवस्थित है।

ध्यातव्य है कि नरहन के उत्खनन में उपलब्ध, श्वेत, चित्रित ब्लैक-एण्ड रेड वेअर आंकिक दृष्टि से इमलीडीह की अपेक्षा अधिक हैं। इसके अतिरिक्त इमलीडीह में यह पात्र परम्परा नरहन की अपेक्षा कुछ बिन्दुओं पर भिन्न है।

1. इमलीडीह में यह पात्र–परम्परा केवल रूक्ष और मध्यम गढ़न (Coarse and medium fabrics) की है।

2. मध्यम गढ़न के ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्र नरहन की अपेक्षा मोटे और बड़े हैं। साथ ही ये मृद्भाण्ड कुछ पुराने भी प्रतीत होते हैं। मृद्भाण्डों के निमित्त तैयार की गयी मिट्टी में सालन (Degraissant) के रूप में प्रायः धान की भूसी एवं अन्न के कुछ टुकड़े भी दिखायी पड़ते हैं। पात्रों को पकाने का बाद उन पर धान की भूसी की छाप दृष्टिगोचर होती है।

3. नरहन में, रगड़कर चिकने एवं चमकीले बनाए गए ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, एक दर्जन से अधिक नहीं हैं, जबकि इमलीडीह में इनकी संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। कुछ कटोरों (सामान्य एवं गोड़ेदार) के बाह्य भाग पर लगे हुए स्लिप उधड़ गये हैं, और उनके नीचे का भाग चिकना (Smooth) दिखायी पड़ता है।

4. गोड़ेदार कटोरों के गोड़ों में दो छिद्र बने हुए हैं। सम्भवतः इस्तेमाल के उपरान्त किसी कील के सहारे इसे ऊपर टाँग दिया जाता रहा होगा। इस तरह के पात्र नरहन में नहीं मिले हैं।

5. यहाँ पर ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्रों में चित्रण अपेक्षाकृत कम हैं। नरहन में चित्रित पात्रों की संख्या ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का 20 प्रतिशत है, जबकि इमलीडीह में ये पात्र 1 प्रतिशत से भी कम है। पात्रों पर चित्रण अभिप्राय रेखाओं के रूप में संजोया गया है। कुछ पात्रों पर यह चित्रण दोनों तरफ मिलता है।

6. यहाँ के कटोरे नरहन की अपेक्षा छिछले हैं, जो प्लेट या तश्तरीनुमा दिखते हैं।

इसके अतिरिक्त यहाँ से अत्यन्त निम्नकोटि के ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के अवशेष मिले हैं। इस पात्र–परम्परा में बहुत मोटी बारी वाले कलश बहुतायत से मिले हैं। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के अतिरिक्त यहाँ द्वितीय काल से ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर और प्लेन-रेड वेअर भी प्राप्त हुए हैं। रेड-स्लिप्ड वेअर इमलीडीह में नहीं मिला है, जबकि नरहन में अत्यंत अल्प मात्रा में मिला है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 35 कि0मी0 दक्षिण खजनी–उरुवा–गोला राजमार्ग पर कुआनों के वाम तट पर सिकरीगंज, के टीले (सिकरीडीह) से शोधकर्त्ता को ताम्रपाषाणिक एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के पात्रावशेष (रेखाचित्र संख्या–25) मिले हैं। अतएव इन पुरावशेषों के आलोक में कहा जा सकता है कि यह पुरास्थल ताम्रपाषाण काल एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के लोगों की क्रीड़ास्थली रहा होगा।

प्रारम्भिक लौह कालीन संस्कृति

लोहे की बहुआयामी उपयोगिता एवं मानव सभ्यता के बहुमुखी विकास में इसकी भूमिका एवं महत्त्व स्वतः सिद्ध है। लौह तकनीक के प्रचलन के फलस्वरूप विविध क्षेत्रों में उल्लेखनीय प्रगति हुयी। यद्यपि लौह तकनीक आज मानव जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुयी है, फिर भी इसका सर्वप्रथम प्रचलन कब और कहाँ पर हुआ, यह प्रश्न अभी तक ठीक से सुलझाया नहीं जा सका है। लोहे को खान से निकालने तथा धातु शोधन की प्रक्रिया का सर्वप्रथम प्रचलन सम्भवतः एशिया माइनर (टर्की) अथवा काकेशस के क्षेत्र में हुआ[25]। लगभग 1200 ई0 पू0 में हित्ती साम्राज्य के अधःपतन के पश्चात् लौह तकनीक के कारीगर आजीविका की तलाश में सीमावर्ती क्षेत्रों में गये, जहाँ उन्होंने अपने इस तकनीकी ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया।

भारत में लोहे का ज्ञान कब हुआ? इसका ठीक–ठीक निर्धारण नहीं हो सका है। फिर भी विगत तीन–चार दशकों में देश के विभिन्न क्षेत्रों में जो पुरातात्त्विक अन्वेषण और उत्खनन हुए हैं, उनसे लोहे की प्राचीनता के सम्बन्ध में हमारी जानकारी में कुछ वृद्धि हुयी है। पहले विद्वानों की मान्यता थी कि आर्यो के माध्यम से भारत में लोहे का ज्ञान हुआ। क्योंकि ऋग्वेद में 'अयस' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसे लोहा समझ लिया गया। बाद के अध्ययनों से ज्ञात हुआ कि 'अयस' शब्द धातु के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। विगत् तीन–चार दशकों में ऊपरी गंगा–घाटी एवं दोआब, पूर्वी भारत (मध्य गंगा–घाटी), मध्य भारत एवं दक्षिण भारत के इन चार क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यों की समीक्षा के पश्चात् मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत में लगभग 1000 ई0 पू0 में लोहे की जानकारी हो चुकी थी।

लगभग चार दशक पहले उत्तरी भारत में एन0बी0पी0 मृद्भाण्डों के साथ लोहे के उपकरण भी मिले थे। इस आधार पर लोहे की प्राचीनतम सीमा रेखा 600 बी0 सी0 निर्धारित की गई थी। आलमगीरपुर के उत्खनन में चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के साथ लोहे के उपकरण भी मिले हैं। अतरंजीखेड़ा, अहिच्छत्र, नोह, बटेश्वर, अल्लापुर (मेरठ) आदि पुरास्थलों से भी इस तरह के साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं[26]। चित्रित धूसर पात्रपरम्परा की तिथि 9वीं–8वीं शताब्दी ई0 पू0 निर्धारित की गयी है। यह तिथि रेडियों कार्बन तिथियों के आधार पर निर्धारित की गयी हैं। पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर लगभग 1000 ई0 पू0 के आस–पास

इसका तिथिक्रम प्रस्तावित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि राजस्थान के नोह और जोधपुरा नामक पुरास्थलों से चित्रित धूसर–पात्र परम्परा की पूर्ववर्ती, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (कृष्ण–लोहित) के स्तर से भी लौह उपकरण मिले हैं। अतएव उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रों में लोहे की प्राचीनता 1000 ई0 पू0 से भी पहले तक प्रस्तावित की जा सकती है।

चिरांँद, सोनपुर, पाण्डुराजारधिवि और महिषादल आदि पूर्वी भारत के पुरास्थलों से भी ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (कृष्ण लोहित पात्र परम्परा) के साथ लोहे के उपकरण उपलब्ध हुए हैं। रेडियो कार्बन तिथियों के आधार पर इस क्षेत्र में लगभग 750 ई0 पू0 की तिथि, लौह तकनीक के प्रचलन के लिए प्रस्तावित की गयी हैं।

भारत भूमि के विविध क्षेत्रों में लौह तकनीक के प्रचलन के पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में कहा जा सकता हैं कि, यहाँ प्रथम सहस्राब्दी ई0 पू0 के प्रारम्भिक चरण में लोहे के उपकरणों का प्रचलन हो गया था। भारत में लौह तकनीक के प्रसार से सम्बद्ध अनेक प्रश्न स्वभाविक रूप से उठ खड़े होते हैं। यहाँ इन प्रश्नों का उल्लेख करना यथेष्ट नहीं है। कुछ पुराविदों ने सम्भावना व्यक्त की है कि प्राचीन भारत की द्वितीय नगरीय क्रान्ति' जो छठी शताब्दी ई0 पू0 में गंगा घाटी में हुई थी, वह लौह तकनीक के प्रसार पर ही विशेष रूप से आधारित थी[27]।

कृषि–कार्य में लोहे के उपकरणों के प्रयोग के फलस्वरूप मध्य गंगा घाटी की कछारी मिट्टी वाले क्षेत्रों में सफलता पूर्वक खेती करना संभव हो सका। गांगेय क्षेत्र के सघन वनों को साफ करके धान, गन्ना, कपास, तथा गेहूँ, जौ आदि की खेती बड़े पैमाने पर की जाने लगी। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लौह तकनीक से प्रभावित होने लगा था।

गोरखपुर परिक्षेत्र में लौहकाल का प्रारम्भ, 800–900 ई0 पू0 के आस–पास हुआ होगा। सोहगौरा के उत्खनन में 7वीं शताब्दी के आसपास लौह अवशेष मिले हैं। लेकिन गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानंद त्रिपाठी की मान्यता है कि इस परिक्षेत्र में 1000 ई0 पू0 के आसपास लौह काल का प्रारम्भ हुआ[28]।

गोरखपुर जनपद के नरहन नामक पुरास्थल के उत्खनन में, **तृतीय काल** से लोहे एवं ताँबे के बने हुए उपकरण संयुक्त 'रूप से मिले हैं। नरहन के तृतीय काल का समय 600 ई0 पू0 से 200 ई0 पू0 के बीच है[29]। जनपद के अन्य क्षेत्रों में लौह अवशेषों की प्राचीनता लगभग 900–1000 ई0 पू0 तक जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि नरहन में ताम्र एवं लौह उपकरणों का प्रचलन कुछ दिन तक साथ–साथ रहा।

सरयूपार क्षेत्र में रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा (मानचित्र संख्या–3) आदि पुरास्थलों का सम्बन्ध लौहयुगीन, संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। ध्यातव्य है कि इन पुरास्थलों की पहचान विवादग्रस्त है।

कनिंघम महोदय, कौड़ीराम के निकट **देवकली** नामक स्थान से रामग्राम की पहचान करते हैं। कार्लायल बस्ती जिले के मुंडेरवा थानान्तर्गत **रामपुर** नामक स्थान से रामग्राम की पहचान करते हैं। प्रो0 शिवाजी सिंह महराजगंज जनपद के **मनियारभार** से रामग्राम की पहचान करते हैं। इधर कुछ नेपाली विद्वान् इसे नेपाल के अन्दर ही खोज रहे हैं। दिशा, दूरी, चीनी यात्रियों (फाह्यान एवं ह्वेनसांग) के यात्रा–वृत्तांत तथा बौद्धग्रन्थों में उल्लिखित भौगोलिक स्थिति के आधार पर श्री कृष्णानंद त्रिपाठी एवं श्री विजय कुमार (पुलिस अधीक्षक महराजगंज) ने महराजगंज के उत्तर, चौक से पश्चिम लगभग 4 कि0 मी0 दूर नाथनगर गांव के समीप, जंगल में 35 फीट ऊँचे स्तूपाकार सरंचना को रामग्राम का स्तूप होना मानते हैं। यहाँ से 1 कि0मी0 की दूरी पर नगर की बस्ती का अवशेष इन्हें मिला है, जो जंगल झाड़ियों के कारण स्पष्ट दिखायी नहीं देता है। यहाँ पर छोटे बड़े सात स्तूपाकार टीले व इतनी ही पुस्करणियाँ (पोखरे) विद्यमान हैं, जो भूरे बलुआ पत्थर से निर्मित हैं। यहाँ खास बात यह है कि गुप्तकालीन विष्णु की दशावतार मूर्ति भी प्राप्त हो चुकी है। इसके अतिरिक्त मलवे में बुद्धकालीन ईंटे बिखरी पड़ी हैं। ऐसी ईंटोंका ढेर कमोवेश सभी टीलों पर है।ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धकाल में यहाँ कोई बड़ी बस्ती रही होगी। इन सबके कारण इसे रामग्राम होने की सम्भावना बलवती होती है। अभिलेखों के मुताबिक तथागत के निर्वाण प्राप्ति के उपरान्त अस्थि–अवशेष के लिए उनके अनुयायियों में विवाद हुआ, जिस पर कोलियों ने अपनी राजधानी रामग्राम में बड़ी धूमधाम के साथ विशाल स्तूप का निर्माण करवाया। कालान्तर में देवदह व रामग्राम में अनेक स्तूप बने।

देवदह की पहचान अधिकांश विद्वान् **बनरसिहा कला** से करते हैं। यहाँ पर भारतीय पुरातत्त्व विभाग (पटना सर्किल) के श्री लाल चन्द्र सिंह द्वारा उत्खनन कार्य किया गया है, लेकिन कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिल सका। वर्तमान समय में श्री कृष्णानंद त्रिपाठी एवं श्री विजय कुमार (पुलिस अधीक्षक महराजगंज) का इस खोज की दिशा में प्रयास चल रहा है। कृष्णानंद त्रिपाठी का मानना हैं कि नौतनवां के निकट लोधसी (जहाँ पर बुद्धकालीन अवशेष मिल रहे हैं) में एक बड़ा टीला है। इसके अतिरिक्त **सोनपिपरी**, जो रोहिनी नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है, बहुत ऊँचा टीला है। यहाँ पर श्री त्रिपाठी को 1973 में गेनवरिया के प्रथम काल के पात्रों के समान पात्र भी मिले थे। इन्हीं आधारों पर इन दोनों टीलों में से किसी एक का सम्बन्ध देवदह से होना चाहिए, जो लुम्बिनी के मार्ग पर स्थित है और लुम्बिनी के निकट भी है।

पिकलीकानन की पहचान के सम्बन्ध में अंतिम रूप से कुछ कहना कठिन है, क्योंकि इस पुरास्थल के पहचान से सम्बद्ध विविध विचार मात्र सम्भावनाओं पर आधारित हैं। इन सम्भावनाओं में कितना बल है, इसका निर्धारण भावी अनुसंधानों एवं उत्खननों के द्वारा ही सम्भव हैं। कुछ विद्वान् पिकलीकानन की पहचान गोरखपुर के झगहां थाना के निकट **राजधानी** नामक स्थल से कर रहे हैं। गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानंद त्रिपाठी महराजगंज जनपद में **निचलौल–मोरवन–बसवार** के टीले से पिकलीकानन की पहचान कर रहे हैं। यह स्थल महराजगंज जनपद में अवस्थित मिठौरा से 2 कि0मी0 पश्चिम दिशा में है। श्री त्रिपाठी इसी स्थल को चन्द्रगुप्त मौर्य का पैतृक स्थल मानते हैं।

कुशीनारा एवं पावा की पहचान वर्तमान समय में हो चुकी है। प्रारम्भ में इन दोनों पुरास्थलों का तादात्म्य विवादग्रस्त था। कुशीनारा एवं पावा प्राचीन काल में मल्लों की राजधानी के रूप में विख्यात थे। महाभारत में मल्ल[30] तथा दक्षिण मल्ल[31] का पृथक्–पृथक् उल्लेख किया गया है।

रिज डेविड्स ने कुशीनारा का तादात्म्स शाक्य भूमि के पूर्व तथा वज्जियों के उत्तर के भू–भाग से स्थापित किया था। स्मिथ ने किसी समय इसे नेपाल में स्थित माना था। किन्तु अब इसका तादात्म्य निर्विवादतः देवरिया से लगभग 34 कि0 मी0 उत्तर, कसया और विशेषकर उसके निकट स्थित अनुरूधवा गाँव के टीले से किया जाता है। यहाँ से एक ताम्रपत्र भी मिला है, जिस पर *'परिनिर्वाण चैत्य ताम्र पट इति'* लेख उत्कीर्ण है। यहाँ से प्राप्त कुछ मुद्राओं पर *'श्री महापरिनिर्वाण बिहारे भिक्षुसंघस्य'* लेख भी मिलता है। फाह्यान ने कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बतलाया है[32]।

मल्लों की दूसरी राजधानी पावा का तादात्म्य कसया से लगभग 19 कि0मी0 उत्तर–पूर्व स्थित देवरिया जिले (वर्तमान कुशीनगर जनपद) के पडरौना से किया गया है। कुछ विद्वानों ने बिहार शरीफ के निकट स्थित पावापुरी को 'पावा' बताया है। गोरखपुर विश्वविद्यालय में प्राचीन इतिहास एवं पुरातत्व विभाग के पंडित कृष्णानंद त्रिपाठी का दावा है कि पिछले पन्द्रह वर्षों के सर्वेक्षण और अध्ययन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि 'पावा' किसी एक टीले में नहीं, बल्कि सठियांव (फाजिलनगर) के चतुर्दिक प्राचीन टीलों में इसकी विभिन्न बस्तियाँ हैं। इसके समर्थन में वे विभिन्न साक्ष्य भी पेश करते हैं, और उनका कहना है कि इन टीलो में विस्तृत उत्खनन तथा उनका अध्ययन किये जाने की जरूरत है।

पावा की ऐतिहासिक महत्ता, बुद्ध और महावीर स्वामी के साथ उसका नाम जुड़े होने की वजह से है। ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश का सरयूपार क्षेत्र, प्राचीन समय से भारत का महत्त्वपूर्ण अंग रहा है। विश्व के प्राचीनतम गणराज्यों के केन्द्र कपिलवस्तु, रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कुशीनारा और पावा इसी क्षेत्र में स्थित थे।

पावा मल्ल गणराज्य का प्रमुख केन्द्र था, जहाँ बुद्ध ने अंतिम पिण्डपात ग्रहण किया, जो उनके परिनिर्वाण का कारण बना। बुद्ध ने ही इसे बौद्ध तीर्थ घोषित कर दिया था। 24 वें तीर्थकर महावीर स्वामी जम्भिग्राम में ज्ञान प्राप्ति के बाद सीधे पावा पहुँचे और वहाँ यज्ञरत् इन्द्रभूति प्रभृति कई ब्राह्मण, शास्त्रार्थ से प्रभावित होकर जैनधर्म में दीक्षित हो गए थे। महावीर स्वामी ने प्रथम उपदेश पावा में ही दिया। उन्होंने अपने संघटन को ग्यारह समूहों में विभक्त कर इन ग्यारह ब्राहमणों को ही गणधर नियुक्त किया। इस तरह जैन धर्म का प्राथमिक संघ या संघटन पावा में ही अस्तित्व में आया था। पावा की सर्वाधिक ख्याति महावीर स्वामी के कारण ही हुयी। कल्पसूत्र के अनुसार महावीर स्वामी का निर्वाण कार्तिक अमावस्या की रात्रि में मध्यमा पावा में हुआ था।

बुद्ध एवं महावीर के कारण पावापुरी अत्यन्त पावनपुरी थी, जहाँ एक साथ वैदिक मंत्रों के साथ ही महावीर एवं बुद्ध के उपदेश भी चल रहे थे। यहाँ श्रमण एवं वैदिक परम्परा एक साथ दिखायी देती है। वह पावा आज कहाँ है? श्री कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार तेरहवीं सदी में मुस्लिम आक्रमण के भय से पावानगर से पलायित जैनियों ने बिहार शरीफ के निकट पावापुरी की स्थापना कर डाली। 1203 ई0 से पहले यहाँ ऐसा कोई अवशेष नहीं है। श्री त्रिपाठी का कहना है कि उस समय के मदनकीर्ति ने अपने लेख में उस समय के 26 जैन तीर्थो का वर्णन करते हुए पावापुरी एवं वहां की कुछ मूर्तियों का उल्लेख किया। इस लेख ने ही महावीर की निर्वाण स्थली के बारे में भ्रांति को जन्म दिया।

कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार, मगध के निकट पावा होने का प्रश्न ही नहीं है। वृद्ध एवं रोगी बुद्ध एक ही दिन मे बिहार शरीफ़ के निकट स्थित पावा से कुशीनारा कैसे पहुँचे? अतिसार रोग से पीड़ित बुद्ध के लिए यह सम्भव नहीं था। बुद्ध को पावा एवं कुशीनगर के मध्य मात्र दो नदियाँ मिली थीं, जबकि बिहारशरीफ और कुशीनारा के मध्य अनेक नदियाँ हैं। अतः बिहार शरीफ के निकट का पावापुरी श्रद्धालुओं का पावापुरी है, प्राचीन पावा नहीं है।

पिछली शताब्दी के अंतिम दशक में, जनरल कनिंघम ने पडरौना को पावा घोषित किया था और कई विद्वानों ने इस मत का समर्थन भी किया। लेकिन कनिंघम के सहयोगी ए0 सी0 एल0 कार्लायल ने दिशा एवं दूरी के आधार पर कनिंघम के मत का खण्डन करते हुए, सठियांव (फाजिलनगर) टीले को पावा के रूप में स्वीकार किया। कार्लायल का तर्क था कि सठियांव वैशाली मार्ग पर स्थित है, जबकि पडरौना की दिशा विपरीत हैं। सठिगांव को चैत्यग्राम का श्रेष्ठिग्राम माना जाता था।

1980–81 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से फाजिलनगर में उत्खनन कार्य हुआ। उत्खनन कार्य, फाजिलनगर और सठियावं उत्खनन के निदेशक प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी और सहनिदेशक दयाराम त्रिपाठी की देखरेख में किया गया। कार्लायल जहाँ स्तूप होने का दावा करते थे, वहाँ गुप्तकालीन अग्रहार बस्ती का अवशेष प्रकाश में आया। यहाँ से दो मुहरें मिली हैं, जिनमें से एक पर *'श्रेष्ठिग्राम ग्रहारस्य'* तथा दूसरी पर ब्रह्मा की आकृति के साथ *'ग्रेषूदक चातुर्विद'* लेख अंकित था, जिससे साफ हुआ कि सठियाँव, श्रेष्ठिग्राम था और फाजिलनगर उसका अग्रहार स्थल।

इसके बाद अनेक विद्वानों ने कहना शुरू किया कि सठियाँव और फाजिलनगर में पावा के प्रमाण नहीं हैं। ऐसी स्थिति में प्रश्न उठता है कि पावा कहाँ है? प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी, सठियांव को ही पावा मानते रहे हैं, पर जब स्तूप नहीं मिला तो उन्होंने और उनके समर्थकों ने मौन साध लिया। प्रो0 चतुर्वेदी के ही सहयोगी पंडित कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार 'पावा' इसी क्षेत्र में है, और उन्होंने पावा के स्तूप की खोज धारमठिया के निकट 'गगेलवा' नामक स्थान पर की है। कई जोड़ी द्वार तथा एक जीर्ण विशाल स्तूप भी खोज में मिला है। पंडित त्रिपाठी का मानना है कि पावा का धार्मिक केन्द्र धारमठिया का टीला है। यही बुद्ध का 'पावा' है। इस टीले के चतुर्दिक पंडित त्रिपाठी ने अपने सर्वेक्षण में सपही से अष्टभुजी विश्व रूप विष्णु की विशाल प्रतिमा की पहचान की थी, जिनके सौम्य मुख के दोनों तरफ बाराह एवं सिंह की मुखाकृति और साथ ही मत्स्य की भी आकृति है। लक्ष्मी के साथ सरस्वती की जगह शंख, पुरूष आदि का अंकन हैं। इसी तरह की 2 ½ मी0 ऊँची एक अन्य विश्वरूप की प्रतिमा, जो पालयुगीन काले पत्थर की है, शिवसरया ग्राम में स्थित है। शिवसरया इस स्थल से कुछ दूर अवश्य है, पर उस प्रतिमा का सम्बन्ध इस स्थल और इस प्रतिमा से है। इसमें मत्स्य का अंकन नहीं है, पर सौम्य रूप के दोनों तरफ सिंह एवं वाराह का अंकन हैं। दायें लक्ष्मी, बाएं सरस्वती तथा अन्य देवी देवताओं का अंकन है। धारमठिया के निकट उजारनाथ टीलेसे पार्वती के दो पुत्रों के साथ गणेश की नृत्य-मुद्रा में प्रतिमाएं पड़ी हैं। इनमें से एक अष्टभुजी है, दूसरी सोलहभुजी। इस धार्मिक स्थल के चतुर्दिक टीलों पर गुप्तोत्तर काल एवं पूर्व मध्यकाल की कई सूर्य प्रतिमाएं, तुरपट्टी, छहूँ, देवलवृत्त तथा धारमठिया आदि से प्राप्त हुयी हैं। अतः धारमठिया पावा का धार्मिक उपनगर था।

पंडित कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार पावा के राजनीतिक केन्द्र के अवशेष के उसमानपुर (बीरभारी), खुशियाल टोला आदि टीलों में छिपे हैं। यहाँ के विशाल टीलों के चतुर्दिक खाई, प्राचीन दीवारें, कूएं तथा सड़क के अवशेष दिखायी दिये हैं। श्री त्रिपाठी के सहायक, डाक्टर श्यामसुन्दर सिंह को उसमानपुर

(वीरभारी) टीले से मूर्तियाँ, सिक्के तथा मृण्मुद्राएं मिली हैं। ये पुरावशेष इंगित करते हैं कि पावा की राजधानी इन्हीं टीलों में छिपी है, और जब तक इनका वैज्ञानिक ढंग से उत्खनन नहीं हो जाता, तब तक इतने में ही संतोष करना पड़ेगा।

पंडित त्रिपाठी के अनुसार महावीर स्वामी का निर्वाण–स्थल सठियांव ही है, क्योंकि यह धारमठिया एवं उसमानपुर के मध्य में है। यही मध्यमा पावा है। महावीर स्वामी का निर्वाण यहीं हुआ था। पावा के श्रेष्ठियों की बस्ती ही मध्यमा पावा थी। आज भी यहाँ अधिकांशतः श्रेष्ठी जैनी हैं। कृष्णानंद त्रिपाठी के अनुसार अभी तक प्रायः सभी विद्वान् पावा को किसी एक टीले में खोजते रहे हैं, जबकि पावा की विभिन्न बस्तियाँ, सठियाँव (फाजिलनगर) के चतुर्दिक प्राचीन टीलों में छिपी हैं। मरचहियाडीह, नदवाविशुनपुर, धारमठिया, उसमानपुर तथा घोड़घटप के मध्य महावीर स्वामी की निर्वाण स्थली, 'मध्यमा पावा' सठियाँव के टीले में छिपी है। पावानगर की राजधानी उसमानपुर टीले में है। श्रेष्ठिग्राम के साथ सठियांव को कार्लायल ने खुद समीकृत किया था। पड़रौना की खुदायी हो चुकी है। वहाँ पावा से सम्बन्धित कुछ नहीं है, मात्र कुछ जैन प्रतिमाओं के अतिरिक्त। चन्द्रकेतु ने मल्ल गणराज्य की स्थापना की थी। फाजिलनगर क्षेत्र में आज भी मल्लूडीह, चन्द्रौटा जैसे आधुनिक ग्राम, पुराने नामों को संजोए हुए हैं। अतः सठियाँव क्षेत्र ही पावा है। बौद्धग्रन्थों के अनुसार कुशीनारा से पावा के बीच 18 किलोमीटर की दूरी है। सठियाँव के टीलों से कुशीनगर की दूरी भी लगभग यही है। पंडित त्रिपाठी के अनुसार पडरौना को बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद पदद्रोण ने बसाया था।

पंडित त्रिपाठी के अनुसार कुछ पुराविद्, जो अपने को पावा से जोड़ना चाहते हैं, मनगढंत ढंग से वीरभारी टीले को पावा कह रहे हैं, जबकि ये दोनों पृथक् हैं। वाणिज्य–ग्राम की स्थिति बिहार के अन्तर्गत थी। अतः इस तरह का तर्क असंगत है।

कपिलवस्तु की पहचान के विषय में विद्वान् प्रारम्भ में एकमत नहीं थे। लेकिन वर्तमान समय में इसकी पहचान हो चुकी है। कपिलवस्तु शाक्यों की राजधानी थी। शाक्य नेपाल की सीमा पर हिमालय की तलहटी में आवासित थे। इनके पूर्व में रोहिणी तथा पश्चिम–दक्षिण में राप्ती नदी प्रवाहित थी। इस प्रकार इनका कीड़ाक्षेत्र राप्ती एवं रोहिणी की उपत्यका में प्रसरित था। शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु (वर्तमान कपिलवस्तु) गौतम बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी से लगभग 13 कि0 मी0 दूर रोहिणी तट पर स्थिति थी। महाभारत के वनपर्व में कपिलावट नामक तीर्थ का उल्लेख मिलता है[33]। हेमचन्द्र राय चौधरी इस कपिलावट का तादात्म्य पालिग्रन्थों के कपिलवस्तु से करते हैं। स्मिथ कपिलवस्तु को वर्तमान बस्ती जिले के **पिपरहवा** से, पर रिज डेविड्स, मुकर्जी, राहुल सांकृत्यायन, भरत सिंह उपाध्याय, बी0 सी0 लॉ प्रभृति विद्वान् इसे

पिपरहवा से लगभग 16 कि0मी0 उत्तर-पश्चिम स्थित **तिलौराकोट** के भग्नावशेषों से समीकृत करते हैं। स्मिथ ने मुकर्जी से सहमति व्यक्त करते हुए एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की। इस व्याख्या के अनुसार स्मिथ ने दो कपिलवस्तु के अस्तित्व को स्वीकार किया। पिपरहवा, फाह्यान का कपिलवस्तु है, जबकि तिलौराकोट ह्वेनसॉग का। इस घोषणा से कपिलवस्तु के पहचान की समस्या और जटिल हो गयी। कपिलवस्तु के तादात्म्य के सम्बन्ध में रिज डेविड्स ने एक नया समाधान प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार तिलौराकोट प्राचीन कपिलवस्तु है तथा पिपरहवा नवीन कपिलवस्तु है (पेप्पे द्वारा पिपरहवा अन्वेषण के आधार पर)। उनका कथन है कि नये कपिलवस्तु का निर्माण विड्डूभ द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु के नष्ट किये जाने के बाद किया गया[34]।

कपिलवस्तु के निवासियों को शाक्य क्यों कहा गया? इसके उत्तर में कुछ विद्वानों का तर्क है कि चूँकि ये शाकवन के निकट थे, इसलिए इन्हें शाक्य कहा गया। कपिल आश्रम के निकट होने के कारण ही शाक्य नगरी कपिलवस्तु के नाम से प्रसिद्ध हुयी थी। अश्वघोष ने सौंदरनन्द में इसका वर्णन किया है[35]।

बौद्ध ग्रन्थों में शाक्य जनपद को अति विस्तृत बताया गया है। इसके अनुसार इसमें कुल 80,000 कुल या परिवार थे। कपिलवस्तु के साथ-साथ चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, मेदुलुम्प या उलुम्प, देवदह तथा सक्कर आदि नगर एवं निगम भी शाक्यों के प्रदेश में स्थित थे। शाक्यों की शासन-प्रणाली अत्यंत प्रशंसनीय थी। इनकी एक परिषद थी, जिसमें आवश्यक विषयों पर विमर्श किया जाताा था। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि शाक्य कोशल के अधीन थे। महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् बिम्बिसार से मिलने पर अपना परिचय देते हुए बुद्ध ने कहा था, "मै जन्म से शाक्य हूँ (साकिया नाम जातिया) किन्तु निवासी कोशल का हूँ (कोसलेषु निकेततिव)।" शाक्य अपने देश को कोशल का 'आज्ञा प्रवृत्ति स्थान' मानते थे, जिसका अर्थ ऐसा प्रदेश है, जहाँ कोशल शासकों की आज्ञायें जारी की जायँ।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (600 ई0 से 200 ई0 तक)

गोरखपुर परिक्षेत्र में 600 ई0 पू0 से कुछ पहले से लेकर 200 ई0 तक (कुषाणकाल तक) बौद्ध कालीन नगरों के अवशेष यत्र-तत्र दिखायी देते हैं (मानचित्र सं0-4)। इसी अवधि में कुषाण कालीन ठप्पेदार, टोंटीदार, सुराहीनुमा बर्तनों (लालरंग) का प्रचलन शुरू हो जाता है और यह क्रम आगे भी कुछ दिनों तक चलता रहा। इस काल में गोरखपुर परिक्षेत्र में अनेक बौद्ध-स्थल थे, जहॉ बौद्ध-विहारों, चैत्यों, स्तूपों तथा सभा-भवनों का निर्माण, कुषाणकाल तक चलता रहा। रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा तथा ऐसे ही अनेक स्थलों पर बौद्धों के निवास करने के कारण बौद्ध-विहारों का निर्माण होता रहा। इस

समय बुद्ध एवं अन्य देवी–देवताओं तथा लोक कलाओं से सम्बन्धित मूर्तियों एवं खिलौनों का निर्माण भी हो रहा था।

'सोहगौरा संस्कृति' गोरखपुर परिक्षेत्र में सॉस्कृतिक अनुक्रम का आधार प्रस्तुत करती है। क्योंकि पूरे परिक्षेत्र में एक मात्र यह पुरास्थल है, जहाँ से नवपाषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक की संस्कृतियों के क्रमिक अवशेष उपलब्ध हुए हैं। इस पृष्ठाधार में यह उल्लेखनीय है कि **यहाँ के चतुर्थ काल** से प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के अवशेषों के प्रमाण मिलने लगते हैं। यहाँ एन0 बी0 पी0 की तिथि 240±90, 590±110 ई0पू0 है[36]।

नरहन के तृतीय[37] एवं चतुर्थ[38] काल का सम्बन्ध क्रमशः 600 ई0पू0 से 200 ई0पू0 तथा 200 ई0पू0 से 300 ई0 तक है। नरहन का चतुर्थ काल, प्रारम्भिक ऐतिहासिक तथा ऐतिहासिक संस्कृतियों का मिश्रण है, क्योंकि यहाँ 300 ई0 तक के पुरावशेष मिलते हैं। यहाँ के तृतीय काल के पात्रों में लाल, भूरे (पतले आकार) कृष्णलेपित तथा एन0 बी0 पी0 के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं। इस काल में कार्डेड वेअर के भी टुकड़े प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार के टुकड़े नवपाषाण कालीन स्तरों से प्राप्त होते हैं।

इस काल से कच्ची ईंटों के प्रयोग के साक्ष्य मिले हैं। इसके अतिरिक्त नरकट की छाप युक्त जली मिट्टी के खण्ड भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ से एक जार भी उपलब्ध हुआ है। इसी के साथ तॉबे की एक थाली भी मिली है। इस काल में लोहे और ताँबे के उपकरण भी मिले हैं। मनके, चूड़ियाँ, मिट्टी की बैलगाड़ी तथा ताम्र का एक कास्ट सिक्का, जो वर्गाकार है, भी मिला है। अनाज के दाने भी उपलब्ध हुए हैं, जिनमें चावल, (Oryza-Sative) गेहूँ तथा जौ आदि मुख्य हैं।[38ए]

धुरियापार के द्वितीय काल का आरम्भ 600 ई0पू0 से होता है, जो 200 ई0पू0 तक चलता रहता है। तीसरा काल 200 ई0पू0 से 500 ई0 तक चलता है। यद्यपि प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के अन्तर्गत 600 ई0पू0 से 200 ई0 तक का उल्लेख ही अभीष्ट है, फिर भी प्रसंगतः इसमें लगभग तीन शताब्दियों के उस अतिरिक्त समयावधि को भी संदर्भित किया गया है, जिसे ऐतिहासिक युग(200 ई0 से 600 ई0) के अंतर्गत होना चाहिए।

धुरियापार के द्वितीय काल की पहचान एन0बी0पी0 पात्र परम्परा से होती है, जो कि इस काल की प्रमुख मृद्भाण्ड परम्परा रही है[39]। यहाँ के द्वितीय एवं तृतीय काल से रेड वेअर के पात्र भी मिले हैं (रेखांचित्र संख्या–28)

धुरियापार के तृतीय काल (200 ई0पू0 से 500 ई0) से मुख्यतः लाल रंग के पात्र, जिनमें बेसिन (तसले) तथा कलश के अतिरिक्त कुषाण एवं गुप्त काल के भी कुछ अन्य पात्र-प्रकार उपलब्ध हुए हैं।

इमलीडीह के तृतीय काल का सम्बन्ध कुछ सीमा तक प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से जोड़ा जा सकता है, क्योंकि यहाँ तृतीय काल की समयावधि 800 ई0पू0 से 400 ई0पू0 के बीच है[40]। तृतीय काल की प्रारम्भिक सीमा गोरखपुर परिक्षेत्र में लौहयुग की संस्कृति से सम्बन्धित है।

वर्तमान समय में यहाँ टीले का कुछ भाग कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के कारण बहुत हद तक क्षत विक्षत हो चुका है। इस काल की सर्वप्रमुख विशेषता ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर की अनुपस्थिति और रेड–वेअर की प्रमुखता हैं। इस काल में प्रथम एवं द्वितीय काल की अपेक्षा ब्लैक-स्लिप्ड वेअर में क्रमशः बढ़ोत्तरी हुयी है। अन्य पात्रावशेषों में ग्रे–वेअर के कुछ ठीकरे भी इस काल से उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त एन0बी0पी0 का एकमात्र ठीकरा भी उपलब्ध हुआ है। इस काल में जो सांस्कृतिक अवशेष मिले हैं, उनके आधार पर इस काल की तुलना 'नरहन संस्कृति' के द्वितीय काल से की जा सकती है[41]।

जनपद के **गोपालपुर** नामक स्थल का सम्बन्ध प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से जोड़ा जा सकता है। यह प्राचीन स्थल गोरखपुर-सिकरीगंज-बडहलगंज राजमार्ग पर (घाघरा नदी के वाम तट पर) 60 कि0मी0 दक्षिण स्थित है। यहाँ से ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर तथा लाल रंग के मृद्भाण्डों के अवशेष धरातलीय सर्वेक्षण में उपलब्ध हुए हैं[42]। यहाँ से गुप्त कालीन रजत मुद्राओं की एक निधि भी प्राप्त हुयी है, जिसमें 16 गुप्तकालीन सिक्के हैं। इस स्थल की पहचान महाभारत में उल्लिखित गोपालक राष्ट्र से की गयी है। चूँकि यहाँ से एन0 बी0 पी0 के अवशेष भी मिले हैं, इसलिए इस स्थल का समबन्ध एन0 बी0 पी0 काल से भी जोड़ा जा सकता है। यहाँ अनेक टीले हैं, जो वर्तमान समय मे क्षत–विक्षत हो चुके हैं। वर्तमान समय में यहाँ कृषि–कार्य हो रहा है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर बड़हलगंज से 4 कि0 मी0 पश्चिम, गोला मार्ग पर सड़क से लगभग 3 कि0 मी0 दक्षिण सरयू नदी के बाँए तट पर **मकन्दवार** नामक प्राचीन स्थल अवस्थित हैं। इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के श्री के0 एन0 त्रिपाठी एवं टी0 एन0 दूबे के द्वारा किया गया[43]। यहाँ से भूरे रंग के पात्र, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, एवं लाल रंग के मृद्भाण्डों के ठीकरे प्राप्त हुए हैं। कुषाण एवं गुप्तकालीन अवशेष भी यहाँ से मिले हैं। यहाँ पर प्राचीन ईटों के ढेर भी दिखायी देते हैं। इस स्थल से एम्फोरा नामक पात्र भी श्री दूबे को मिला था। सम्भवतः इसका

उपयोग जल या सुरा रखने के लिए किया जाता रहा होगा। यहाँ से कुषाण कालीन सिक्के भी मिले हैं। यहाँ रिंगवेल (Ring -Well) भी दिखायी पड़ा था, किन्तु वर्तमान समय में दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 23 कि0मी0 दक्षिण, गोरखपुर–खजनी–गोला मार्ग पर भैंसा बाजार से 2 कि0मी0 उत्तर–पूर्व में **बदरा तिवारी** नामक पुरास्थल है। टीला ग्राम से पश्चिम दिशा में सामान्य धरातल से लगभग 1.5 मी0 ऊँचा है। यहाँ से ब्लैक–स्लिप्ड, एन0बी0 पी0 तथा रेड–वेअर के मृद्‌भाण्डों के ठीकरे प्राप्त हुए हैं। यहाँ खण्डित ईटों के टुकड़े यत्र–तत्र बिखरे हुए मिले हैं, लेकिन इन ईटों से निर्मित किसी भवन के साक्ष्य नहीं मिले। टीले पर वर्तमान समय में कृषि–कार्य हो रहा है।

बढ़यापार, जनपद मुख्यालय से 30 कि0मी0 दक्षिण सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर स्थित है। यहाँ टीले पर नयी आबादी बस गयी है। टीला समतल हो चुका है। इस स्थल से प्राचीन मृद्‌भाण्डों के खण्डित भाग उपलब्ध हुए हैं[44], जिनमें ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा एन0 बी0पी0 वेअर के अवशेष विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ से गुप्त कालीन एवं मध्यकालीन पशु एवं मनुष्य की मृण्मूर्तियों के खण्डित अवशेष प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार इस पुरास्थल से प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर मध्ययुग तक के पात्रावशेष प्राप्त हुए हैं।

कोठा (निकट गगहा) ग्राम, गोरखपुर–कौड़ीराम–गजपुर मार्ग पर गजपुर से लगभग 3 कि0 मी0 दक्षिण, राप्ती के पश्चिम तट पर स्थित है। टीला ग्राम के उत्तर में है, जो लगभग 1.5 कि0मी0 में विस्तृत है। टीले की सामान्य धरातल से ऊँचाई लगभग 5 मीटर है। टीला उत्तर–दक्षिण दिशा में विस्तृत है। टीले पर आधुनिक मंदिर एवं मस्जिद है। स्थानीय लोगों को बरसात के दिनों में अथवा खेतों की जुताई के समय, यहाँ से मृण्मूर्तियों के अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के पुरावशेष मिलते हैं। टीले पर कई छोटे–छोटे प्राचीन कूप हैं। यहाँ नाँद के छोटे–छोटे अवशेष देखने को मिलते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ये नाँद शराब बनाने की भठ्ठियों के रूप में प्रयोग किए जाते रहे होंगे। यहाँ से बुद्ध की एक मूर्ति भी मिली थी, लेकिन वर्तमान समय में यह मूर्ति कहीं खों चुकी है। यहाँ के धरातलीय सर्वेक्षण में ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड वेअर एवं ग्रे वेअर के पात्र विशेष रूप से मिले हैं। यहाँ से कृष्ण–लेपित मृद्‌भाण्ड का एक ऐसा टुकड़ा प्राप्त हुआ है, जिस पर काले रंग की समानान्तर रेखायें चित्रित थीं[45]।

सोनपिपरी नामक पुरास्थल, जनपद मुख्यालय से उत्तर, नौतनवाँ रेलवे स्टेशन से लगभग 5 कि0मी0 पूरब रोहिणी (रोहिन नदी) के तट पर अवस्थित है। बहुत सम्भव है कि नदी कभी टीले के समीप से ही बहती रही हो[46]। सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 8 मीटर है, जिसका ढाल पूरब दिशा की ओर है। धरातलीय सर्वेक्षण के दौरान यहाँ से ग्रे–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर तथा ग्रे–एण्ड–ब्लैक वेअर

(भूरे–काले रंग के लघ्वाकार पात्र) के प्रमाण यहाँ से मिले हैं। गेनवरिया टीले के प्राचीनतम स्तर से इस प्रकार के पात्र मिले हैं[47]।

गोरखपुर–देवरिया राजमार्ग पर मोतीराम अड्डा से दक्षिण दिशा में झगहा (थाना) से लगभग 7 कि0 मी0 दक्षिण–पूर्व में **उपधौलिया, गोरसेहरा** तथा **राजधानी** नामक तीनों पुरास्थल एक–दूसरे से लगे हुए हैं। इनसे समान दूरी पर टीले की लम्बी श्रृंखला दिखायी पड़ती है। कनिंघम ने इस टीले का अवलोकन किया था। उनके अनुसार इसकी लम्बाई–चौड़ाई लगभग 1600 फीट, एवं तीस फीट ऊँचा एक शंक्वाकार स्तूप का साक्ष्य विद्यमान हैं[48]। उन्होंने राजधानी के टीले का भी उल्लेख किया है, तथा उसकी .ऊँचाई 17 फीट बताया है। कनिंघम के अनुसार सम्भवतः उपधौलिया स्थित स्तूप को ही फाह्यान और ह्वेनसांग ने भस्म–स्तूप कहा था। उन्होंने राजधानी का समीकरण, मोरियों की राजधानी पिप्पलीवन से किया है। यह स्थल गोर्रा नदी के बाएँ किनारे पर स्थित है।

वर्तमान समय में कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के फलस्वरूप कनिंघम द्वारा उल्लिखित टीला समाप्त हो चुका है। सर्वेक्षण के दौरान लगा कि ये तीनों टीले अतीत में एक ही विशाल टीले के अंग रहे होंगे। यहाँ से काले-चित्रित मृद्भाण्ड, काले–लाल तथा एन0 बी0 पी0 के टुकड़ों के साथ–साथ कुषाण एवं गुप्त कालीन लाल रंग के पात्रों के अवशेष मिले।

गोरसेहरा ग्राम में टीले पर एक आधुनिक मंदिर है, जिसमें प्राचीन शिवलिंग (पूर्वमध्यकालीन), अर्द्धनारीश्वर शिव (पाल), तथा कार्तिकेय (पाल) की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। उपधौलिया ग्राम के दक्षिण, एक टीले पर झाड़ियों के मध्य एक प्राचीन शिवलिंग (पूर्व मध्यकाल) तथा ग्राम के बीच में कूप के निकट रावणानुग्रह (लगभग 9–10 वीं शताब्दी ई0) की मूर्ति के दर्शन हुए। राजधानी से प्राप्त कई मृण्मूर्तियाँ भी बौद्ध संग्रहालय में सुरक्षित हैं[49]।

सोहगौरा से लगभग 2 कि0मी0 दक्षिण–पूर्व, राप्ती के प्राचीन प्रवाह के निकट उसी तट पर (दायीं ओर) **गुरुम्ही** नामक स्थल स्थित है। इस ग्राम के पूरब लगभग 10 एकड़ के क्षेत्र में एक टीला है, जिसे ग्रामीणों ने कृषि–कार्य के निमित्त काटकर बराबर कर दिया है। फिर भी टीले का कुछ अंश आज भी धरातल से लगभग 1.5 मीटर ऊँचा है। स्थानीय लोगों के अनुसार इसका प्राचीन नाम गुरूमही है। यहाँ के धरातलीय सर्वेक्षण में एन0 बी0 पी0 के ठीकरों के साथ ही रेड एवं ग्रे–वेअर के टुकड़े प्राप्त हुए हैं। ग्रामीणों को यहाँ से लाल रंग का एक मृण्पात्र मिला है। सम्भवतः इसमें अनाज रक्खा जाता रहा होगा। उक्त पात्र कुषाण कालीन प्रतीत होता है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर स्थित गगहा से 3 कि0मी0 पश्चिम **देवकली** नामक स्थल है। यहाँ टीले के शीर्ष पर एक नवनिर्मित मंदिर हैं। मंदिर में अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ रखी गयी हैं। इनमें दो सूर्य (11वीं सदी), एक गणेश (पूर्व मध्य युगीन) तथा एक मातृ–शिशु की मूर्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसी टीले से एक अन्य पालयुगीन सूर्य–मूर्ति (छायाचित्र संख्या–3) प्राप्त हुयी थी, जो यहीं के ग्राम में एक नवनिर्मित मंदिर में स्थापित है। टीले के पार्श्व भाग में प्राचीन संरचनाओं के साक्ष्य दिखायी पड़ते हैं।

धरातल से लगभग 2 मीटर ऊँचा एक अन्य टीला भी यहाँ विद्यमान है, जो कि पहले वाले टीले के ठीक दक्षिण दिशा में है। यह लगभग 5 एकड़ में फैला हुआ है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, रेड–ग्रे तथा रेड–स्लिप्ड पात्रों के ठीकरे उपलब्ध हुए हैं।

कौड़ीराम से लगभग 8 कि0 मी0 दक्षिण, कौड़ीराम–गोला मार्ग पर एक अन्य **देवकली** ग्राम (निकट कौडीराम) है। यहाँ भी एक विशाल टीले का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, जिसका विस्तार लगभग 30 एकड है। सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 10 फीट है। इसके दक्षिण–पश्चिम में एक मंदिर हैं। इस मंदिर में पाल युगीन सूर्य की एक मूर्ति स्थापित की गयी है (छायाचित्र संख्या–4)। टीले पर एन0 बी0 पी0 के ठीकरे मिले हैं। मौर्य एवं कुषाण–युगीन पात्रों के ठीकरे भी यहाँ से उपलब्ध होते हैं। यहाँ तीन–चार रिंग–वेल के अवशेष विद्यमान हैं। टीले के उत्तरी पार्श्व पर **तियर** नामक ग्राम बसा हुआ है। तियर टीले पर मंदिर के पास प्राचीन काल का एक घड़ा रक्खा हुआ है (छायाचित्र संख्या–5)। इस टीले का प्रथम सर्वेक्षण गो0वि0वि0 के श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने किया है। यहाँ से उन्हें रिंग–वेल, एन0बी0पी0 के टुकड़े तथा कुषाण–युगीन बड़े–बड़े मटके उपलब्ध हुए हैं।

उपर्युक्त टीले के दक्षिण–पूर्व में एक और ऊँचा टीला है, जो देवकली नाम से प्रसिद्ध है। टीले के शीर्ष पर विशाल वट–वृक्ष हैं। वृक्ष के नीचे पूर्व मध्य युगीन सूर्य प्रतिमा स्थापित की गयी है। यहाँ पर मंदिरों के साक्ष्य भी दिखायी पड़ते हैं। इस टीले के धरातलीय सर्वेक्षण के दौरान ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (सादे एवं चित्रित) ब्लैक–स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 के अवशेष भी प्राप्त हुए। टीले के पश्चिम एक विशाल सरोवर है, जिसमें सीढ़ियों के चिन्ह देखे जा सकते हैं। इस स्थल को कनिंघम ने रामग्राम होने की सम्भावना व्यक्त की है[50] तथा यहाँ स्तूप होने का उल्लेख किया है। टीले के पूर्वी छोर पर एक ग्रामीण बस्ती है। यहाँ शाकद्वीपी ब्राह्मणों का निवास है, जिनका सम्बन्ध देईपार के शाकद्वीपी परिवारों से बताया गया है[51]।

इस ग्राम (देवकली) से सटे पूरब, सड़क के किनारे एक और टीला है, जिसकी सामान्य धरातल से ऊँचाई लगभग 3 मी0 है, और विस्तार लगभग एक एकड़ है। टीले पर वृक्ष उगे हुए हैं, तथा यहाँ ऐतिहासिक काल के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते हैं।

उपर्युक्त तीनों ही स्थल देवकली के नाम से जाने जाते हैं। यह पहले ही उल्लिखित है कि कनिंघम ने इसे रामग्राम होने की सम्भावना व्यक्त की थी। इसके अतिरिक्त गोरखपुर विश्वविद्यालय के पुराविदों ने भी निरीक्षण के दौरान इसे रामग्राम होने की सम्भावना की पुष्टि की थी। लेकिन ये सभी संकेत सम्भावनाओं पर आधारित हैं। इन सम्भावनाओं में कितना बल है, इसका निर्धारण भावी अनुसंधान ही कर सकेंगे।

आमी नदी के तट पर छः प्राचीन स्थल हैं, जिनमें से तीन; **इटार**, **गेनवरा**, तथा **कोठा** (निकट खजनी) नामक पुरास्थलों से एन0 बी0 पी0 वेअर एवं इससे पहले के पुरावशेष प्राप्त हुए हैं। इनमें से गेनवरा का उल्लेख पहले ही ताम्रपाषाणिक अनुक्रम के संदर्भ में हो चुका है। धरातलीय सर्वेक्षण में ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 के ठीकरे मिले हैं।

जनपद मुख्यालय से सहजनवाँ–बखिरा मार्ग पर घघसरा से तीन कि0 मी0 पूरब **इटार** नामक टीला है[52]। यह स्थल आमी नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। यहाँ धरातलीय सर्वेक्षण में ग्रे वेअर के साथ ही ब्लैक–स्लिप्ड वेअर एन0बी0पी0 एवं रेड–वेअर के ठीकरे भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ एक देवस्थान के विषय में किंवदन्ती है कि, यहीं से इटार वंश के पाण्डेय परिवारों का विस्तार हुआ। इस स्थल पर एक प्राचीन कूप का अवशेष भी है, जो नष्ट होने की स्थिति में है।

खजनी के निकट **कोठा** नामक एक ग्राम है। सरया और कोठा (तिवारी) के मध्य एक विशाल टीला है, जिसका विस्तार लगभग 50 एकड़ है। टीला कोठा ग्राम–सभा के अंतर्गत है। टीले पर प्राचीन पात्रों के ठीकरे बिखरे पड़े हैं। सर्वेक्षण के दौरान यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के टुकड़े प्राप्त हुए। यहीं से शंकर–पार्वती (पाल–युगीन) की एक प्रतिमा मिली थी, जिसे ग्राम के ही एक कूएँ के निकट रखा गया है। इस स्थल की पहचान सोहगौरा अभिलेख में वर्णित कोष्ठागार से किया गया है।

कुआनों नदी के तट पर कुल 14 पुरास्थल हैं, जिनमें इमलीडीह एवं धुरियापार का उल्लेख उत्खनित पुरास्थलों के विशेष संदर्भ में पहले ही किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में सांस्कृतिक अनुक्रम के सिलसिले में इनका उल्लेख कतिपय जगहों पर हुआ है। इन दोनों पुरास्थलों का सरयूपार क्षेत्र के

पुरातत्त्व के विशेष संदर्भ में बहुआयामी महत्त्व है। क्योंकि यहाँ पर विविध संस्कृतियों का क्रमिक जमाव दृष्टिगोचर होता है।

कुआनों के पूर्वी तट पर बलुआ से लगभग 1½ कि0मी0 दक्षिण **जद्दूपट्टी** नामक पुरास्थल है। यहाँ टीले की ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 2 मीटर है। टीले पर भवन–निर्माण हुआ है। इसके कुछ भाग पर कृषि–कार्य भी हो रहा है। धरातलीय सर्वेक्षण में यहाँ से एन0 बी0 पी0 पात्रों के अतिरिक्त रेड–वेअर के टुकडों के भी दर्शन होते हैं[53]।

जनपद मुख्यालय से लगभग 35 कि0 मी0 दक्षिण खजनी–उरूवा–गोला राजमार्ग पर, कुआनों के वाम तट पर **सिकरीगंज** नामक प्राचीन स्थल स्थित है। सिकरीगंज कस्बे के दक्षिण एक विशाल टीला है, जो लगभग 15 एकड़ में विस्तृत है। सम्पूर्ण टीला लगभग 3 मीटर ऊँचा है। टीले पर कृषि–कार्य हो रहा है, जिसके कारण टीला समतल हो रहा है। सर्वेक्षण के दौरान धरातल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, तथा रेड–वेअर, के टुकड़े मिले[54]। सर्वेक्षण के दौरान मुझे यहाँ से ताम्रपाषिणक एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के मृद्भाण्डों के ठीकरे उपलब्ध हुए हैं। (रेखाचित्र संख्या–25)

सिकरीगंज के प्राचीन टीले से लगभग 5 कि0मी0 दक्षिण, कुआनों के तट पर **झौवा** नामक ग्राम है। झौवा ग्राम से थोड़ी ही दूरी पर (लगभग दो फर्लांग) एक टीला है। इस टीले का उपयोग भी कृषि–कार्य के निमित्त हो रहा है। यहाँ से लेट ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरों के साथ ही एन0बी0पी0 के टुकड़े भी मिले हैं।

जनपद मुख्यालय से लगभग 38 कि0 मी0 दक्षिण गोरखपुर–सिकरीगंज मार्ग पर स्थित कुरी बाजार से 1 कि0 मी0 दक्षिण **असौजी** नामक ग्राम है। इस ग्राम के समीप ही एक छोटा टीला है। टीला लगभग समतल हो चुका है। यहाँ से प्राप्त धरातलीय अवशेषों में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा रेड वेअर[55] के टुकड़े प्राप्त हुए हैं।

दुघरा (Dughara) नामक प्राचीन स्थल, जनपद मुख्यालय से लगभग 42 कि0 मी0 दक्षिण, गोरखपुर–सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर स्थित उरूवा बाजार से लगभग 4 कि0मी0 दक्षिण, कुआनों के तट पर अवस्थित है। नदी के किनारे 4 मीटर ऊँचा एक टीला है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, एन0बी0पी0 एवं रेड वेअर के अवशेष प्रमुख रूप से मिले हैं[56]।

उरूवा–बाजार, गोरखपुर–सिकरीगंज–बड़हलगंज राजमार्ग पर लगभग 42 कि0मी0 दक्षिण दिशा में अवस्थित है। इस स्थल से कुआनों नदी की दूरी लगभग 7 कि0मी0 है। उरूवा बाजार से थोड़ी ही दूरी पर

एक छोटा टीला है। यहाँ के धरातलीय अवशेषों में एन0बी0पी0 तथा रेड वेअर के टुकड़े मिले हैं। धरातल से उपलब्ध इन अवशेषों का अत्यधिक क्षरण हो चुका है[57]। सर्वेक्षण के दौरान ग्रामीणों से पता चला है कि कुछ माह पहले टीले से बुद्ध की मूर्ति मिली थी। मूर्ति माँगने पर ग्रामीणों ने बताया कि इस तरह की मूर्ति घर में रखना, धार्मिक दृष्टि से उचित नहीं है, ऐसी यहाँ की परम्परा है। अतएव मूर्ति को पुनः टीले पर गाड़ दिया गया। उक्त स्थल पर बहुत छानबीन के बावजूद मूर्ति नहीं मिल सकी। वर्तमान समय में टीले पर बाँस की कोठ एव अन्य वृक्षों के अतिरिक्त झाड़ियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। टीले का कुछ अंश कृषि–कार्य के लिए भी उपयोग किया जा रहा है। टीले पर मुझे भी कुषाण–कालीन रेड वेअर के टुकड़े प्राप्त हुए (रेखाचित्र संख्या–29, नं0 4 एवं 5)।

कुरी बाजार गोरखपुर जनपद के दक्षिणी भाग में अवस्थित बाँसगाँव तहसील में है। इसकी स्थिति जनपद मुख्यालय से लगभग 55 कि0 मी0 दक्षिण–पश्चिम, घाघरा के प्राचीन प्रवाह के तट पर है। टीला कुरी बाजार गाँव से लगा हुआ है। लगभग 10 एकड़ के क्षेत्र में फैला यह टीला सामान्य धरातल से लगभग 5 मीटर ऊँचा है। पूरे टीले पर झाड़ियों के साथ खजूर के वृक्ष फैले हुए हैं। इस टीले पर खण्डित ईंटों के ढेर द्रष्टव्य हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यहाँ इष्टिका–निर्मित भवन अवश्य रहा होगा। यहाँ से प्राप्त ईंट का माप 26×20×5 सेमी0 है।

टीले के शिखर एवं पार्श्व में तीन मंदिर हैं। मंदिर में स्थापित मूर्तियाँ आधुनिक युग की हैं। टीले पर तीन कूप भी निर्मित किए गये हैं, जिनमें से एक कूप अत्यंत विशाल है। इसका व्यास 20 फीट है। यहाँ धरातल से विविध पात्र–परम्पराओं के टुकड़े उपलब्ध हुए हैं। इनमें रेड वेअर, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड, ग्रे वेअर, तथा एन0बी0पी0 के ठीकरे प्रमुख हैं। रेड–वेअर के जो के टुकड़े मिले हैं, वे जार के खण्डित अंश है। इस पर हाथ से आकार बनाकर आसञ्जन विधि से चित्रण अभिप्राय संजोया गया है[58]। टीले पर एक सिक्का भी मिला था जिस पर *'राम लक्ष्मन जानकी, जय बोलो हनुमान की'* लेख अंकित है।

जनपद के **महादेवाबाजार** पुरास्थल का सम्बन्ध कुषाण काल से स्थापित किया जा सकता है। यह स्थल गोरखपुर जनपद मुख्यालय से गोरखपुर–सिकरीगंज– बड़हलगंज मार्ग पर बढ़यापार के सन्निकट स्थित है। महादेवाबाजार गाँव के निकट एक छोटा टीला है। टीले से धरातलीय सर्वेक्षण में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा मध्यकालीन चमकीले मृद्भाण्डों (ग्लेज्ड वेअर) के टुकड़े प्राप्त हुए है[59]। पात्रों के साथ कुछ खण्डित एवं घिसी मृण्मूर्तियाँ एवं कुषाण–कालीन सिक्के भी प्राप्त हुए हैं। खण्डित एवं घिसी अवस्था में प्राप्त होने के कारण यहाँ से उपलब्ध मूर्तियों का विवरण प्रस्तुत कर पाना सम्भव नहीं है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 30 कि0मी0 दक्षिण गोरखपुर–सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर उसरैन नामक प्राचीन स्थल स्थित है। यहाँ सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 2 मीटर है। टीला दो भागों में विभक्त है। यहाँ के दक्षिणी भाग में भवन निर्मित हैं, तथा पूर्वी भाग में वृक्ष लगे हुए हैं। यहाँ प्राचीन ईंटों के ढेर यत्र–तत्र बिखरे हैं, लेकिन किसी भवन संरचना के प्रमाण नहीं दिखायी पड़ते हैं। यहाँ से ब्लैक–एण्ड रेड वेअर तथा रेड वेअर के ठीकरे उपलब्ध हैं[60]।

बनरसिहा के धरातलीय सर्वेक्षण में प्राचीन ईटों तथा मृद्भाण्डों के टुकड़े बिखरे हुए मिले हैं। यहाँ के अन्य अवशेषों में भूरे रंग के पात्रों के ठीकरे एवं भोजन बनाने वाले पात्रों के अतिरिक्त बेसिन (तसले) भी उपलब्ध हुए हैं। डॉ0 देवबाला मित्रा को यहाँ से कुषाण–कालीन कुछ सिक्के एवं मूर्तियाँ भी मिली थीं[61]। डॉ0 मित्रा को उपलब्ध सिक्कों एव मूर्तियों के आधार पर इस पुरास्थल का सम्बन्ध कुषाण–युग से जोड़ा जा सकता है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर कौड़ीराम से लगभग 5 कि0मी0 पूरब **गिरधरपुर–दुबवलिया** नामक ग्राम अवस्थित है। इस ग्राम के समीप ही एक टीला था, जो वर्तमान समय में कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के कारण बिल्कुल समतल हो चुका है। राप्ती नदी लगभग 4–5 दशक पूर्व यहाँ से प्रवाहित होती थी, जिसके प्रमाण स्वरूप इसका प्राचीन प्रवाह क्षेत्र आज भी यहाँ दृष्टिगोचर होता है। इसी ग्राम के श्री राजाराम यादव को टीले से लाल रंग का एक कूँड़ा प्राप्त हुआ था, जो वर्तमान समय में उन्हीं के घर में सुरक्षित है। कूँड़े की ऊँचाई लगभग 1.5 मीटर है। यह कूँडा, कुषाण–कालीन है, जिसका उपयोग अनाज रखने के निमित्त किया जाता रहा होगा। इस प्रकार उक्त लाल रंग के कूँड़े के आधार पर इस स्थल को कुषाण काल से जोड़ा जा सकता है।

जनपद के उत्तर–पश्चिम में राप्ती एवं रोहिणी के संगम पर **डोमिनगढ़** नामक प्राचीन स्थल स्थित है, जिसके नामकरण के विषय में विवाद है। कुछ विद्वानों ने तर्क दिया है कि यहाँ पर 'डोम' नामक जाति के निवास के कारण इसे डोमिनगढ़ की संज्ञा दी गयी। कनिंघम का भी विचार है कि ह्वेनसाँग ने जिन्हें डाकू स्वीकार किया है, वे इस जनपद में रहने वाले 'लुटरे डोम' थे। ये गोरखपुर परिक्षेत्र के प्राचीन बासिन्दे थे। इन डोमों के मुखिया को डोमकटार कहा जाता था, जैसे भरों के नेता को 'राजभर'। ध्यातव्य है कि जिस समय ह्वेनसाँग मोरियनगर से कुशीनगर की यात्रा कर रहा था, उस समय यहाँ साँड़, हाथी तथा खतरनाक डाकू रहते थे[62]। मि0 कुक (गोरखपुर जनपद के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट) ने योरप के जिप्सियों की तुलना गोरखपुर के डोमकटारों के साथ की है[63]।

डॉ0 राजबली पाण्डेय 'डोमकटारों' को क्षत्रिय राजवंश का मानते हैं[64]। डॉ0 पाण्डेय के अनुसार डोमकटार का अर्थ है, डोमों के लिए कटार या तलवार। उन्होंने अपनी मान्यता की पुष्टि के लिए तर्क दिया है कि गोरखपुर के आसपास घने जंगलों के कारण डोमों (एक आदिवासी जंगली जाति) का आतंक बढ़ गया था।

डॉ0 पाण्डेय के अनुसार डोमकटार विश्वसेन वंश के क्षत्रिय थे। लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि डोम कटारों को किस आधार पर क्षत्रिय स्वीकार किया जाय? दूसरी बात, यदि ये क्षत्रिय थे तो इस वंश का कोई क्षत्रिय राजा भी होना चाहिए। ध्यातव्य है कि डॉ0 पाण्डेय ने इन प्रश्नों का कोई समाधान नहीं किया है। अतएव इस मत को अंतिम रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता। 'डोमकटार' शब्द सम्भवतः इनकी जातिगत विशेषताओं को द्योतित करता है।

कनिंघम एवं कार्लायल ने भी डोमिनगढ़ का सर्वेक्षण किया था। इन लोगों ने डोमिनगढ की स्थिति तथा डोमकटार कौन थे? इस प्रश्न पर विचार किया है।

मि0 ए0 फ्यूहरर, डोमिनगढ़ के पुरावशेषों की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करते हैं। उनके अनुसार यहाँ का टीला बहुत ऊँचा था, जहाँ डोमकटार की एक रूलिंग ट्राइब शासन करती थी। फ्यूहरर ने डोमकटारों को एक जनजाति के रूप में स्वीकार किया है। यहाँ पर (डोमिनगढ़) पक्की ईटों से निर्मित पुराने डोमिनगढ का किला काफी बड़ा, मोटा एवं वर्गाकार था[65]।

फ्यूहरर ने लिखा है कि 1885 में बंगाल से नार्थ वेस्ट रेलवे के निर्माण के दौरान यहाँ पर एक भस्मावशेष उपलब्ध हुआ था। इसमें एक पतला स्वर्ण पत्र था, जिस पर यशोधरा एवं राहुल (गौतम बुद्ध की पत्नी एवं पुत्र) का अंकन था। वर्तमान समय में यह लखनऊ संग्रहालय में संग्रहीत है।

डोमिनगढ़ के सम्पूर्ण टीले पर लोगों ने अपना गृह बना लिया है। नदी तल से टीले की ऊँचाई लगभग 5.5 मीटर है। यहाँ यत्र–तत्र प्राचीन ईटों के टुकड़े दिखायी पड़ते हैं। टीले के मध्य सरोवर और सरोवर के चतुर्दिक खाई के चिन्ह आंशिक रूप से विद्यमान हैं।

डोमिनगढ़ में प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग तक के साक्ष्य द्रष्टव्य हैं। टीले के पूरब प्राचीन दीवारों में लगे ईटों का आकार फाजिलनगर के उत्खनन में प्राप्त गुप्त कालीन ईटों से समानता रखता है। यहाँ ईटों का आकार 44×24×4 सेमी0 है।

यहाँ से ब्लैक–एण्ड रेड वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के अतिरिक्त कुषाण एवं गुप्तकाल के मृद्भाण्डों के ठीकरे भी मिले हैं। इसके अतिरिक्त गोल ठप्पे एवं मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं।

अतएव उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में डोमिनगढ़ का सम्बन्ध प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर ऐतिहासिक युग एवं उसके बाद के युगों से भी जोड़ा जा सकता है।

ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (200 ई0 से 600 ई0 तक)

कुषाण युग के अन्त तथा गुप्तों के अभ्युदय के साथ, कुशीनगर तथा इसी के समान कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थलों को छोड़कर अन्य सभी बौद्ध स्थल धीरे–धीरे अपना अस्तित्व खोने लगे। गुप्तोत्तर काल के आते–आते बुद्ध की मूर्ति, दशवतार विष्णु की मूर्ति के साथ बनने लगी। बहुत से ऊँचे स्तूपों को सुरक्षित समझ कर उनके ऊपर देव–प्रतिमाएँ एवं शिवलिंग की स्थापनाएँ की गयी। इसी युग में अनेक स्थलों से विष्णु तथा सूर्य की बलुए–पत्थर की प्रतिमाएँ मिली हैं। साथ ही अनेक स्थलों (मानचित्र संख्या–5) पर शिवलिंग एवं शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेक मूर्तियों एवं बहुत से अन्य देवी–देवताओं की प्रतिमाओं का निर्माण गुप्तोत्तर काल में होने लगा था। इस प्रकार छठी शताब्दी ई0 के पूर्व जहाँ हमें गुप्त काल में मिट्टी की सुन्दर मूर्तियों एवं मथुरा कला से सम्बन्धित कुशीनगर में बुद्ध की लेटी प्रतिमा दिखायी देती है, वहीं इस परिक्षेत्र में कुमारगुप्त के द्वारा कहाँव में स्थापित एक सुन्दर व विशाल स्तम्भ लेख भी मिलता है। इसके चतुर्दिक जैन मूर्तियों का अंकन मिलता है। छठी शताब्दी ई0 में इस क्षेत्र में वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा अन्य लोक देवी, देवताओं की मूर्तियों की स्थापना ईंट से बने मंदिरों में हुयी, जो मध्यकाल तक आते आते बाह्य आक्रमणकारियों के आक्रमण के फलस्वरूप धीरे–धीरे नष्ट होकर खण्डहर में विलीन हो गयीं। इनमें से अधिकांश मूर्तियों की खोज गोरखपुर विश्वविद्यालय के पुराविद् एवं संग्रहालयाध्यक्ष श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने की है।

सोहगौरा संस्कृति, गोरखपुर परिक्षेत्र के लिए एक सांस्कृतिक आधार प्रस्तुत करती है, जिसकी चर्चा पहले ही हो चुकी है। इसी विशेष संदर्भ में **सोहगौरा संस्कृति के पंचम काल** का यहाँ उल्लेख करना सर्वथा यथेष्ट है। सोहगौरा के पंचम काल का सम्बन्ध कुषाण एवं गुप्त काल से जोड़ा गया है। इस काल से कुषाण एवं गुप्त काल के पात्रों के साथ–साथ अनेक मृण्मूर्तियाँ भी मिली हैं। यहाँ से दाँतेदार लोढ़े भी उपलब्ध हुए हैं।

गोरखपुर जनपद में स्थित नरहन का उत्खनन लगभग एक दशक पूर्व हो चुका है। पाँच सत्रों के इस उत्खनन में यहाँ पाँच सांस्कृतिक कालों के साक्ष्य मिल चुके हैं। इनमें चतुर्थ काल (200 ई0पू0 से 300 ई0) के अंत से लेकर पाँचवें काल (300 ई0 से 600 ई0) का सम्बन्ध ऐतिहासिक काल से जोड़ा जा सकता है। इस काल के भवन-संरचनाओं को ग्रामीणों ने नष्ट कर दिया है। इस काल की प्रमुख पात्र–परम्परा में

रेडवेअर उल्लेखनीय है। यहाँ से हस्तनिर्मित मातृदेवी की अनेक मृण्मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी हैं। यहाँ से लाल रंग का एक अनोखे किस्म का डिस आन स्टैण्ड प्राप्त हुआ है[66]। यह पात्र, द्वितीय टीले के पश्चिमी ढलान पर खोदी गयी, क्षत–विक्षत खंती से प्राप्त हुआ है। इस पात्र की तिथि के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। रेड–वेअर में हस्तनिर्मित तसले एवं संग्रह-पात्र (Storage Jars) भी उपलब्ध हुए हैं। चतुर्थ एवं पंचम काल के मृद्भाण्डों के सदृश्य मृद्भाण्ड इस परिक्षेत्र में शुंग, कुषाण एवं गुप्त काल से भी मिलते हैं।

जनपद का तीसरा उत्खनित पुरास्थल **धुरियापार** है, जिसके प्रथम एवं द्वितीय काल के पुरावशेषों की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। यहाँ का तीसरा काल 200 ई0पू0 से 500 ई0 तक चलता है। इसमें रेड वेअर की प्रधानता है, जिसमें विशेषतः तसले, कलश एवं अन्य-पात्र-प्रकारों के भी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। ये सभी पात्र कुषाण एवं गुप्तकाल से सम्बन्धित हैं। यहाँ से मिट्टी एवं शीशे की बनी चूड़ियाँ, लोहे के उपकरण, पत्थर के मनके एवं मिट्टी के बने लोढ़े (Terracatta Pestles) मिले हैं।[67] धुरियापार का चतुर्थ काल 900 ई0 से 1500 ई0 तक चलता रहा।

जनपद का चौथा महत्वपूर्ण उत्खनित पुरास्थल, **इमलीडीह** है, जिसकी प्राचीनता नवपाषाण काल तक जाती है। इस स्थल का उत्खनन नरहन संस्कृति के विस्तार का पता लगाने के विशेष संदर्भ में किया गया था[68]। यहॉ से जो अंतिम संस्कृति मिली, उसका काल 800 ई0पू0 से 400 ई0पू0 के मध्य है। लेकिन नरहन का अंतिम काल 300 ई0 से 600 ई0 के बीच चलता रहा। इस प्रकार इमलीडीह की संस्कृति, नरहन से कुछ पहले ही प्रारम्भ हो जाती है, और इसका अन्त भी इसी अनुपात में पहले ही हो जाता है। इस प्रकार इमलीडीह में 400 ई0पू0 के बाद का कोई सांस्कृतिक अवशेष दृष्टिगोचर नहीं होता है। अतएव ऐतिहासिक काल से इस पुरास्थल का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता है।

जनपद के **उपधौलिया, गोरसेहरा,** एवं **राजधानी** नामक स्थलों का परिचय इस अध्याय के चतुर्थ खण्ड में ही दिया जा चुका है, जहाँ प्रारम्भिक ऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक युग के अवशेषों का उल्लेख किया जा चुका है। यहाँ से प्राप्त ऐतिहासिक युग के पुरावशेषों में गुप्तकालीन लाल रंग के मृद्भाण्डों के ठीकरे इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोड़ते हैं। उल्लेखनीय है कि तीनों ग्रामों की स्थिति अलग–अलग होते हुए भी टीला एक ही है।

कौड़ीराम के निकट, **देवकली** नामक ग्राम से सटे पूरब, सड़क के किनारे एक टीला है, जहाँ से ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले हैं। यहीं से प्रस्तर-मूर्ति का एक खण्डित टुकड़ा मिला है, जिसकी पहचान नहीं हो सकी है। यहाँ प्राचीन ईटों के ढेर भी द्रष्टव्य हैं।

कोटवा नामक स्थल, गोरखपुर–वाराणसी–राजमार्ग पर स्थित गगहा नामक स्थल से लगभग 5 कि0मी0 उत्तर–पश्चिम में स्थित है। 1987 में यहाँ के टीले से 16 गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्के, ग्रामीणों द्वारा गड्ढा खोदते समय मिले थे। वर्तमान समय में ये सिक्के रा0 सं0 ल0 में सुरक्षित हैं। इस डीह का अवलोकन सर्वप्रथम पुराविद् ए0 फ्यूहरर ने किया था[69]। यहाँ धरातलीय सर्वेक्षण में गुप्तकालीन एवं मध्यकालीन पात्रों के टुकड़े दिखायी पड़ते हैं। वर्तमान समय में कृषि सम्बन्धी गतिविधियों के कारण टीला समतल होकर अपना अस्तित्व खो चुका है।

जनपद का **बांसगॉव** नामक प्राचीन स्थल गोरखपुर जनपद मुख्यालय से वाराणसी जाने वाले राजमार्ग पर स्थित कौड़ीराम से लगभग 9 कि0 मी0 पश्चिम, मुख्यमार्ग पर स्थित है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण स्थल है, क्योंकि इसी तहसील में सोहगौरा नामक पुरास्थल अवस्थित है। सोहगौरा के प्रसिद्ध कांस्यपत्राभिलेख में इस स्थल का उल्लेख हुआ है। ए0 फ्यूहरर ने भी सोहगौरा का उल्लेख किया है[70]। यह स्थल आमी नदी के दक्षिणी तट से एक कि0 मी0 दक्षिण दिशा में अवस्थित है। टीले पर दो मंदिर बने हुए हैं। टीले के धरातलीय सर्वेक्षण में लाल रंग के पात्रावशेष उपलब्ध हुए हैं।

गोरखपुर–सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर सिकरीगंज से लगभग 8 कि0 मी0 दक्षिण कुआनों नदी के दक्षिणी किनारे पर **सोपाईघाट** नामक पुरास्थल स्थित है। नदी से थोड़ी ही दूरी पर एक टीला है, जिसकी ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 3 मीटर है। टीले के धरातलीय सर्वेक्षण में शराब बनाने वाली अनेक भट्ठियों के साक्ष्य मिले। ग्रामीणों के अनुसार बहुत पहले यहाँ थारूओं की बस्ती थी। टीले पर इन भट्ठियों के अतिरिक्त लाल–रंग के मृद्भाण्डों के टुकड़े भी उपलब्ध हुए हैं। ये पात्रावशेष गुप्तकालीन लाल रंग के मृद्भाण्डों से मिलते हैं। ऐसी स्थिति में इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोड़ा जा सकता है। यहाँ टीले पर अनेक वृक्ष भी लगे हुए हैं।

जनपद के **असौजी** नामक पुरास्थल का परिचय पहले ही प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल (एन0बी0पी0) के विशेष सन्दर्भ में दिया जा चुका है। यहाँ के धरातलीय अवशेषों में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा रेड वेअर के टुकडे मिले हैं[71] इस प्रकार यह पुरास्थल प्रारम्भिक ऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक, दोनों ही संस्कृतियों से जुड़ा हुआ है।

जनपद में सरयू (घाघरा) के वाम तट पर अवस्थित **गोपालपुर** का उल्लेख भी प्रारम्भिक ऐतिहासिक एवं एन0बी0पी0 वेअर के विशेष संदर्भ में किया जा चुका है। इस स्थल की पहचान महाभारत में उल्लिखित

'गोपालक राष्ट्र' से की गयी है। यहाँ के विशाल टीले से गुप्तकालीन 16 रजत मुद्राओं की एक निधि प्राप्त हुई है। इन रजत सिक्कों के आधार पर इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोड़ा जा सकता है।

गोलामार्ग पर सड़क से लगभग 3 कि0मी0 दूर घाघरा के बाँए किनारे पर अवस्थित **'मकन्दवार'** नामक प्राचीन स्थल का पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष महत्त्व है, क्योंकि यहाँ से कम से कम तीन सांस्कृतिक कालों से सम्बन्धित अवशेष उपलब्ध हुए हैं। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड, एन0 बी0 पी0 एवं रेड वेअर के साथ ही कुषाण एवं गुप्तकालीन मृद्भाण्डों के खण्डित भाग भी उपलब्ध होते हैं। अतएव इन अवशेषों के आधार पर मकन्दवार का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोड़ा जा सकता है। यहाँ मध्यकाल तक के अवशेष उपलब्ध होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त काल के बाद भी यहाँ सांस्कृतिक गतिविधियाँ जारी रहीं। इस प्राचीन स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गो0वि0वि0 के श्री कृष्णानंद त्रिपाठी एवं टी0एन0 दूबे के द्वारा किया गया है[72]।

मकन्दवार की भाँति **बढ़यापार** भी प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर मध्यकाल तक की संस्कृतियों से जुड़ा हुआ है। यहाँ से जो प्राचीन मृद्भाण्ड मिले हैं, उनमें ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के अतिरिक्त मध्यकाल के ग्लेज्ड वेअर के अवशेष विशेष उल्लेखनीय हैं[73]। यहाँ गुप्त एवं मध्यकाल से सम्बन्धित मानव एवं पशु मृण्मूर्तियों के अवशेष भी मिले हैं। ये मृण्मूर्तियाँ इस स्थल का सम्बन्ध गुप्त एवं मध्यकाल तक ले जाती हैं।

गोरखपुर–सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर जिला मुख्यालय से लगभग 30 कि0मी0 दक्षिण **उसरैन** नामक स्थल स्थित है। यहाँ सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 2 मीटर है। टीला उपर्युक्त मार्ग द्वारा दो भागों में विभक्त है। टीले पर प्राचीन ईटों के ढेर बिखरे पड़े हैं। यहाँ किसी भवन संरचना का साक्ष्य नही मिलता है। यहाँ टीले पर धरातलीय सर्वेक्षण में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के साथ ही रेड वेअर के ठीकरे भी मिले हैं[74]। टीले का पूर्वी भाग वृक्षों से आच्छादित है, तथा दक्षिणी पार्श्व पर नये भवन निर्मित हुए हैं।

गोरखपुर से नौतनवाँ जाने वाले रेलमार्ग पर भगीरथपुर स्टेशन से लगभग 4 कि0 मी0 की दूरी पर **बनरसिहा** ग्राम अवस्थित है। इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की डॉ0 देवबाला मित्रा ने किया था, जिसमें उन्हें अनेक अवशेष मिले थे[75]। इस सर्वेक्षण के पश्चात् श्री कृष्णानंद त्रिपाठी एवं श्री देवधारी उपाध्याय ने भी इस स्थल का सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण में इन्हें अनेक मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुयी थीं, जो बौद्ध संग्रहालय गोरखपुर में संग्रहीत हैं। कुछ वर्ष पहले भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग (पटना

सर्किल) द्वारा इस स्थल का उत्खनन कराया गया था। विवरण अप्रकाशित (?)। कुछ विद्वान इस स्थल की पहचान देवदह से करते हैं।

धरातलीय सर्वेक्षण में यहाँ से प्राचीन ईटों के टुकड़े भी मिले हैं। इसके अतिरिक्त ग्रे वेअर के ठीकरे, रेड–वेअर के हाँडी के ठीकरे तथा भोजन बनाने वाले बर्तनों के साथ ही बेसिऩ भी मिला है। डा0 मित्रा को यहाँ से कुषाणयुगीन मूर्तियाँ एवं सिक्के उपलब्ध हुए हैं।

गोरखपुर से लगभग 54 कि0मी0 पूरब **कुशीनगर** नामक ऐतिहासिक स्थल है। वर्तमान समय में यह स्थल जनपद के रूप में ख्यात है। बौद्ध धर्म से जुड़ने के कारण इस स्थल का विशेष महत्त्व है। यहाँ से लगभग 18 कि0मी0 दक्षिण– पूर्व में फाजिलनगर नामक ऐतिहासिक स्थल है। इस स्थल के समीप ही सठियॉव नामक ग्राम अवस्थित है। यहीं एक टीला भी है, जिसका उत्खनन गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग के पुराविद् डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी ने किया[76]। ए0सी0 एल0 कार्लायल ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया कि फाजिलनगर–सठियाँव ही प्राचीन समय में पावा के नाम से जाना जाता था, जो मल्लों की राजधानी के रूप में ख्यात था[77]।

सम्भवतः **फाजिलनगर** का टीला प्राचीन समय में सठियॉव का ही एक भाग था। समीपवर्ती धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 9 मीटर है। यहाँ पर दो टीले हैं, जो आपस में मिले हुए हैं। एक टीला कुछ ऊँचा है। तथा दूसरा अपेक्षाकृत कम ऊँचा हैं। निचला टीला उत्तर–पूर्व में एक मजार के द्वारा बढ़ा हुआ है, और दूसरा टीला पश्चिम दिशा में है। टीला उत्तर से दक्षिण लगभग 80 मीटर और पूरब से पश्चिम 120 मी0 के क्षेत्र में फैला हुआ है। यह टीला मानव एवं प्रकृति के युगल हाथों से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। सम्पूर्ण टीला जंगली झाड़ियों एवं घासों से आच्छादित है।

सठियॉव के निचली भूमि के जमाव को, जो कि कम्पोस्ट खाद के निमित्त बनाए गए गर्त के रूप में मिला था, खुरचकर (Scrapping) देखा गया। यहाँ पकी हुयी ईटों से निर्मित दीवाल के अवशेष दिखायी पड़े, जिन्हें कुछ समय पहले तोड़ दिया गया था। ईटों का माप 42×26×6 सेमी0 था। यहाँ से रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा एन0बी0पी0 वेअर के ठीकरे मिले थे। इसके अलावा मृण्मूर्तियाँ, मिट्टी के मनके, टूटे हुए मुहर का सॉचा तथा लोहे के कुछ उपकरण भी मिले हैं। धरातलीय पुरावशेषों में ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरे तथा स्क्रेपिंग से प्राप्त अन्य अवशेष स्पष्ट रूप से संकेत देते हैं कि यह पुरास्थल प्राग्मौर्य युग से लेकर मध्यकाल तक आबाद रहा।

उच्च टीले के शीर्ष एवं उत्तरी ढलान पर उत्खनन कार्य किया गया, जिसमें सतह के ठीक नीचे अनेक भवनों के अवशेष मिले। इनमें गुप्त–युग एवं मध्य–युग के भवनों के अवशेष हैं। गुप्तकाल के स्तर से एक विशिष्ट भवन के साक्ष्य मिले हैं। यह 14.40×17.80 मी0 आकार में समकोण चतुर्भुजाकार प्लेटफार्म के रूप में है[78]। यह प्लेटफार्म पूरी तरह नहीं खोदा जा सका है।

यहाँ से प्रायः ईंट से निर्मित भवनों के अवशेष बहुतायत से मिले हैं। कुछ अन्य पुरावशेष भी यहाँ से मिले हैं। इनमें मृण्मूर्तियाँ, मुहर एवं मुहरों के साँचे विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। मृण्मूर्तियाँ अत्यधिक संख्या में मिली हैं। इनमें स्त्री, पुरूष एवं पशु मृण्मूर्तियाँ विशेष हैं। इन मूर्तियों में गुप्तकाल की आदर्शभूत विशेषताएं अन्तर्निहित हैं। इस प्रकार यह पुरास्थल प्राग्मौर्य युग से लेकर मध्ययुग तक सांस्कृतिक निरन्तरता से जुड़ा हुआ है। यहाँ जो अवशेष मिले, उनमें गुप्तकाल से सम्बन्धित अवशेषों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है।

गुप्त काल से जुड़ा हुआ एक अन्य प्राचीन स्थल, समीपस्थ जनपद, जहाँ से सूर्य उपासना के प्रमाण मिले हैं, कुशीनगर में अवस्थित है। जनपद (कुशीनगर) से लगभग 18 कि0मी0 पूरब, तमकुहीरोड मार्ग पर यह स्थल स्थित है। यहाँ से फाजिलनगर लगभग 8 कि0मी0 दक्षिण–पूर्व में अवस्थित है। यह महत्त्वपूर्ण स्थल तुर्कपट्टी–महुअवा[79] (सूर्यपुरी) के नाम से जाना जाता है।

यहाँ से 1981 में दो सूर्यप्रतिमाएँ आकस्मिक रूप से मिली थीं। एक कृष्ण–पाषाण (Black Stone) (छायाचित्र संख्या–7) तथा दूसरी बालुका–पाषाण (Sand-Stone) से निर्मित है। ये दोनों ही मूर्तियाँ गुप्त कालीन हैं। ये मूर्तियाँ जब मिली थीं, उस समय प्रचार–प्रसार के निमित्त स्थानीय लोगों ने इन मूर्तियों में दैवीय शक्ति का आरोपण किया, और इससे सम्बन्धित एक कथा गढ़ डाला, जिसके अनुसार, 'भारीयोगी टीला' पर सुदामा शर्मा नामक एक लौहकार का घर था। श्री शर्मा को आए दिन दैवीय आपदाओं का सामना करना पड़ रहा था। इसी क्रम में उनके परिवार के तीन लोग स्वर्गवासी हो चुके थे। इसी बीच 30 जुलाई की रात्रि में उन्होंने स्वप्न में अनुभव किया कि किसी दैवीय शक्ति का उन्हें ऐसा आदेश मिला कि इन मूर्तियों को खोद निकालें, अन्यथा उनकी त्रासदी बढ़ती जायेगी। स्वप्न में मिले इस दैवीय आदेश को श्री शर्मा ने शिरोधार्य कर उत्खनन किया, जिसमें उक्त मूर्तियाँ मिलीं।

उल्लेखनीय है कि इस कहानी का एक मात्र उद्देश्य मूर्तियों को विशेष आध्यात्मिक महत्त्व देना है[80]। शोधकर्ता चूँकि यहाँ का स्थानीय निवासी है, अतएव वस्तु स्थिति को स्पष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझता है।

ध्यातव्य है कि श्री सुदामा शर्मा से स्वयं शोधकर्ता ने सम्पर्क किया है। श्री शर्मा ने स्पष्ट किया कि यह सब मनगढंत कहानी है, जो मूर्तियों के प्रचार–प्रसार के लिए गढ़ी गयी है। स्वप्न की बातें निराधार हैं।

ध्यातव्य है कि इन सूर्य मूर्तियों के मिलने से ठीक पहले श्री सुदामा शर्मा खम्मा गाड़ने के निमित्त एक छोटा गड्ढा खोद रहे थे। इसी समय यहाँ से इन्हें कुछ प्राचीन मूर्तिखण्ड (छायाचित्र संख्या–7) आकस्मिक रूप से मिले। ऐसी दशा में कुछ महत्त्वपूर्ण (कीमती) अवशेषों के मिलने की आशा में उन्होंने अपने उत्खनन को विस्तृत किया, जिसमें ये दोनों अद्भूत सूर्य–मूर्तियाँ उन्हें उपलब्ध हुयीं। यह खबर इस क्षेत्र में बडी तेजी से फैल गयी। अतएव इन मूर्तियों को स्थानीय जमींदार श्री नारायणी शाही के नेतृत्व में अत्यन्त श्रद्धा–भाव से स्थापित कर दिया गया।

उत्खनन में मूर्तियों के साथ ही एक अलंकृत तोरण और अन्य बहुत सी सामग्रियॉ उपलब्ध हुयीं। यहाँ से सूर्य-मंदिर का अवशेष उपलब्ध हुआ, जो अपने वास्तु-योजना में भारत के समस्त सूर्य-मंदिरों में एकाकी है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय है– नवनिर्मित मंदिर। कुछ स्तम्भों पर तृणाच्छादित कोणाकार शिखर मंदिर निर्माण प्रक्रिया के शैशव–कालीन अवस्था का स्मरण कराता है[31]।

तुर्कपट्टी से मिली ये दोनों मूर्तियॉ अपने विकसित प्रतिमा शास्त्र की दृष्टि से वृहत्संहिता, रूपमंडन, विष्णुधर्मोत्तर पुराण एवं विश्वकर्मा शिल्प के नियमानुसार निर्मित हैं। रूपमण्डन में उल्लिखित हैः–

सर्वलक्षण संयुक्तं सर्वाभरण भूषिताम्।
द्विभुजं चैक मुखं च श्वेत पद्माधृतकरम्।।

अर्थात् सर्वलक्षणों से युक्त, सर्वाभरण विभूषित, द्विभुज सूर्य एक मुखवाले हों, तथा श्वेत पद्म धारण किए हुए निर्मित हों। विष्णुधर्मोत्तर पुराण में भी लगभग ऐसा ही उल्लेख है। विश्वकर्मा शिल्प में भी सूर्य प्रतिमा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अनुसार, द्विभुज, पद्मधारी, सर्वाभरण, अलंकृत सूर्यदेव के साथ उनकी पत्नियों, राज्ञी एवं निक्षुमा तथा पार्षद दण्ड एवं पिंगल को प्रदर्शित करने का वर्णन है। वे सब लोकों को प्रकाश देने वाले हैं – ***सदीप्यमान वपुसर्वलोकैकदीपम्***।

उपर्युक्त दोनों प्रतिमाओं के प्रदर्शन में इस ग्रन्थ के नियमों का अधिकांशतः पालन हुआ है।

दोनों मूर्तियाँ अपने प्रतिमा–लक्षण की दृष्टि से उत्तर भारत के प्रायः समस्त मंदिर समूहों में उपलब्ध सूर्य मूर्तियों से साम्य रखती हैं।

विकास क्रम की दृष्टि से इन दोनों मूर्तियों पर तर्कपूर्ण दृष्टिपात करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि इनमें सूर्य–मूर्तियों के विकासक्रम के चरमावस्था में व्यवहृत समस्त तत्व विद्यमान हैं। अतएव ये मूर्तियाँ 9वीं–10वीं शताब्दी की कृतियाँ प्रतीत होती हैं। यद्यपि इनकी तिथि को पुराविदों ने और पहले (गुप्तकाल की) रखने का प्रयास किया है।

विवेचित सूर्य प्रतिमाओं के अतिरिक्त एक भव्य एवं अलंकृत तोरण भी उपलब्ध हुआ है, जो निश्चय ही उन मूल मन्दिरों के समीप स्थलों पर रहा होगा। उसके दोनों पार्श्ववर्ती रथिकाओं में द्विभुजी आदित्य पद्मासन मुद्रा में ध्यानावस्थित हैं। उल्लेखनीय है कि यह तोरण अवश्य ही मूल मंदिर के सम्मुख स्थापित रहा होगा, जैसा कि खजुराहो के लक्ष्मण मंदिर तथा कन्दरिया, विश्वनाथ आदि मन्दिरों में अर्थ मण्डप के सम्मुख निर्मित है।

ये सभी उदाहरण इस क्षेत्र में सूर्य–मन्दिर की उपस्थिति का तो बोध कराते ही हैं, साथ ही उत्तर भारतीय ग्रन्थ प्रासादमण्डन में उल्लिखित उस सार्वदेशिक नियम का भी उद्वहन कर रहे हैं, जिसके अनुसार जिस देवता का मन्दिर हो उसके उत्तरंग पर उसी देवता को स्थापित करने का निर्देश है : ***यस्य देवस्य या मूर्तिः सैव कार्योत्तिरंगके***। अ0 3, श्लोक 68....

अर्थात् इस सार्वदेशिक नियम का गुप्तकाल से प्रारम्भ कर मध्ययुगीन प्रमुख मन्दिर समूहों तक में अनिवार्यतः पालन किया गया है। इसी कड़ी में तुर्कपट्टी के उपर्युक्त विवेचित मंदिर का तोरण द्वार (उत्तरंग) भी आ जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पूर्वी उत्तर–प्रदेश का यह भाग निश्चय ही गुप्त एवं गुप्तोत्तर युगों में सौर–सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। वर्तमान समय में भी यहाँ के समीपवर्ती गाँवों में शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की बहुलता है, जो निश्चय ही प्राचीन काल से ही सूर्य उपासना करते थे। इसी सन्दर्भ में बस्ती जिले से प्राप्त अप्रकाशित सूर्य प्रतिमा भी उल्लेखनीय है, जो अपने लक्षणों की दृष्टि से विकासक्रम की चरमावस्था की कृति सिद्ध होती है[82]।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकाल तक सूर्योपासक शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का प्रवेश इस क्षेत्र में (पूर्वी उत्तर–प्रदेश एवं बिहार) हो चुका था, और उनके कारण इस क्षेत्र में सूर्य–पूजा को प्रोत्साहन मिला। यह परम्परा इस स्थल के लोक–जीवन में अद्यावधि स्थान रखती है। तुर्कपट्टी की सूर्य मूर्तियाँ एवं मन्दिर इस सुदीर्घ परम्परा के मूक साक्षी हैं।

जनपद के **डोमिनगढ़** नामक प्राचीन स्थल का परिचय प्रारम्भिक ऐतिहासिक युगीन संस्कृति के अन्तर्गत दिया जा चुका है। वर्तमान समय में यह प्राचीन स्थल गोरखपुर से ठीक पश्चिम दिशा में शहर के पार्श्व में आ चुका है। ध्यातव्य है कि रोहिन (रोहिणी) पहले डोमिनगढ़ के पश्चिम दिशा से होकर बहती थी, किन्तु अब ठीक पूरब दिशा से होकर बहती है। टीले के दक्षिण–पूर्व में रोहिन एवं राप्ती का संगम है। यहाँ से 44X24X4 सेमी0 आकार में जो ईटे उपलब्ध हुयी हैं, वे फाजिलनगर (जनपद कुशीनगर) के उत्खनन में उपलब्ध गुप्तकालीन ईटों से साम्य रखती हैं। इन साक्ष्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि गुप्तकाल या गुप्तोत्तर काल में भी यह स्थल आबाद रहा होगा। यहाँ गुप्तकालीन मृद्भाण्डों के ठीकरे भी उपलब्ध हुए हैं।

अतएव डोमिनगढ़ को ऐतिहासिक युगीन संस्कृति से जोड़ा जा सकता है। यहाँ सांस्कृतिक गतिविधियाँ मध्ययुग तक चलती रहीं।

राप्ती के किनारे **भीटी तिवारी** नामक प्राचीन स्थल, गोरखपुर जनपद मुख्यालय से सोनौली–राजमार्ग पर अवस्थित पीपीगंज से लगभग 5 कि0 मी0 दक्षिण–पश्चिम दिशा में स्थित है। इस प्राचीन स्थल का सम्बन्ध पालयुग से है। लगभग 7 एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत टीले पर एक मंदिर (आधुनिक) हैं, जिसमें पालयुगीन लिंग स्थापित है। इसी टीले से 12वीं शताब्दी ई0 की दशावतार विष्णु की एक प्रतिमा मिली थी, जो एक स्थानीय व्यक्ति के यहाँ सुरक्षित है। एक अन्य खण्डित पालयुगीन नवग्रहपट्ट भी यहाँ से उपलब्ध हुआ है। टीले के पार्श्ववर्ती क्षेत्र में रेड वेअर के ठीकरे भी दिखायी पड़ते हैं।

मलौर नामक पालयुगीन प्राचीन स्थल, गोरखपुर से सहजनवाँ–घघसरा मार्ग पर सहजनवाँ से लगभग 3 कि0 मी0 पश्चिम मुख्य सड़क से लगभग 2 कि0 मी0 दक्षिण दिशा में स्थित है। यहाँ टीले पर एक पोखरा है। पोखरे के पास टीले से पाल युगीन एक सूर्य प्रतिमा मिली है, जिसे इसी ग्राम के एक मन्दिर में स्थापित किया गया है।

गोरखपुर से उत्तर, उत्तर–पूर्व दिशा में लगभग 1.5 कि0मी0 की दूरी पर **जटाई ग्राम** है। इस ग्राम में 'असुरन का पोखरा' नामक पोखरा है। यह पोखरा जटाई ग्राम में स्थित है[83]। यहीं पोखरे के समीप से लगभग 9वीं–10वीं शताब्दी ई0 की विष्णु की एक मूर्ति मिली है। मूर्ति काले पत्थर की बनी हुयी है। यह मूर्ति कमलासन पर खड़ी, शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए वरद मुद्रा में है। दोनों तरफ चमरवाहिनी और ऊपर गरूड़ की छोटी मूर्ति बनी है[84]। इस मूर्ति को मझौली राजा द्वारा बनवाये गये मन्दिर में स्थापित किया गया है। मन्दिर के पश्चिम एक टीला है जो निरन्तर कटाव के कारण समतल होता जा रहा है। तेजी से हो रहे निर्माण कार्यों के कारण यहाँ प्राचीन अवशेष दृष्टिगोचर नहीं होते हैं। यहाँ पोखरे को राजा श्रीपाल

देव ने खुदवाया था[85]। यहाँ स्थल की आकृति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके गर्भ में महत्त्वपूर्ण सूचनाओं से सम्बन्धित प्राचीन अवशेष छिपे हुए हैं।

देवकली (निकट गगहा) नामक प्राचीन स्थल गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर गगहा से 3 कि0मी0 पश्चिम हैं। यहाँ एक ऊँचा टीला है। यहाँ प्राचीन भवनों के अवशेष दृष्टिगोचर होते हैं। टीले पर एक नवनिर्मित मन्दिर है, जिसमें 11 वीं शताब्दी ई0 की0 दो सूर्य मूर्तियाँ, एक गणेश (पूर्व मध्ययुगीन) तथा एक मातृ–शिशु की मूर्ति स्थापित की गयी है। टीले के समीप ही पालयुगीन एक सूर्य–मूर्ति मिली थी, जिसे यहाँ एक मन्दिर में स्थापित किया गया है। इस प्रकार यह एकाकी स्थल हैं, जहाँ से तीन सूर्य प्रतिमाएँ मिली हैं।

उपर्युक्त टीले के ठीक दक्षिण में लगभग 5 एकड़ के क्षेत्र में विस्तृत एक अन्य टीला भी है, जिसकी ऊँचाई लगभग 1.5 मी0 है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, रेड–ग्रे वेअर तथा रेडस्लिप्ड वेअर के ठीकरे उपलब्ध होते हैं। इस ग्राम मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणों का बाहुल्य है।

सरया नामक पालयुगीन प्राचीन स्थल, गोरखपुर–खजनी –बांसगॉव, मार्ग पर जनपद मुख्यालय से लगभग 20 कि0मी0 दक्षिण दिशा में स्थित है। आमी नदी यहाँ से 2 कि0मी0 उत्तर दिशा में बहती है। सरया ग्राम के दक्षिण एक पोखरा है। इसके किनारे एक टीला है। इस टीले पर पालयुगीन एक अष्टफलकीय, शिवलिंग (छायाचित्र संख्या–9) स्थापित है। यहाँ ग्राम के मध्य भाग में एक मंदिर हैं। इस मंदिर में पालयुगीन एक अग्नि प्रतिमा स्थापित की गयी है। यह अग्नि प्रतिमा (छायाचित्र संख्या–8) इसी पोखरे से उपलब्ध हुयी है।

जनपद के **पिपराइच** नामक पुरास्थल से पालयुगीन सूर्य की प्रस्तर–मूर्ति मिली है। यह पू0 सं0 में रखा गयी है। जनपद मुख्यालय से लगभग 18 कि0मी0 उत्तर–पूर्व में यह पुरास्थल स्थित है। गोरखपुर छितौनीघाट, लूपलाइन (रेलवे) से भी यहाँ पहुँच सकते हैं।

जनपद मुख्यालय से लगभग 19 कि0मी0 दक्षिण सिकरीगंज–बड़हलगंज मार्ग पर **भरोहिया** नामक प्राचीन स्थल अवस्थित है। यहाँ सड़क के किनारे, सामान्य धरातल से लगभग 1.50 मीटर ऊँचा एक टीला है। सड़क के पूरब एक आधुनिक मन्दिर है। मंदिर के पास ही एक वट वृक्ष है जिसके नीचे प्राचीन काल के प्रस्तर मूर्ति–खण्ड बिखरे पड़े हैं। सर्वेक्षण के दौरान यहाँ से मुझे कुषाण कालीन लाल रंग के मृद्भाण्ड का टुकड़ा उपलब्ध हुआ है (रेखाचित्र संख्या–29, नं0 6)।

संदर्भ :

1. पाण्डेय, जे0एन0, 1983, *पुरातत्त्व विमर्श*, पृष्ठ 258, 1983

2. तत्रैव

3. तत्रैव, पृष्ठ 259–60

4. शर्मा, गोवर्द्धन राय, *भारतीय संस्कृति पुरातात्त्विक आधार*, पृष्ठ 57

4ए. चतुर्वेदी, एस0एन, 1985, एडवांस आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालय तराई, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, पृष्ठ–108

5. सिन्हा, के0 के0, 1959, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*

6. चतुर्वेदी, एस0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 103

7. चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1980, एक्सकेवेशन ऐट सठियांव-फाजिलनगर डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम नं0 1–2, पृष्ट–333, इलाहाबाद।

8. श्री कृष्णानंद त्रिपाठी के साथ विमर्श से ज्ञात हुआ।

9. श्री त्रिपाठी के साथ विमर्श के आधार पर।

10. चतुर्वेदी, एस0एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333–340

11. श्रीकृष्णानद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर

12 श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर।

13. *इ0 आर्क0* पृष्ठ 56 (1961–62)

14. तत्रैव, पृष्ठ 45–46 (1974–75)

15. तत्रैव, पृष्ठ 45(1963–64)

16. तत्रैव, पृष्ठ 45–46(1974–75)

17. सिंह, पी0, माखन लाल और अशोक कुमार सिंह : एक्सकेवेशन ऐट नरहन 1983–85, *पुरातत्त्व* नं0 15, 1985–86, पृष्ठ 117.

18. सिंह, पुरूषोत्तम : *एक्सकेवेशन ऐट नरहन*, 1994,पृष्ठ–33

19. सिंह, पुरूषोत्तम, आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द– 1992, *प्राग्धारा*, अंक–3, 1992–93,पृष्ठ 31

20. फ्यूहरर, ए0, *मान्यूमेण्टल एन्टीक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध*, पृष्ठ–241

21. सिंह, पुरूषोत्तम; सिंह, अशोक कुमार; सिंह, इन्द्रजीत : ट्रायल डिगिंग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा*,, अंक 2, 1991–92 पृष्ठ 55

22. तत्रैव, पृष्ठ 55–59

23. श्री कृष्णानंद त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् ज्ञात हुआ।

24. सिंह, पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 35

25. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–368

26. तत्रैव.

27. तत्रैव

28. श्री कृष्णानंद त्रिपाठी (संग्रहालयाध्यक्ष गो0वि0गो0) से विमर्श से ज्ञात।

29. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 34

30. मल्लानामधिपं चैव पार्थिव चाजयत् प्रभुः।

— *महाभारत,* 2.30.3

31. ततो दक्षिण मल्लांश्च भोगवन्तं च पर्वतम्।
तरसैवाजयद् भीमो नाति तीव्रेण कर्मणा।।

— *महाभारत,* 2.30.12

32. गाइल्स, *ट्रवेल्स आफ फाहियॉन,* पृष्ठ 40–41

33. कपिलावटं ततो गच्छेत तीर्थसेवी नराधिप।
उपोष्य रजनीं तत्र गोसहस्रफलं लभेत्।।

— *महाभारत,* वनपर्व

34. रिज. डेविड्स, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* (लन्दन,1903), पृष्ठ 15 एन

35. कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि।
यस्मात्पुरं चक्रुस्तमात कपिल वास्तुतत्।।

— **सौन्दरनन्द**

36. चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1985 : *पूर्वोद्धृत,* पृष्ट–103

37. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ट–34

38 तत्रैव, पृष्ठ -35

38ए. तत्रैव, पृष्ठ 26

39. सिंह, पी0, सिंह अशोक कुमार, तथा सिंह इन्द्रजीत, (1991–92), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ–58

40. सिंह, पी0, 1992–93, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–34

41. तत्रैव, पृष्ठ 21–36

42. *इ0 आर्क0,* पृष्ठ 45 (1963–64)

43. *इ0 आर्क0,* (1963–64), पृष्ठ–45; *इ0 आर्क0,* (1974–75), पृष्ठ 45–46

44. *ई0 आर्क0,* (1963–64), पृष्ठ 45

45. चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 338, इलाहाबाद

46. श्रीकृष्णानंद त्रिपाठी से हुए विमर्श से ज्ञात हुआ।

47. श्रीवास्तव, के 0 एम0, *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु,* पृष्ठ 247

48. *आ0 स0 इ0 रि0,* वाल्यूम 18, पृष्ठ 31–55

49. यहाँ की (बौद्ध संग्रहालय) मूर्तियाँ अत्यन्त घिसी हुयी हैं, अतएव विवरण देना सम्भव नहीं है।

50 कनिंघम, *ऐन्श्येन्ट ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया,* पृष्ठ –267

51 श्री त्रिपाठी (संग्रहालयाध्यक्ष गो0 वि0 वि0 गो0) के साथ विमर्श से ज्ञात हुआ है।

52 इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने वर्ष 1976–77 में किया था(श्री त्रिपाठी से विमर्श से ज्ञात हुआ)।

53. *इ0 आर्क0*, (1963–64), पृष्ठ 45

54. तत्रैव

55. तत्रैव

56. तत्रैव

57 तत्रैव

58. चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 338

59. *इ0 आर्क0*, (1963–64), पृष्ठ 45

60. तत्रैव, (1963–64), पृष्ठ 45

61. तत्रैव, (1961–62), पृष्ठ 103–104

62. *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 64–65

63. तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

64 *गो0 ज0 इ0*, पृष्ठ 234

65. फ्यूहरर, ए0 : 1969, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–242

66. सिंह, पुरूषोत्तम, माखन लाल एवं सिंह, ए0के0, 1985–86, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–119

67. सिंह पी0, सिंह अशोक कुमार एवं इन्द्रजीत, सिंह, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–58

68. सिंह, पुरूषोत्तमः 1992–93 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–21

69. फ्यूहरर, ए0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–242

70. तत्रैव

71. *इ0 आर्क*, (1963–64), पृष्ठ 45

72. तत्रैव; *इ0 आर्क*, (1975–76), पृष्ठ 45–46

73. *इ0 आर्क*, (1963–64), पृष्ठ 45

74. तत्रैव

75. तत्रैव, (1961–62), पृष्ठ 103–104

76. विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य, इसी शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय।

77. चतुर्वेदी, एस0एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333

78. तत्रैव, पृष्ठ 334

79. उल्लेखनीय है कि सूर्य षष्टी के अवसर पर आयोजित संगोष्ठी में डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी (प्रो0 एवं अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग गो0 वि0 गो0) ने अपने वक्तव्य में इस स्थल को तुर्कपट्टी के स्थान पर

'सूर्यपुरी' के नाम से अभिहित करने की इच्छा प्रकट की थी, जो स्थल के *सौरसम्प्रदाय* से निकटतम सम्बन्ध को स्वयमेव व्यक्त कर देगा।

80. श्री सुदामा शर्मा से सम्पर्क के दौरान ज्ञात हुआ।

81. औदुम्बर घरघोष के सिक्के पर उत्कीर्ण मंदिर के शिखर का रूप इससे तुलनीय है।

82. यह प्रतिमा गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के संग्रहालयाध्यक्ष (क्यूरेटर) श्री कृष्णानंद त्रिपाठी ने बस्ती जिले के देवकुण्डा ग्राम में सर्वेक्षण के फलस्वरूप प्राप्त किया।

83. *ए0 एस0 आई0 आर0*; वाल्यूम 22, पृष्ठ 68

84. *गो0 ज0 इ0*, पृष्ठ 172–73

85. फ्यूहरर ए0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 242

सांस्कृतिक विवेचन

नवपाषाण कालीन संस्कृति

मनुष्य एक प्रबुद्ध प्राणी है, यह तथ्य सभ्यता के प्रारम्भिक दिनों से ही स्वीकार किया जाता रहा है। अतीतकाल में मानव अनेक संकटों से उबरकर जिया है, और वह ऐसा इसलिए कर सका है, क्योंकि उसमें नयी तकनीकें विकसित करने की सामर्थ्य और क्षमता थी। यदि उसने अपने शक्तिशाली दाँत और नाखून खो दिये हैं, तो इसका कारण यह था कि उसने प्रखर मस्तिष्क को वरीयता दी। इस अतिरिक्त क्षमता को पाकर वह उन्नत प्रौद्योगिकी (Developed Technology) तथा संस्कृति की सहायता से प्रकृति की चुनौतियों पर विजय प्राप्त कर सकता था। प्रारम्भ में उसके जीवन का मुख्य आधार प्रस्तर प्रौद्योगिकी थी, जिसमें मनुजोचित जिज्ञासा एवं बौद्धिक–विमर्श के फलस्वरूप उत्तरोत्तर परिवर्तन होता रहा। प्रारम्भ में मांस उसके भोजन का प्रमुख उपादान था, जिसे प्रस्तर–उपकरणों की सहायता से ही उपलब्ध किया जा सकता था। ये प्रस्तर, उपकरण मध्य पाषाण काल तक आते–आते, आकार–प्रकार में लघु एवं विविधतापूर्ण बनने लगे। अब आकार में बड़े एवं भारी प्रस्तर उपकरणों को बदले परिवेश में नयी आवश्यकताओं के लिए विकसित मानव मस्तिष्क स्वीकार नहीं कर पा रहा था। हल्के एवं लघु पाषाण उपकरण उसके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे थे। फलतः लघुपाषाणोपकरणों के प्रति उसकी अभिरुचि बढ़ रही थी। यही कारण है कि मध्य पाषाणिक स्तरों से माइक्रोलिथ्स बहुतायत से मिलते है।

मध्य पाषाणिक संस्कृति के ही परवर्ती चरण में तकनीक और अन्य क्षेत्रों में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये थे, जिससे नवपाषाणिक संस्कृति का विकास हुआ। नवपाषाणिक प्रस्तर उपकरणों में पूर्वापेक्षा कुछ विशिष्टताएं दृष्टिगोचर होती हैं। पहले प्रस्तर उपकरणों का निर्माण मुख्य रूप से फलकीकरण की प्रविधि से किया जाता था, लेकिन अब पाषाण उपकरणों को अभीष्ट आकार देने के लिए फलकीकरण के पश्चात् उसे गढ़ने (Pecking), घिसने (Grinding) तथा चमकाने (Polishing) का उपक्रम भी किया जाता था। मनुष्य ने पाषाण सामग्री को रगड़–रगड़ कर चिकना और चमकदार बनाना प्रारम्भ कर दिया। इससे उसमें अद्‌भुत सुंदरता आ गयी। वह पहले की अपेक्षा अधिक सुडौल, सुव्यवस्थित, बहुसंख्यक और बहुरूप होने लगी। मनुष्य

ने पाषाण के साथ–साथ हड्डी और लकड़ी की सहायता से भी अपने उपकरण एवं अन्यान्य वस्तुओं का निर्माण करना प्रारम्भ किया। इन उपकरणों का उपयोग जहाँ एक ओर आखेट के निमित्त किया जा रहा था, वहीं दूसरी ओर जीवन की अन्यान्य जरूरतों के लिए भी ये उपयोगी थे।

नवपाषाणिक मानव के गहन सोच–विचार के परिणामस्वरूप ही पशुओं को पालतू बनाया गया होगा, क्योंकि आखेट से उपलब्ध मांस का अधिशेष भाग नष्ट हो जाता था। अतएव पशुओं को पालतू बनाकर अपने अधिशेष को स्थायित्व प्रदान करना, नवपाषाणिक मानव के क्रांतिकारी सोच का परिणाम था। इसी अवधि में पहली बार उसने कृषि करना भी सीखा, जिसमें पशुओं (मवेशियों) के महत्व को स्वीकार किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप में अवस्थित विविध नवपाषाणिक स्थलों के उत्खनन में जौ, गेहूँ, चावल, मसूर तथा मटर के दानों के साक्ष्य मिले हैं, जो इस युग की उन्नत कृषि के प्रमाण हैं। ये सभी साक्ष्य नवपाषाणकाल की मिश्रित अर्थ–व्यवस्था की कहानी कहते हैं।

भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रों में समय–समय पर उत्खनन एवं अन्वेषण होते रहे हैं। इन उत्खननों एवं अन्वेषणों से नवपाषाणिक मानव के जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती रही हैं। इन सूचनाओं के आधार पर इनके सांस्कृतिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। यद्यपि इस रूपरेखा में क्षेत्रीय विभेद को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है, लेकिन ये विभेद विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। क्योंकि नूतन पाषाणिक मानव की मौलिक आवश्यकताएं विविध क्षेत्रों में एक समान थी। अतएव इनसे सम्बन्धित उपकरण–प्रकार भी बहुत सीमा तक मिलते जुलते हैं। यही कारण है कि इनके सांस्कृतिक जीवन की कहानी सर्वत्र लगभग एक समान है।

सरयूपार परिक्षेत्र की सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र गोरखपुर जनपद रहा है। इस परिक्षेत्र में प्रथम मानव (नवपाषाणिक–मानव) का पदार्पण विन्ध्य क्षेत्र से हुआ था। यह स्वाभाविक है कि नवागंतुक मानव ने अपना प्रथम आवास जनपद के दक्षिणी हिस्से में बनाया होगा। तत्पश्चात् यहाँ की जलवायु एवं जीवन के लिए अन्य उपयोगी उपादानों से साक्षात्कार किया होगा। कालांतर में इसने जनपद के अन्य क्षेत्रों में भी अपने आवास बनाए। यही कारण है कि सीमावर्ती जनपदों से भी नवपाषाणिक पुरासामग्रियाँ उपलब्ध हुयी हैं। जिन स्थलों से ये पुरासामग्रियाँ मिली हैं, उनमें मुख्यतः लहुरादेवा, बड़गो, सूसीपार, रामनगरघाट, गेड़ार एवं पुरानाखण्डी (महराजगंज जनपद में पुरैना ताल के किनारे) उल्लेखनीय हैं। जनपद के सोहगौरा एवं इमलीडीह नामक पुरास्थलों के उत्खनन से इस युग के हस्त–निर्मित पात्रों के प्रमाण उपलब्ध हुए हैं।

जनपद के उत्खनित स्थलों से नवपाषाणिक मानव के आवास–विन्यास, कृषि में अभिरूचि एवं विशेषतः उसकी मृदभाण्ड परम्पराओं के ऊपर प्रकाश पडता है। यद्यपि इस परिक्षेत्र के कुछ स्थलों के धरातलीय सर्वेक्षण में लघुपाषाणोपकरण भी उपलब्ध हुए हैं। लेकिन उत्खनित स्थलों, सोहगौरा एवं इमलीडीह

के नवपाषाणिक स्तरों पर इनका अभाव है। नवपाषाणिक मानव के आवास, कृषि एवं मृद्भाण्ड परम्पराओं के अतिरिक्त अन्य पक्षों के विवरण के लिए विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगाघाटी के उत्खनित स्थलों के विवेचनों को यहाँ आधार बनाया गया है।

सोहगौरा का प्रथम उत्खनन 1961–62 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से किया गया[1]। पुनः 1974–75 में यहाँ पर उत्खनन हुआ, जिसमें सोहगौरा की प्राचीनतम संस्कृति (नवपाषाणिक संस्कृति) से साक्षात्कार हुआ[2]। यहाँ के 4.40 मीटर सांस्कृतिक जमाव को छः सांस्कृतिक कालों में विभक्त किया गया[3]। प्रथम काल से नवपाषाणिक संस्कृति के मृद्भाण्ड बहुतायत से मिले[4]।

1992 में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से इमलीडीह में उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ[5]। इस उत्खनन में तीन सांस्कृतिक चरणों का उद्घाटन हुआ। प्रथम संस्कृति 'प्री–नरहन संस्कृति' के नाम से अभिहित की गयी। इस काल का सांस्कृतिक जमाव लगभग 50–60 सेमी0 था[6]। इसके ठीक ऊपर 'नरहन संस्कृति' का जमाव था[7]। प्री0–नरहन संस्कृति, नवपाषाण काल की संस्कृति है। इमलीडीह के द्वितीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाणिक संस्कृति से है।

आवास :

इमलीडीह के नवपाषाणिक स्तर के उत्खनन से यह प्रमाणित हो चुका है कि विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के नवपाषाणिक लोगों की भाँति इस क्षेत्र के नवपाषाणिक लोग भी बाँस–बल्ली से निर्मित झोपड़ियों में रहते थे[8]। बाँस एवं नरकुल की छाप से युक्त मिट्टी के टुकड़ों से इन झोपड़ियों के विषय में जानकारी मिलती है। फर्श मिट्टी से बनाए जाते थे। तत्पश्चात् इसे गीली मिट्टी से लीप–पोतकर चिकना बनाया जाता था। मिट्टी से बने फर्श की मोटाई 25 से 30 सेमी0 के बीच रहती थी[9]।

इनकी झोपड़ियों से भट्ठियों एवं चूल्हों के प्रमाण भी मिले है[10]। ये अपने घरों में अनाज रखने के लिए गड्ढे (Silo or Bin) बनाते थे। इन गड्ढों से अनाज के दानों के प्रमाण मिले हैं। इन गड्ढों की दीवाल लगभग 7 सेमी0 मोटी बनायी जाती थी। इनके घरों में फर्श से छोटे–छोटे मनके (Microbeads), जो कि स्टिटाइट (Steatite) के बने हुए है, मिले हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी, अगेट (Agate) एवं फेयन्स के मनके भी मिले है। हड्डी के बाणाग्र एवं बर्तनों के टुकड़ों से बने चक्रिका (Pottery disc) भी मिले हैं।

मृद्भाण्ड :

विन्ध्य क्षेत्र की भाँति इस परिक्षेत्र में भी कई प्रकार के मृद्भाण्डों के प्रचलन के प्रमाण मिले हैं। इन मृद्भाण्डों में सालन (Degraissant) के रूप में धान की भूसी एवं पुआल के टुकडों का उपयोग किया गया

है। इस परिक्षेत्र में मुख्यतः हस्त निर्मित, रज्जु–छाप मृद्भाण्ड (Cord impressed Pottery) एवं खुरदरे मृद्भाण्ड प्रचलित थे। इसके अतिरिक्त कुछ चमकाए गये मृद्भाण्ड भी मिले हैं। उपर्युक्त नवपाषाणिक मृद्भाण्डों में रज्जु–छाप मृद्भाण्ड विशेष महत्वपूर्ण है[11]। कार्डेड वेअर प्रायः रेतीली मिट्टी से बने हुए है तथा इनकी बाहरी सतह पर डोरी या बटी हुयी रस्सी की छाप है। कुछ पात्रों पर कछुए की छाप (Tortoise shell impression) भी मिलती है[12]। रस्टिकेटेड (खुरदरे) पात्रों के अवशेष सोहगौरा से मिले हैं। इन मृद्भाण्डों के बाहरी धरातल पर मिट्टी के घोल में पुआल के टुकड़े एवं भूसी मिलाकर लेप किया गया है[13]। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तरीका बर्तन को मजबूत बनाने के लिए अपनाया गया है।

रस्टिकेटेड पात्र मध्यम गढन के हैं। ये बहुत कम पके हुए हैं। कुछ ऐसे भी रस्टिकेटेड पात्र मिले हैं जिन पर रस्सी की छाप है[14]। रस्टिकेटेड पात्र का एक ऐसा टुकड़ा मिला है, जो रूक्ष गढ़न (Coarse Fabrics) तथा हल्के लाल रंग का है। इस पर सूखी घास एवं पत्तियों की छाप है[15]।

इमलीडीह से रूक्ष लाल रंग (Crude Red ware) के पात्र मिले हैं, जिनमें से कुछ पर रस्सी की छाप है। यहाँ से मिले कार्डेड वेअर में मुख्यतः अण्डाकार (Ovaloid) और इससे मिलते–जुलते (Sub ovaloid) पात्र हैं। यहाँ से उपलब्ध कार्डेड वेअर विविधता लिए हुए हैं। इनमें से कुछ पर रस्सी की तरह आड़ी–तिरछी (Criss-Cross) और दाँतेदार (Encised) आकृतियाँ बनी हैं। इन डिजाइनों को बनाने के बाद बर्तन को आग में पकाने के पहले इन पर गीली मिट्टी का गाढ़ा लेप लगाया जाता था। परिणामतः रस्सी की छाप वाली डिजाइनें ढँक गयी हैं।

बर्तनों के गोड़े सम्भवतः बाद में अलग से लगाए गये थे[16]। यहॉ से एक ऐसा कटोरा मिला है, जिसकी ऊँचाई 7 सेमी0 और व्यास 16 सेमी0 है। यहाँ से कुछ घर्षित (Burnished) पात्र भी मिले है[17]। बर्तनों को सम्भवतः हड्डी या अच्छी किस्म के रवेदार पत्थर के उपकरण से घिसा गया है। डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता के अनुसार यह पत्थर का रहा होगा, जो ओनिक्स (Onyx) या जैस्पर का बना होगा। गुजरात में आज भी इस तरह के पत्थर का प्रयोग होता है।

यहॉ का दूसरा पात्र प्रकार घड़ा है। रस्सी की छाप पूरे घड़े के ऊपर दिखलायी पड़ती है। ये टुटी हुयी दशा में मिले हैं। इसके अतिरिक्त लाल रंग का हाण्डीनुमा भोजन पकाने का पात्र भी यहाँ से उपलब्ध हुआ है। कुछ ऐसी हाण्डियाँ मिली है, जिनका मुँह पर व्यास 29 सेमी0 तथा मध्यवर्ती हिस्से का व्यास 41 सेमी0 है। इन पात्रों के गर्दन एवं कन्धें पर चमकीले लाल रंग की पट्टी बनी हुयी है और नीचे के भाग पर रज्जु अलंकरण है।

इसके अतिरिक्त इमलीडीह से लगभग एक दर्जन ट्यूब के आकार की बनी हुई टोंटियाँ भी मिली हैं,[18] जिनकी लम्बाई 5.14 सेमी0 से 6.57 सेमी0 तक है। इनके ऊपर चमकीले लाल रंग की स्लिप भी है। ये टोंटियाँ निश्चित ही हांडियों में लगे थे। विन्ध्य क्षेत्र में टोंटीदार कटोरे भी मिले हैं, हो सकता है कि इस क्षेत्र में भी कुछ टोंटियॉ कटोरे में भी लगायी गयी हों।

बर्तनों को विविध प्रकार से अलंकृत किया गया है। यहाँ पर बर्तनों को आसञ्जन विधि से भी अलंकृत किया गया है। आसञ्जन विधि का प्रयोग केवल हाण्डियों पर ही किया गया है।

सादे लाल रंग के पात्र सोहगौरा एवं इमलीडीह दोनों ही स्थलों से मिले हैं।

पशुपालन एवं कृषि :

नवपाषाण काल में पहली बार पशुओं को पालतू बनाने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। इनके पालतू पशुओं में मवेशियों के साथ भेड़–बकरियों का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रसंग में महगड़ा से प्राप्त पशुओं के बाड़े (Cattlen Pen) का उल्लेख किया जा सकता है। आयताकार यह बाड़ा 12.5 x 7.5 मीटर का है। बाड़े के अन्दर मवेशियों एवं भेड़–बकरियों के खुरों के निशान मिले हैं।

गोरखपुर परिक्षेत्र में भी उत्खनन के दौरान पशुओं की हड्डियाँ बहुतायत से मिली हैं। ये सभी अस्थि–अवशेष प्राकृतिक धरातल पर कूड़े फेंकने के निमित्त बने गड्ढों से मिले हैं, जिनकी पहचान इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ0 यू0 सी0 चट्टोपाध्याय ने की है[19]। इन अस्थि–अवशेषों में चौपाए पशुओं, यथा, भेंड़–बकरी एवं सूअर की हड्डियाँ मिली हैं। इन अस्थि–अवशेषों में कुछ पर धारदार हथियार से काटने के निशान है। ऐसा प्रतीत होता हैं कि मांस के लिए पशुओं का वध किया जाता था। सम्भवतः मांस इनके भोजन का अभिन्न अंग था। हिरण और कुछ मांसाहारी पशुओं के अस्थि–अवशेष भी यहाँ से मिले है।

इमलीडीह के उत्खनन के दौरान जलजीवों में समुद्री कछुआ, मछली एवं घोंघा के प्रमाण मिले हैं। जलजीवों में सम्भवतः कछुआ लोकप्रिय था, क्योंकि सोहगौरा से उपलब्ध मृद्भाण्डों पर कछुए की खोपड़ी की छाप मिली है।

जनपद के उत्खनित स्थलों (सोहगौरा एवं इमलीडीह) से प्राप्त मृद्भाण्डों के ठीकरों पर धान के दानों, भूसी तथा पुआल के कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले हैं। इन साक्ष्यों से धान के ओराइजा सताइवा (Oryza Sativa) किस्म की पहचान की गयी है। इन साक्ष्यों के आलोक में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं

कि चावल इनका प्रमुख खाद्यान्न था। ध्यातव्य है कि सभी नवपाषाणिक स्थलों से धान की खेती के प्रमाण मिल चुके हैं।

इमलीडीह से गेहूँ एवं जौ के दाने भी उपलब्ध हुए हैं। यहाँ से गेहूँ के 32 दाने मिले हैं[20]। इनकी पहचान ब्रेड ह्वीट (Bread Wheat) और ड्वार्फ ह्वीट (Dwarf Wheat) के रूप में की गयी है। यहाँ छः लाइनों वाले जौ के बालि का साक्ष्य भी मिला है। इसके अतिरिक्त ज्वार–मिलेट (Jwar-Millet) के दो दाने और एक दाना बाजरा (Pearl-Millet) का भी मिला है[21]।

दलहन में मटर, मसूर, खेसारी तथा फील्ड–पी (मटर का एक प्रकार) के दाने मिले हैं[22]। तैलीय अनाजों में फिल्ड ब्रैसिका (Field-brassica) के तीन दानें तथा तिल का एक दाना मिला है[23]। फलों में बेर, आँवला और अंगूर के प्रमाण यहाँ से मिले हैं।

उपर्युक्त प्रमाणों के आलोक में कहा जा सकता है कि इस परिक्षेत्र के निवासी विविध प्रकार के फसलों की खेती करने में पारंगत थे। ये लोग फलों के भी शौकीन थे। इसका प्रमाण बेर, आंवला, एवं अंगूर के साक्ष्यों से मिलता है। इन साक्ष्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि नवपाषाणिक मानव का जीवन आखेट (शिकार) एवं कृषि–कार्य के द्वैध उपादानों पर निर्भर था।

कालानुक्रम :

सरयूपार परिक्षेत्र में अवस्थित पुरास्थलों, सोहगौरा एवं इमलीडीह के नवपाषाणिक स्तरों से रेडियोकार्बन तिथियों के न मिलने की दशा में, इस परिक्षेत्र में नवपाषाण काल के आरम्भ की तिथि निश्चित करना कठिन है। फिर भी, चूँकि यहाँ नवपाषाणिक मानव का आगमन उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र से हुआ था, अतएव विन्ध्य क्षेत्र के पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य, स्तरीकरण से सम्बन्धित साक्ष्यों, एवं उत्खनन में उपलब्ध पुरावशेषों (विशेषतः मृद्भाण्डों) और मध्यगंगा घाटी में अवस्थित सरयूपार क्षेत्र के उत्खनित नवपाषाणिक स्थलों से उपलब्ध साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस क्षेत्र में नवपाषाणकाल के आरम्भ की तिथि के सम्बन्ध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

विन्ध्य क्षेत्र की भाँति इस क्षेत्र से भी हस्तनिर्मित कार्डेडवेअर, रस्टिकेटेड वेअर एवं बर्निस्ड वेअर (चमकीले पात्र) उपलब्ध हुए हैं। लघुपाषाण उपकरण भी सरयूपार के विभिन्न स्थलों से मिले हैं, जिनकी समता विन्ध्य क्षेत्र के लघुपाषाणोपकरणों से की जा सकती है। ऐसी स्थिति में विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति के लिए उपलब्ध रेडियों कार्बन तिथि को सरयूपार परिक्षेत्र के लिए आधार स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। चूँकि विन्ध्य क्षेत्र में नवपाषाणकाल के आरम्भ के लिए 7000 ई0 पू0 से 5000 ई0 पू0 की तिथि

निश्चित की गयी है, अतएव इस आधार पर सरयूपार परिक्षेत्र के लिए नवपाषाणकाल के आरम्भ के लिए छठीं–पाँचवीं सहस्त्राब्दी ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित की जा सकती है। ध्यातव्य है कि यह तिथि अनुमानित है, अतएव भावी उत्खननों एवं अनुसंधानों के आलोक में इसमें संशोधन–परिवर्तन की पर्याप्त गुंजाइश है।

सोहगौरा एवं इमलीडीह में नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक संस्कृतियों का क्रमिक जमाव हुआ है। यही स्थिति विन्ध्य क्षेत्र में स्थित कोलडिहवा में भी है। यहाँ का 1.90 मी0 मोटा सांस्कृतिक जमाव अपने अन्तस्तल में तीन विभिन्न संस्कृतियों से सम्बन्धित सामग्री छिपाये हुए है। प्रथम संस्कृति नूतन पाषाणकाल की है, द्वितीय ताम्रपाषाण काल एवं तृतीय संस्कृति प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से सम्बन्धित है। इस प्रकार हम देखते हैं कि उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी में नवपाषाणकाल का अंत ताम्र पाषाणकाल के ठीक पहले हुआ है। चूँकि मध्य गंगा घाटी में ताम्रपाषाणकाल की शुरूआत की तिथि 1500–1400 ई0 पू0 है, अतएव इस क्षेत्र में नवपाषाणकाल के अंत के लिए 1400–1500 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित की जा सकती हैं। कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ दोनों संस्कृतियाँ कुछ समय तक साथ–साथ चलती रही हैं। ऐसे क्षेत्रों में सोहगौरा का उल्लेख किया जा सकता है। अतएव यहाँ नवपाषाणकाल का अंत कुछ बाद में हुआ होगा।

उल्लेखनीय है कि इस परिक्षेत्र में नवपाषाण काल के प्रारम्भ एवं अंत की तिथियों के विषय में प्रो0 एस0एन0 चतुर्वेदी की धारणा कुछ अलग है। उनकी मान्यता है कि इस क्षेत्र में नवपाषाणिक मानव का आगमन उस समय हुआ, जब विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। ध्यातव्य है कि उत्कर्ष की इस अवस्था को प्राप्त करने में सहस्रों वर्ष लगे होंगे। इस पृष्ठाधार में प्रो0 चतुर्वेदी ने सरयूपार परिक्षेत्र में नवपाषाणिक मानव के आगमन के लिए 3000 से 2500 ई0 पू0 की तिथि तथा अंत के लिए 1900 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित किया हैं।[24]

ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति

सरयूपार परिक्षेत्र में अवस्थित अनेक स्थलों से ताम्रपाषाणिक संस्कृति के अवशेष समय–समय पर मिलते रहे हैं। इन स्थलों में सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार, गेनवरा, गुलरिहवाघाट एवं लहुरादेवा विशेष उल्लेखनीय हैं। उक्त स्थलों में से सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, गेनवरा एवं धुरियापार, गोरखपुर जनपद में अवस्थित हैं। इन सभी स्थलों से उपलब्ध ताम्राश्म पुरावशेषों से ताम्रपाषाणिक संस्कृति के विविध पक्षों पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है।

गोरखपुर जनपद में सर्वप्रथम 1961–62 में आमी और राप्ती नदियों के संगम पर स्थित सोहगौरा के उत्खनन के फलस्वरूप प्रथम काल से ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले[25]। पुनः 1974–75 के उत्खनन में यहाँ

द्वितीय एवं तृतीय काल से ताम्रपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य मिलें[26]। इसके पश्चात् 1984 से 1988 ई0 तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह ने नरहन में उत्खनन कार्य किया। फलतः यहाँ के प्रथम काल से इस युग से सम्बन्धित अवशेष प्राप्त हुए। इन अवशेषों के आधार पर ताम्रपाषाणिक संस्कृति के स्वरूप का विवेचन प्रो0 सिंह द्वारा लिखित रिपोर्ट 'एक्सकेवेशन ऐट नरहन' में हुआ है।

1991 तथा 1992 में क्रमशः धुरियापार तथा इमलीडीह खुर्द का उत्खनन भी प्रो0 पुरूषोत्तम सिंह के नेतृत्व में किया गया। धुरियापार के प्रथम काल (लगभग 1300 ई0पू0 से 600 ई0पू0) से ताम्रपाषाणिक अवशेष उपलब्ध हुए। पुनः इमलीडीह खुर्द के द्वितीय काल (1300 ई0पू0 से 800 ई0पू0) से भी ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले, जिनके आधार पर इस युग का सम्बन्ध 'नरहन कल्चर' से जोड़ा गया।

उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में ताम्रपाषाणिक मानव के आवास–विन्यास, रहन–सहन एवं अन्य कार्य–कलापों पर प्रकाश पड़ता है।

मृद्भाण्ड :

जनपद की ताम्रपाषाणिक संस्कृति में मुख्यतः चार प्रकार की पात्र–परम्पराएं प्रचलित थी। ह्वाइट पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेडवेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा प्लेन–रेड वेअर और रेड–स्लिप्ड वेअर।

सोहगौरा से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले हैं उनमें विविधता है। यहाँ से स्लिप्ड तथा अनस्लिप्ड दोनों प्रकार के ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले हैं। स्लिप्ड–रेड वेअर को कभी–कभी रगड़ कर चमकाया गया है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के कुछ ऐसे ठीकरे भी मिले हैं, जो रूक्ष (Coarse) गढ़न के हैं तथा उन पर तरंगित रेखाओं या रस्सी की छाप के समान नक्कासी की गयी है[27]।

सोहगौरा के तीसरे काल से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले हैं, उन पर हल्के लाल–चाकलेटीरंग (Reddish Chocolate) की चमकीली स्लिप है। इन पर बिन्दु एवं डैस से युक्त पंक्तियाँ भी मिलती हैं।

सोहगौरा के तीसरे काल के ऊपरी स्तर से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले हैं, उन पर सीधी रेखाओं में चित्रकारी की गयी है। रूक्ष गढ़न के कुछ गोल पात्र भी मिले हैं, जिन्हें यदा–कदा आसञ्जन विधि (Appliqe Method) से अलंकृत किया गया है। इस पात्र–परम्परा के पात्रों में कटोरे प्रधान रूप से मिले हैं, लेकिन धुरियापार से साधार कटोरे, तसले और घड़े मिले हैं[28]। इमलीडीह से जो कटोरे मिले हैं, वे इतने छिछले हैं, कि प्लेट जैसे प्रतीत होते हैं[29]।

इस क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक संस्कृति की दूसरी पात्र–परम्परा, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर है। सोहगौरा से जो ब्लैक–स्लिप्ड वेअर मिले हैं, उन पर चमकीला लेप लगा हुआ है, साथ ही इन पर श्वेत रंग से लम्बवत् रेखाओं में चित्रकारी की गयी है[30]। नरहन के ब्लैक–स्लिप्ड वेअर पर भी यदा–कदा श्वेत रंग से चित्रकारी की गयी है[31]।

इस क्षेत्र में ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के पात्रों में सामान्यतया जार, कटोरे, और थालियाँ मिली हैं। इमलीडीह से एक लम्बा बीकर, (गिलास) जिसके बाह्य सतह के कटि भाग पर खाँचे बने हैं, मिला है[32]। एक नया पात्र भी यहाँ से उपलब्ध हुआ है। यह लोटा है[33]। इनकी संख्या लगभग एक दर्जन है। ये गोलाकार बर्तन हैं, जिनकी गर्दन छोटी है और रिम (बारी) बाहर की ओर घूमी है। इन पर चमकदार काली स्लिप है। ऐसे कुछ बर्तनों पर रिम से निकलकर नीचे जाती हुयी सीधे रेखीय चित्र बने हैं।

जनपद की ताम्रपाषाणिक संस्कृति की तीसरी पात्र–परम्परा रेड वेअर की और चतुर्थ रेड–स्लिप्ड वेअर की है। इस पात्र परम्परा में कुछ अलेपित (Unslipped) पात्र भी मिले हैं। इमलीडीह से इस पात्र–परम्परा में छिद्रित पात्र मिले हैं, जिनमें चार पैर लगे हुए हैं[34]। छिद्रित पात्रों में मुख्यतः कटोरे हैं, जिनमें 9 से लेकर 12 की संख्या में छिद्र बने हुए हैं। ये पात्र मोटे और मजबूत हैं। इनके निचले भाग में चमकीले लाल रंग की स्लिप लगी हुयी है।

रेड वेअर में मुख्य रूप से कटोरे, घड़े, थालियाँ, तसले तथा जार मिले हैं।

भवन निर्माण :

सोहगौरा, नरहन एवं इमलीडीह से व्यापक पैमाने पर मिले भवनों के ध्वंसावशेषों के आधार पर कहा जा सकता है कि ताम्रपाषाण–युग तक आते–आते यहाँ के लोगों ने भवन–निर्माण की प्रक्रिया तेज कर दिया था। इनके आवास से खम्भे गाड़ने के प्रमाण के रूप में स्तम्भगर्त (Post-Holes) मिले हैं। सीमित उत्खनन के कारण इनके भवनों के आकार–प्रकार के विषय में अंतिम रूप से कुछ कहना सम्भव नहीं है। इनके मकानों की दीवालें बॉस–बल्ली के टट्टरों से निर्मित होती थीं, जिन्हें मिट्टी से लीप–पोत कर अभीष्ट स्वरूप प्रदान किया जाता था। छाजन घास–फूस से बनता था।

नरहन के प्रथम निवासी पतले सरपत से बने घरों को मिट्टी से लीप–पोतकर उनमें रहते थे। इनके आवास से स्तम्भगर्त और पकी हुयी मिट्टी के ऊपर नरकट की छाप, तथा दो क्रमिक स्तरों से चूल्हों और अग्निकुण्डों के प्रमाण (अवशेष) प्राप्त हुए हैं[35]। सोहगौरा से भी सरकण्डे की छाप से युक्त, जली हुयी मिट्टी के टुकड़े मिले हैं[36]। सम्भवतः अग्निकाण्ड के फलस्वरूप दीवालों की मिट्टी जल गयी होगी।

फर्श को चिकना बनाने के लिए मिट्टी में बर्तनों के ठीकरे मिलाकर कूट दिया जाता था[37]। उपर्युक्त प्रमाणों के आलोक में निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 12वीं–11वीं शदी ई0 में इस स्थल पर उक्त विधियों से आवास–निर्माण प्रारम्भ हो गया था। आज भी इन विधियों से भवन निर्मित किए जाते हैं।

कृषि एवं पशुपालन :

गोरखपुर जनपद के ताम्राश्म संस्कृति के लोग खेतिहर एवं पशुपालक थे। इस संस्कृति से सम्बन्धित लगभग सभी स्थलों से धान के दाने एवं भूसी के प्रमाण मिल चुके हैं। धान के इन अवशेषों से ओरिजा–सतीवा (Oryza-Stiva) किस्म की पहचान की गयी है। सम्भवतः धान ताम्रपाषाणिक संस्कृति के लोगों का प्रमुख खाद्यान्न था। इसके अतिरिक्त गेहूँ की विभिन्न प्रजातियों के प्रमाण नरहन एवं इमलीडीह से मिले हैं। जौ (Six row barley) की खेती भी ये करते थे, क्योंकि उक्त दोनों ही स्थलों से जौ के कार्बनीकृत अवशेष मिले हैं। दालों में चना, मटर, मूँग, मसूर इत्यादि के कार्बनीकृत दाने मिले हैं। नरहन से खेसारी के दाने भी मिले हैं।

तैलीय अनाजों में अलसी (तीसी) एवं सरसों की खेती की जाती थी। सरसों के दाने का प्रमाण नरहन से मिला है[38] जो भारतीय उपमहाद्वीप के ताम्रपाषाणिक युग के लिए एक नवीन खोज कही जा सकती है।

फलों में ऑवला एवं कटहल की खेती की जाती थी। नरहन से कटहल के बीज उपलब्ध हुए हैं[39]। ऑवले का प्रमाण इमलीडीह से मिला है[40]। सम्भवतः इस क्षेत्र के ताम्रपाषाणिक लोग ऑवले के स्वास्थ्यवर्द्धक प्रकृति से परिचित थे।

इस क्षेत्र के ताम्रपाषाणिक लोग पशुपालन के महत्त्व से परिचित थे। यहाँ से ककुदमान चौपाए (बैल), भेंड, बकरी, कुत्ते, घोड़े एवं भैंस के अस्थि–अवशेष मिले हैं[41]। इसके अतिरिक्त पागुर करने वाले जंगली जानवर यथा, हिरण की विभिन्न प्रजातियों के अस्थि–अवशेष मिले हैं। इमलीडीह से सूअर (Boar) की हड्डियाँ मिली हैं[42]। नरहन के प्रथम काल से भैंस का निचला जबड़ा मिला है। उपर्युक्त साक्ष्यों के आलोक में अनुसार लगाया जा सकता है कि उक्त पशुओं में से अधिकांश पालतू रहे होंगे।

नरहन के उत्खनन में पशुओं की अधजली हड्डियाँ मिली है। कुछ ऐसे भी अस्थि अवशेष मिले हैं जिन पर धारदार हथियार से काटने के निशान मिले हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि जनपद के ताम्रपाषाणिक लोग मांस–मछली का सेवन भी करते थे, जो कि प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत था। नरहन से मछली फँसाने की कंटिया एवं उसमें लगी डोरी की छाप से अनुमान लगाया गया है कि यहाँ के लोग मछली का शिकार भी करते रहे होंगे। डोरी लगी कंटिए की छाप की पहचान डॉ0 के0एस0 सारस्वत ने की है[43]।

औजार उपकरण एवं अन्य पुरानिधियाँ :

जनपद की ताम्रपाषाणिक संस्कृति में ताँबे का प्रयोग अत्यन्त सीमित रूप से किया गया है। सोहगौरा के ताम्रपाषाणिक स्तर (तृतीय काल) से ताँबे की गोल छड़ और ताँबे का एक टुकड़ा उपलब्ध हुआ है[44]। प्रस्तर अवशेषों में जैस्पर, अगेट (Agate), कार्नेलियन तथा स्टिटाइट के मनके मिले हैं[45]। मिट्टी की वस्तुओं में पकी हुयी मिट्टी की मूर्तियाँ, बर्तन रखने का पीढ़ा (Pot-rest) तथा मिट्टी का बना हुआ एक ऐसा टुकड़ा मिला है, जो सील–लोढ़े जैसा प्रतीत होता है[46]। इसके अतिरिक्त मिट्टी का एक चक्का (Wheal) भी यहाँ से मिला है। यहीं से 60×44 सेमी0 आकार की एक अण्डाकार भठ्ठी मिली है[47]। इसमें कोयला एवं राख भरा हुआ है। यहाँ से प्रस्तर उपकरण एवं हड्डी के बने हुए मनके भी मिले हैं।

नरहन के ताम्रपाषाणिक स्तर (प्रथम काल) से धातु निर्मित कोई सामग्री नहीं मिली है। धातु अवशेष के रूप में 1985–86 के उत्खनन के दौरान यहाँ से 13 सेमी0 लम्बी छड़ एवं लोहे का एक अन्य टुकड़ा मिला है[48]। इसके अतिरिक्त मिट्टी के एक ढोंके (Mud clod) पर मछली फँसाने की कँटिए की छाप मिली है, जिसमें डोरी लगी हुयी थी। सम्भवतः यह कंटिया लोहे की थी। इसकी पहचान छाप पर लगे जंग से की गयी है। ध्यातव्य है कि किसी भी अन्य ताम्रपाषाणिक स्तर से लौह अवशेष नहीं मिले हैं।

नरहन से एक कुल्हाड़ी मिली है, जो पालिश किए हुए प्रस्तर की बनी हुयी है[49]। कुछ छिट–पुट प्रस्तर के टुकड़े भी यहाँ से मिले हैं। यहाँ से हड्डी के बाणाग्र (प्वाइन्ट्स) 21 की संख्या में मिले[50] हैं। मिट्टी की बनी वस्तुओं में 9 थपुआ (Dabbers) मिले हैं। इसके अतिरिक्त बर्तनों के टुकड़ों से बने चक्रिका (Pottery disc) बहुतायत से मिले हैं। इनमें से चार ऐसे हैं, जिनमें छेद किया गया है। सम्भवतः ये खिलौना गाड़ी के पहिए रहे होंगे। यहाँ एक दर्जन की संख्या में सोपाड़ी एवं घड़े की आकृति के मिट्टी के बने मनके मिले हैं।

इनमें से कुछ पर लाइनें उत्कीर्ण की गयी हैं। नरहन से मिले अन्य लघु अवशेषों में बाणाग्र, छिद्र युक्त और कॉटेदार उपकरण, (Both socketed and tanged) हड्डी के बाणाग्र तथा मिट्टी के बर्तनों के टुकड़ों के बने चक्रिका, (Pottery disc) बहुतायत से मिले हैं[51]।

कालानुक्रम :

पुरातात्त्विक विमर्श एवं अनुसंधान के आलोक में ऐसा प्रतीत होता है कि गोरखपुर जनपद में ताम्रपाषाणिक संस्कृति के लोग पहली बार सोहगौरा में आकर बसे थे। सोहगौरा के द्वितीय एवं तृतीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाण युग से है। यहाँ 140 सेमी0 मोटा सांस्कृतिक जमाव अपने अन्तस्तल में द्वितीय एवं

तृतीय काल के अवशेषों को समेटे हुए है। द्वितीय काल का जमाव 55 सेमी0 है। दोनों कालों के मिलन–स्थल से 1330±110 ई0 पू0 की C^{14} (रेडियो कार्बन) तिथि मिली है। एक दूसरी तिथि 1230±130 ई0 पू0 की है। यह तिथि तृतीय काल के प्रारम्भ की तिथि है। इन दोनों तिथियों में लगभग 100 वर्ष का अंतर है और दोनों नमूनों के बीच की दूरी 13 सेमी0 है। इस पृष्ठाधार में दोनों युगों के सम्पूर्ण जमाव (140 सेमी0) में 1000 से 1100 वर्ष का समय लगा होगा। इस आधार पर द्वितीय काल के जमाव के लिए 400 वर्ष का समय निर्धारित किया गया है। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यहाँ सम्पूर्ण ताम्राश्म संस्कृति का जीवनकाल 1900 ई0 पू0 से 800 ई0पू0 के बीच निर्धारित किया गया है[52]। यह गणना गो0वि0वि0 के प्रो0 एस0एन0 चतुर्वेदी की है।

ध्यातव्य है कि प्रो0 चतुर्वेदी ने ताम्राश्म युग के लिए जो तिथि प्रस्तावित की है, वह सोहगौरा से उपलब्ध प्रमाणों के विशेष पृष्ठाधार में निर्धारित की गयी है। लेकिन जनपद के नरहन एवं अन्य समीपवर्ती स्थलों के ताम्राश्म युगीन स्तरों से जो रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं, उनके आधार पर ताम्राश्म युग की तिथि को कुछ और आगे बढ़ाना पड़ेगा। उल्लेख्य है कि नरहन से कुल चार रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं, जिनमें से दो विशेष महत्त्वपूर्ण हैं[53] : 1090±110 और 1100±110 ई0 पू0। खैराडीह (जनपद बलिया) के ताम्राश्म युग से तीन रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं[54] : 1030±90 ई0 पू0, 940±150 ई0 पू0 और 770±90 ई0 पू0। चिराँद से दो रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं[55] : 1585±103 ई0 पू0 और 1540±93 ई0 पू0। सेनुवार से चार रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं[56] : 1770±110 ई0 पू0, 1660±120 ई0 पू0, 1500±110 ई0 पू0, 1400±110 ई0 पू0। इन्हीं तिथियों के समकक्ष बिहार के कुछ अन्य स्थलों, यथा चेचर–कुतुबपुर, मनेर तथाताराडीह के ताम्राश्म–युग के स्तरों से भी रेडियो कार्बन तिथियाँ मिली हैं। इन समस्त साक्ष्यों के आलोक में इस परिक्षेत्र में ताम्राश्म युग के लिए 1500 ई0 पू0 से 800 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित करना सर्वथा यथेष्ट है।

प्रारम्भिक लौह कालीन संस्कृति

आज के परिवेश में लौह तकनीक, मानव जीवन का अभिन्न अंग बन चुका है। ऐसी दशा में यह कहना कि आज से लगभग 3 हजार वर्ष पूर्व का मानव–जीवन लौह तकनीक से अछूता था, अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है, लेकिन यह कथन पुरातात्त्विक अनुसंधानों पर आधारित है। यद्यपि भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रों में लौह तकनीक का प्रचलन एक साथ नहीं हो सका था, फिर भी मोटे तौर पर भारतीय पुरातात्त्विक क्षितिज पर इस तकनीक के उद्‌भव के निमित्त 1000 ई0पू0 की तिथि प्रस्तावित की गयी है।

प्रारम्भ में कतिपय पुराविदों का अनुमान था कि भारत में लोहा और एन0 बी0 पी0 मृद्‌भाण्डों का कई क्षेत्रों में साथ–साथ प्रचलन हुआ था। इससे सम्बन्धित पुरातात्त्विक साक्ष्य गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलों

से मिल चुके हैं। फिर भी भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रों में जो पुरातात्त्विक अन्वेषण एवं उत्खनन हुए हैं, उनसे यह ज्ञात होता है कि चित्रित–धूसर पात्र परम्परा (पी0 जी0 डब्लू0) के साथ भी लौह धातु का उपयोग होता रहा है। उल्लेखनीय है कि लौह प्रयोक्ता मानव ने प्रारम्भ में इस धातु का प्रयोग अस्त्र–शस्त्र के निर्माण के लिए ही किया था[57]। लोहे के उपकरणों में भाले, तीर, काँटें, कोटर, चूल, कुल्हाड़ियाँ, कुदाल (जखेड़ा से), दराँतियाँ (अतरंजीखेड़ा और जखेड़ा से), चाकू, फलक, सरिया, चिमटा (अतरंजीखेड़ा से), कीलें, पिन और धातुमल शामिल हैं। धातुमल से लोहे की ढलाई का संकेत मिलता है[58]। इस धरातल की रेडियो कार्बन तिथियाँ ईसा पूर्व 800–400 की कालावधि में आती हैं, हालाँकि यह काल–विस्तार सर्वमान्य नहीं है[59]। इसका आरम्भ और भी पहले मानना युक्तिसंगत होगा (अतरंजीखेड़ा की तिथि ईसा पूर्व 1,025 है)[60]। जिन पुरास्थलों से चित्रित–धूसर पात्र परम्परा के साथ लौह–उपकरण मिले हैं, उनमें नोह, आलमगीरपुर, अल्लापुर (मेरठ), अहिच्छत्र, भरतपुरा, अतरंजीखेड़ा एवं कौशाम्बी आदि के उत्खननों का उल्लेख किया जा सकता है[61]। इस प्रकार लौहयुगीन संस्कृति का तादात्मय चित्रित–धूसर संस्कृति के साथ भी स्थापित किया जा सकता है। उपर्युक्त पुरास्थलों के अतिरिक्त सोहगौरा एवं वैशाली से भी चित्रित–धूसर पात्र परम्परा के पात्र–खण्ड उपलब्ध हुए है। लौह–प्रयोक्ता संस्कृति से सम्बन्धित स्थलों में मध्य गंगा घाटी में अवस्थित चिरांद और सोनपुर का उल्लेख भी किया जा सकता है।

गोरखपुर परिक्षेत्र का प्रथम उत्खनित स्थल सोहगौरा है, जहाँ से 7वीं शताब्दी ई0 पू0 के आस–पास लौहकाल के अवशेष मिलने लगते हैं, लेकिन गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानंद त्रिपाठी, इस परिक्षेत्र में लौहकाल के उद्‌भव के लिए 1000 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित करते हैं[62]। सोहगौरा का उत्खनन यद्यपि दो सत्रों, 1961–62, और 1974–75 में हो चुका है, फिर भी यहाँ से लौहयुगीन सांस्कृतिक–सन्निवेश से सम्बन्धित कोई खास जानकारी नहीं मिली है। यहाँ चतुर्थ काल से लोहे एवं ताँबे का कंटिया (Nobs) उपलब्ध हुआ है[63]। इस काल से पत्थर एवं मिट्‌टी के मनके तथा लटकन (Pendants) भी उपलब्ध हुए हैं[64]। इसके अतिरिक्त मानव एवं पशु मृण्मूर्तियाँ, हड्‌डी की बनी लेखनी (Bone Styli), तथा कुषाणों और अयोध्या के शासकों सिक्के भी इस काल के सतह से मिले हैं[65]।

गोरखपुर परिक्षेत्र का दूसरा उत्खनित स्थल नरहन है, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय (तृतीय अध्याय) में हो चुकी है। नरहन के द्वितीय काल से लौह उपकरण मिलने लगते हैं। इस काल के लौह उपकरणों में बाणाग्र, भाले या बरछी की नोक (Sphearheads) छेनी या रूखानी (Chisel) तथा कीलें उल्लेखनीय हैं[66]। द्वितीय काल की प्रमुख पात्र परम्परा ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की है। हड्‌डी के कुछ नुकीले नमूनों पर गोलाकार चिन्ह निर्मित किया गया है। इसके अतिरिक्त यहाँ से शीशे तथा मिट्‌टी के मनके, मिट्‌टी के गेंद तथा मिट्‌टी के घोड़े का भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है। शीशे की बनी चूड़ियाँ इस युग में विशेष लोकप्रिय थीं[67]।

सांस्कृतिक परम्परा :

गोरखपुर जनपद के उत्खनित एवं सर्वेक्षित स्थलों से लौहकालीन जो पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं, उनके आलोक में कहा जा सकता है कि यह एक विकसित ग्राम्य संस्कृति थी। इस संस्कृति से सम्बन्धित पुरास्थलों में श्रावस्ती, कपिलवस्तु, रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कुशीनारा (कुशीनगर) एवं पावा का उल्लेख किया जा सकता है[68]। इन पुरास्थलों की पहचान तृतीय अध्याय में हो चुकी है। इनके अतिरिक्त वर्तमान गोरखपुर जनपद में सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह एवं धुरियापार का उत्खनन हो चुका है, जिनके लौहकालीन स्तरों से विविध पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। उपर्युक्त उत्खनित एवं सर्वेक्षित पुरास्थलों से उपलब्ध पुरावशेष लौहयुगीन मानव के सांस्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालते हैं।

लौह उपकरण :

इस परिक्षेत्र में लौह–उपकरण, सोहगौरा, नरहन, पावानगर (फाजिलनगर), कुशीनगर तथा धुरियापार से मिल चुके हैं। लौह उपकरणों में बाणाग्र, भाले या बरछी का अग्रभाग, (Spearheads) छेनी या रूखानी (Chisels) और कीलें विशेष उल्लेखनीय हैं[69]। ये सभी लौह उपकरण नरहन उत्खनन में उपलब्ध हुए हैं। इस काल में भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रों से कुल्हाड़ियाँ, बाण–फलक, सँड़सी, चिमटे, सुइयाँ और कीलें आदि भी उपलब्ध हुयी हैं[70]। नरहन से धातु गलाने के पात्र भी उपलब्ध हुए हैं। हस्तिनापुर, अतरंजीखेड़ा आदि पुरास्थलों पर लौह धातुमल भी मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सरयूपार परिक्षेत्र में लोगों को इस युग में धातु–शोधन (Metallurgy) के क्षेत्र में भी जानकारी थी[71]।

इस परिक्षेत्र में घने जंगलों को साफ कर उन्हें कृषि योग्य बनाने में लौह उपकरणों के अद्वितीय योगदान को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। इन्हीं लौह उपकरणों के प्रचलन के फलस्वरूप इस क्षेत्र में कृषि–कार्य एवं उद्योग–धन्धों में तेजी आयी और धीरे–धीरे अनेक बौद्ध कालीन नगरों का आविर्भाव हुआ, जो छठी शताब्दी ई0 पू0 तक बुद्ध के कारण काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। कुछ विद्वानों ने छठीं शताब्दी ई0 पूर्व में, गंगा–घाटी में घटित, 'द्वितीय नगरीय' क्रान्ति के लिए लौह तकनीक के प्रसार को उत्तरदायी ठहराया है[72]। ये सभी नगर आपस में आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारणों से जुड़े हुए थे। गौतम बुद्ध जिस रथ से यात्रा करते थे, उसमें लोहे का प्रयोग अवश्य किया गया होगा। इस प्रकार हम देखते हैं कि लौह तकनीक के विकास से मानव जीवन का हर पहलू प्रभावित हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि समूचे विश्व में लोहा जब से अस्तित्व में आया, उसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है।

कृषि एवं पशुपालन :

लोहे के ज्ञान के पश्चात् इस तकनीक से सबसे अधिक प्रभावित होने वाला क्षेत्र, कृषि का था। इस संस्कृति के विभिन्न पुरास्थलों से अनाज के कार्बनीकृत दाने उपलब्ध हुए हैं। गोरखपुर जनपद के उत्खनित

पुरास्थल, नरहन के द्वितीय काल से चावल, जौ, मटर एवं मूँग के कार्बनीकृत दाने मिले हैं[73]। यहाँ से कुसुम के बीज (Safflower seed) के साक्ष्य भी मिले हैं। इस तरह का साक्ष्य महाराष्ट्र से भी मिला है, जिसकी तिथि 1000 ई0 पू0 निर्धारित की गयी है[74]। यह साक्ष्य विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उत्तरी भारत के आद्यऐतिहासिक काल के लिए यह एक नयी खोज है। धान के अधजले दाने हस्तिनापुर के उत्खनन से भी उपलब्ध हुए हैं। राजस्थान के भरतपुर जिले में स्थित नोह नामक पुरास्थल के उत्खनन से जौ की खेती के साक्ष्य उपलब्ध हुए है[75]। लेकिन इस संस्कृति से सम्बन्धित किसी पुरास्थल से गेहूँ के साक्ष्य उपलब्ध नहीं हुए है। प्रारम्भिक लौह संस्कृति से सम्बन्धित विभिन्न पुरास्थलों से उपलब्ध अनाज के दानों में धान एवं जौ की प्रमुखता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ये अनाज तद्‌युगीन लोगों के प्रमुख खाद्यान्न के रूप में प्रयोग में आते रहे। इसके अतिरिक्त दलहन के रूप में मटर एवं चने का उपयोग भी बहुतायत से होता रहा होगा।

यद्यपि उपलब्ध अन्न के दानों से विदित होता है कि कृषि, लौहयुगीन मानव के जीवन का मुख्य अंग रहा होगा तथापि इस संस्कृति से जुड़े किसी भी पुरास्थल से हल के फाल का नमूना उपलब्ध नहीं हुआ है[76]। इसके अतिरिक्त इनके खेती करने के ढंग के विषय में भी साक्ष्यों की अनुपलब्धता विद्यमान है।

लौह संस्कृति से जुड़े हुए विभिन्न पुरास्थलों से गाय, बैल या साँड़ एवं घोड़े की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। इससे प्रतीत होता है कि इन पशुओं को अवश्य ही इस संस्कृति के लोगों का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। गोरखपुर परिक्षेत्र में स्थित नरहन के द्वितीय काल (लौहकाल) से बैल (साँड़) और नीलगाय की हड्डियों के साक्ष्य मिले है[77]। हस्तिनापुर के उत्खनन से भी घोड़े की अस्थियाँ उपलब्ध हुयी हैं। घोड़ा अतिद्रुतगामी वाहन के रूप में बहुत प्राचीन काल से ही मानव के सान्निध्य में रहा है। आज के इस वैज्ञानिक युग में भी घोड़े के महत्त्व को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता है। गाय का महत्त्व भी कम नहीं था, क्योंकि इससे दूध और माँस दोनों की पूर्ति होती थी। इसके बछड़े बड़े होकर कृषि–कार्य के लिए विशेष उपयोगी रहे होंगे। इस प्रकार इन पशुओं का लौहयुगीन मानव–जीवन के लिए बहुआयामी महत्त्व था।

खाद्य सामग्री :

इस संस्कृति के लोगों का प्रमुख खाद्यान्न चावल एवं जौ था। संभवतः गेहूँ भी इनके खाद्यान्न में शामिल था लेकिन इसकी खेती के सम्बन्ध में कोई निश्चित साक्ष्य नहीं मिला है। नरहन के तृतीय काल से गेहूँ के दानों के साक्ष्य मिले है[78], जिसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल में गेहूँ का उपयोग खाद्यान्न के रूप में होता रहा होगा। लेकिन यह मत सम्भावनाओं (सीमित साक्ष्यों) पर आधारित है, इसलिए भावी अनुसंधानों एवं उत्खननों के आलोक में ही इसे निश्चित रूप से स्वीकार या इंकार किया जा सकता है।

मांस भी इनके भोजन का एक अंग रहा होगा। यद्यपि इस परिक्षेत्र में लौहयुगीन स्थलों पर इससे सम्बन्धित निश्चित साक्ष्यों का अभाव है, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप के लौहयुगीन अन्य पुरास्थलों से (विशेषतः हस्तिनापुर से) गाय, सूकर एवं हिरण की हड्डियाँ मिली है[79]। इन हड्डियों को चीरकर मज्जा निकाल कर खाया गया है। नरहन के प्रथम काल से भी इन पशुओं की कटी हुयी हड्डियाँ मिली है[80]। इन साक्ष्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र मे भी पशुओं का मांस, खाद्य–सामग्री के रूप में प्रयोग किया जा रहा था। चूल्हे के साक्ष्य यद्यपि इस परिक्षेत्र में लौहयुगीन स्तरों से नहीं मिले हैं, लेकिन नरहन के प्रथम काल से जो कि ताम्राश्मयुगीन है, चूल्हे बहुतायत से मिले हैं। ऐसी दशा में हम कह सकते हैं कि भोजन पकाने के निमित्त चूल्हों की परम्परा लौहयुग में भी प्रवाहमान रही होगी, क्योंकि परम्पराएँ तो दीर्घकालिक होती हैं, जिनका अस्तित्व थोड़े बहुत परिवर्तनों के साथ प्रायः हर युग में विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त अतरंजीखेड़ा के लौहयुगीन स्तर से सामुदायिक चूल्हों के साक्ष्य भी मिले हैं। ऐसी दशा में ये साक्ष्य, गोरखपुर परिक्षेत्र के लौहयुगीन मानव को भोजन बनाने के निमित्त चूल्हों से निश्चित रूप से जोड़ते है। अतरंजीखेंडा से रसोईघर में प्रयुक्त होने वाली चिमटी एवं सँड़सी के नमूने भी मिले है[81]। इस संस्कृति के लोग बर्तनों में थाली एवं कटोरों का उपयोग करते थे, जिसके साक्ष्य बहुतायत से मिले हैं।

वस्त्र एवं आभूषण :

लौहयुगीन लोग निःसंदेह सूती वस्त्रों का उपयोग करते रहे होंगे, क्योंकि अतरंजीखेड़ा के उत्खनन में मिट्टी के बर्तनों पर सूती कपड़ों की छाप मिली है[82]। नरहन के प्रथमकाल से भी मृण्पात्रों पर सूती धागों की छाप दिखायी पडी है[83]। इन साक्ष्यों से विदित होता है कि प्रारम्भिक लौहकाल के लोग सूती वस्त्रों के प्रति आकर्षित थे।

इस संस्कृति के लोग आभूषण प्रेमी भी थे। क्योंकि इस काल के स्तरों से विविध प्रकार के आभूषण मिले हैं। इनमें कुछ ऐसे आभूषण हैं जो प्रायः लौहयुगीन सभी स्थलों एवं स्तरों से मिले हैं। इनमें मनकों का उल्लेख किया जा सकता है। ये मनके मिट्टी, शीशे एवं पत्थर के हैं। महिलाये हाथों में चूड़ियाँ पहनती रही होंगी। नरहन के द्वितीय काल (लौहकाल) से शीशे की बनी चूड़ियाँ मिली है[84]। यहाँ से अनेक लड़ियों वाला लटकन भी मिला है। सम्भवतः यह आभूषण कानों की शोभा बढ़ाने के निमित्त पहना जाता था। सोहगौरा से भी लटकन एवं मनके मिले हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कानों का यह आभूषण अधिक लोकप्रिय था। सम्भवतः स्त्री और पुरुष समान रूप से इस आभूषण को पहनते थे। उपर्युक्त आभूषण इस परिक्षेत्र के मानव–समुदाय की सौंदर्यप्रियता एवं ललित कला के प्रति रूझान की कहानी कहते हैं।

भवन निर्माण :

लौहयुग से जुड़े हुए पुरास्थलों से भवन–निर्माण की किसी निश्चित योजना के साक्ष्य नहीं मिले हैं। पकी हुयी ईटों के साक्ष्य भी इस काल के पुरास्थलों से नहीं मिले हैं। अपवाद के रूप में हरियाणा के भगवानपुरा से पकी हुई ईंट का साक्ष्य मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के लोग मिट्टी के बने कच्चे भवनों में रहते थे। कुछ पुरास्थलों से स्तम्भगर्त के साक्ष्य मिले हैं। सम्भवतः भवनों में बाँस–बल्ली का प्रयोग भी होता था। बाँस–बल्ली से बने भवनों की दीवालों को बाहर तथा भीतर, दोनों तरफ से मिट्टी से छाप–लीप कर सुन्दर एवं आरामदेह बनाया जाता रहा होगा, क्योंकि उत्खनन में छपाई–लिपाई में प्रयुक्त मिटटी के टुकड़ों पर सरकण्डों की छाप (Read Mark) दिखलायी पड़ती है। घरों के छाजन सम्भवतः घास–फूस के होते थे। नरहन के प्रथम काल से इस तरह के भवनों के साक्ष्य मिले हैं। यही परम्परा गोरखपुर परिक्षेत्र के प्रारम्भिक लौहयुगीन स्थलों पर भी रही होगी।

व्यापार-वाणिज्य :

लौह संस्कृति के लोगों का आर्थिक जीवन सम्भवतः वस्तु–विनिमय या अदला–बदली (Barter-System) पर आधारित था, क्योंकि इस संस्कृति के किसी भी पुरास्थल से सिक्कों के प्रचलन का प्रमाण नहीं मिला है। हस्तिनापुर के उत्खनन में लौहयुगीन स्तर से पत्थर के कुछ गोल टुकड़ों को उत्खाता ने बाट बतलाया है[85]। इन बाटों का प्रयोग सम्भवतः अनाज या अन्य वस्तुओं को तौलने के लिए किया जाता रहा होगा। गोरखपुर परिक्षेत्र से भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है जिसके आधार पर इनके आर्थिक जीवन की कोई स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। अतएव अनुमान लगाया जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र के बाहर लौहयुगीन स्थलों पर प्रचलित आर्थिक परम्परा का अनुसरण यहाँ भी किया गया होगा। इस परिक्षेत्र के लोग आपस में सांस्कृतिक सम्पर्क बनाए हुए थे, क्योंकि एक ही प्रकार के मनके यहाँ के विभिन्न पुरास्थलों से मिले हैं। मनकों की समानता के आधार पर इनके परस्पर व्यापारिक सम्पर्क को स्वीकार करना पड़ेगा।

धार्मिक दशा :

मानव एक बौद्धिक प्राणी है। उसकी यही बौद्धिकता उसे एक आध्यात्मिक सत्ता के प्रति आस्था एवं विश्वास के लिए प्रेरित करती रही है। दूसरे शब्दों में मानव सभ्यता ने जब से होश सँभाला है, उसका विश्वास एक अदृश्य शक्ति के प्रति रहा है। सभ्यता के विकास के साथ ही इस आध्यात्मिक सत्ता के स्वरूप में थोड़ा बहुत परिवर्तन होता रहा है और इसे विभिन्न अभिधानों से अभिहित किया जाता रहा है। फिर भी मूलतत्त्व आज भी वही है, जो सभ्यता के जन्म के समय था। मनुष्य इस मूलतत्व के प्रति अपनी आस्था की अभिव्यक्ति विविध कर्मकाण्डों के माध्यम से करता रहा है। समय के साथ इन कर्मकाण्डों में विविधता और

जटिलता आती गयी, लेकिन मृत्योपरान्त आत्मा की अमरता में जो विश्वास मानव–मस्तिष्क में उसके प्रारम्भिक दिनों में जागृत हुआ था, वह आज के इस वैज्ञानिक युग में भी कम नहीं हुआ है। आज भी हम मृत्यु को प्राप्त अपने पूर्वजों की सुख–सुविधा का ध्यान रखते हुए पिण्डदान की परम्परा का निर्वाह करते हैं। इसी तरह मृत्यु के उपरान्त अन्तिम संस्कार भी अनेक रूपों में किया जाता रहा है।

प्रारम्भिक लौह युग के लोग अपने मृतकों का अंतिम संस्कार किस प्रकार करते थे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण गोरखपुर परिक्षेत्र से नहीं मिला है। अपवाद स्वरूप, हरियाणा के भगवानपुरा से शव–विसर्जन के लिए दफनानें की प्रथा का प्रमाण मिला है[86]। इस काल के स्तरों से विभिन्न चौपायों, गाय, बैल, घोड़े आदि की मृण्मूर्तियाँ मिली हैं, लेकिन इनके धार्मिक प्रयोजन के विषय में हम कोई निष्कर्ष निकालने की स्थिति में नहीं हैं। इस सँस्कृति से सम्बन्धित स्थलों, खलौआ एवं अतरंजीखेड़ा से मिट्टी की हस्तनिर्मित मानव–मूर्तियाँ मिली है। सरयूपार परिक्षेत्र में अवस्थित सोहगौरा से भी मानव मृण्मूर्तियाँ मिली हैं, लेकिन इन मृण्मूर्तियों का क्या प्रयोजन था? कहना कठिन है।

गोरखपुर परिक्षेत्र में अवस्थित नरहन के उत्खनन में यहाँ के द्वितीय काल से मातृदेवी की दो मृण्मूर्तियाँ मिली हैं[87]। उल्लेख्य है कि मातृदेवी की पूजा सैन्धव सभ्यता में की जाती थी। सम्भव है कि यही परम्परा लौह युग में भी अनुसरण की जाती रही हो। साक्ष्यों के अभाव में इनके धार्मिक कर्मकाण्डों के विषय में भी कुछ कहना कठिन है। प्रायः सभी सभ्यताओं में आराध्य की आराधना के लिए कुछ विशेष पद्धतियों को अपनाया जाता रहा है। किन्तु इस परिक्षेत्र में लौहयुगीन स्तरों से ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिला है। इस संस्कृति से सम्बन्धित अन्य स्थलों से भी कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं मिला है। अतएव प्रारम्भिक लौहयुगीन मानव के धार्मिक परम्पराओं के विषय में अंतिम रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। अभी इस क्षेत्र में अनुसंधान एवं उत्खनन की आवश्यकता है। तभी इनके धार्मिक रीति–रिवाजों के विषय में कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

मृद्भाण्ड परम्परा :

गोरखपुर परिक्षेत्र में अवस्थित सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार का सीमित पैमाने पर उत्खनन हो चुका है। इन स्थलों में धुरियापार को छोड़कर प्रायः सभी जगह के लौह युगीन स्तरों से रेड वेअर की प्रधानता मिली है। धुरियापार का टीला कृषि–कार्यों के कारण क्षत–विक्षत हो चुका है। अतएव यहाँ बहुत सीमित पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। व्यापक पैमाने पर उत्खनन–कार्य होने की दशा में सम्भवतः यहाँ से भी रेड वेअर के अवशेष मिले होते। यहाँ के प्रथम काल से, जिसका समय लगभग 1300 ई0 पू0 से 600 ई0 पू0 के बीच रहा है, रेड वेअर के ठीकरे उपलब्ध हुए हैं[88]। धुरियापार के द्वितीयकाल (लौह युगीन स्तरों से, 600 ई0पू0 से 200 ई0पू0) से एन0 बी0 पी0 वेअर बहुतायत से मिले हैं[89]। यह पात्र परम्परा धुरियापार के अतिरिक्त

सोहगौरा और इमलीडीह के लौह युगीन स्तरों से भी सीमित मात्रा में मिली है। इमलीडीह में एन0 बी0 पी0 का मात्र एक ठीकरा मिला है[90]।

नरहन एवं इमलीडीह में लौहयुगीन स्तरों पर ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर पूरी तरह से गायब है। नरहन में इस स्तर पर ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की संख्या पूर्व काल की अपेक्षा अधिक है[91]। रेड–स्लिप्ड वेअर यहाँ अत्यन्त सीमित मात्रा में मिले है। प्लेन–रेड वेअर यहाँ की प्रमुख मात्र परम्परा है[92]। नरहन में ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के पात्रों में मुख्यतः कटोरे और थालियाँ हैं[93]। यहाँ रेड वेअर के मुख्य पात्रों में, थालियाँ, कटोरे, बेसिन्स (तसले) एवं कलश का उल्लेख किया जा सकता है[94]। इमलीडीह में ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की संख्या द्वितीय काल की अपेक्षा अधिक है[95]। ग्रे वेअर के कुछ ठीकरे भी यहाँ से उपलब्ध हुए हैं। यहाँ का तृतीय काल (800 ई0पू0 से 400 ई0पू0) नरहन के द्वितीय काल का समकालीन है।

यहाँ प्रारम्भिक लौहयुगीन स्तरों से जो लघु पुरावशेष मिले हैं, उनमें मिट्टी की चक्रिका, (Terracotta disc) मृद्भाण्डों से बनी चक्रिका (Pottery disc), बाणाग्र और हड्डी की प्वाइन्ट्स बहुतायत से मिले हैं। ध्यातव्य है कि नरहन के उत्खनन में बाणाग्र एवं हड्डी की प्वाइन्ट्स की संख्या 255 है। जबकि केवल द्वितीय काल में इनकी संख्या 194 है[96]। यहाँ से मनके भी मिले हैं, जो मिट्टी, काँच एवं सुलेमानी पत्थर के बने हैं[97]। यहाँ से मिट्टी के थपुआ एवं गेंद भी मिले हैं[98]। गेंद का सम्बन्ध निःसंदेह इनके खेल–जगत से था, लेकिन इनके खेल का स्वरूप क्या था, कहना मुश्किल है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह खेल इनके मनोरंजन का साधन रहा होगा। इसके अतिरिक्त इस परिक्षेत्र में पासे का खेल भी प्रचलित था जिसका सम्बन्ध निःसंदेह इनके मनोरंजन से था। नरहन के द्वितीय काल से उपलब्ध हड्डी एवं मिट्टी के बने हुए ये पुरावशेष विशेष महत्त्व के है।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (600 ई0पू0 से 200 ई0 तक)

विभिन्न साहित्यिक स्रोतों से यह स्पष्ट हो चुका है कि छठी शताब्दी ई0पू0 में कोसल राज्य की स्थापना के साथ ही इस क्षेत्र का राजनीतिक इतिहास प्रारम्भ हुआ। रामायण में उल्लिखित है कि 'कोशल राज्य के पश्चिम में गोमती, दक्षिण में सर्पिका या स्यंदिका (सई नदी), पूर्व में सदानीरा तथा उत्तर में नेपाल की पहाड़ियाँ थीं[99]। बौद्ध साहित्य से भी इसकी पुष्टि होती है[100]। इन साक्ष्यों से स्पष्ट है कि कोशल राज्य में सरयू के उत्तर और पूर्व का भाग सम्मिलित था। इस प्रकार आधुनिक बहराइच, गोंडा, बस्ती, महराजगंज, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर और देवरिया जनपद पर कोशल का आधिपत्य था। छठीं शदी ई0 पू0 का एक सुप्रसिद्ध राजनीतिक तथ्य, काशी एवं कोशल के बीच परस्पर शत्रुता है। महावग्ग जातक में काशीराज द्वारा कोशल पर आक्रमण का उल्लेख मिलता है। महात्मा बुद्ध के समय कोशल में प्रसेनजित शासन कर रहा था।

कालांतर में विभिन्न राजनीतिक एवं भौगोलिक परिस्थितियों ने मगध के नेतृत्व में साम्राज्य स्थापना में योग दिया। तत्पश्चात् मौर्य शासकों ने अपने कुशल नेतृत्व में भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल भू–भाग पर साम्राज्यवाद को यथेष्ट अर्थ प्रदान किया। पुनः शुंगों एवं कुषाणों ने भारतीय इतिहास में अपनी अहम् भूमिका निभायी। इस प्रकार भारतीय इतिहास, विभिन्न उतार–चढ़ावों के दौर से गुजरता हुआ, गुप्त नरेशों के काल में जाकर कुछ समय के लिए स्थिर हो सका था।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के अन्तर्गत छठीं शताब्दी ई0 पू0 से लेकर 200 ई0 तक की सांस्कृतिक गतिविधियों का विवेचन अभीष्ट है। इस युग के प्रारम्भ में भारतीय उपमहाद्वीप में एक नवीन पात्र–परम्परा अस्तित्व में आयी, जो लगभग द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई0 पू0 तक प्रचलन में रही। इस पात्र–परम्परा को उत्तरी काली चमकीली (एन0 बी0 पी0) पात्र परम्परा के नाम से अभिहित किया गया। अतएव यहाँ एन0 बी0 पी0 युग एवं बाद की कुछ शताब्दियों (लगभग 200 ई0 तक) की सांस्कृतिक गतिविधियों की चर्चा की जा रही है। एन0बी0पी0 युग के पश्चात् शुंग एवं कुषाण काल की सांस्कृतिक गतिविधियों का विवेचन किया जा रहा है।

भारतीय इतिहास के संदर्भ में छठीं शताब्दी ई0 पू0 का महत्त्व बहुआयामी है। यही वह सीमा रेखा है, जहाँ से एक ओर लौह तकनीक का व्यापक पैमाने पर प्रचलन प्रारम्भ हुआ, वहीं दूसरी ओर उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा अस्तित्व में आयी। उत्तर भारत के पुरातत्त्व में यह पात्र–परम्परा, अपनी पूर्ववर्ती एवं परवर्ती पुरातात्त्विक संस्कृतियों के तिथिक्रम के लिए एक निश्चित आधार प्रस्तुत करती है। भारत के पुरास्थलों पर यह पात्र–परम्परा उसी प्रकार विशिष्ट है, जिस प्रकार यूरोप महाद्वीप के भूमध्य सागर के तटवर्ती क्षेत्रों में 'टेरा सिगलाटा' नाम की पात्र परम्परा है[101]। इसके अतिरिक्त धार्मिक एवं आर्थिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भी छठी शदी ई0 पू0 का महत्त्व उल्लेखनीय है। धार्मिक क्षेत्र में जैन एवं बौद्ध धर्मों के उदय से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का अन्त हुआ, जो शताब्दियों से रूढ़िगत मान्यताओं में जकड़ी हुयी थी। आर्थिक क्षेत्र में लौह तकनीक के प्रचलन ने गंगा घाटी में द्वितीय नगरीय क्रांति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। राजनीतिक इतिहास के लिए भी यह तिथि एक निश्चित आधार प्रस्तुत करती है, क्योंकि यहीं से भारतीय इतिहास के लिखित साक्ष्य प्राप्त होने लगते हैं।

1934 ई0 में सर्वप्रथम एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के साक्ष्य प्रकाश में आये[102]। तक्षशिला (पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले में स्थित है।) में इस पात्र परम्परा से सम्बन्धित तीन टीले हैं, जिन्हें क्रमशः भीरटीला, सिरकप तथा सिरसुख कहा जाता है। मार्शल ने इसे 'काली काचित पात्र परम्परा' के नाम से अभिहित किया था। मार्शल समझते थे कि यूनानी पात्र परम्परा से मिलती–जुलती यह पात्र परम्परा उसी की अनुकृति है।

इस पात्र परम्परा का प्रचलन मुख्य रूप से उत्तरी भारत, विशेषतः मध्य गंगा घाटी (पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार) में ही दृष्टिगोचर होता है। इस भौगोलिक सीमा में इस तरह के जितने भी पात्र–खण्ड मिले, सभी काले रंग के थे। प्रारम्भ में विद्वानों ने इस पात्र–परम्परा की चमक को पालिश समझ लिया था। उपर्युक्त तथ्यों के पृष्ठाधार में इस पात्र–परम्परा का नामकरण, उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड–परम्परा (ओपदार पात्र परम्परा) किया गया। यद्यपि बाद में इस पात्र–परम्परा के दोनों विशेषणों, उत्तरी एवं काले रंग, पर आपत्तियाँ उठायी गयी, लेकिन तब तक हम इसे उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा के नाम से पुकारने के अभ्यस्त हो चुके थे। अतएव इन विशेषणों के यथेष्ट न होने की दशा में भी यह नामकरण रूढ़ हो चुका है। फलतः इसे आज भी इसी नाम से पुकारा जाता है। इस पात्र–परम्परा के ठीकरे न केवल उत्तरी भारत, अपितु पूर्वी, दक्षिणी एवं पश्चिमी भारत से भी मिलते हैं। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ में विद्वान् जिसे पालिश समझ बैठे थे, वह पालिश न होकर प्रलेप है।

एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के अवशेष सरयूपार, विशेषतः गोरखपुर परिक्षेत्र के विभिन्न उत्खनित एवं सर्वेक्षित स्थलों से मिल चुके हैं। इन स्थलों में सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार, तुलसीडीह, ब्रह्मपुर (आजमगढ़) एवं लालमनपुर (आजमगढ़) इत्यादि उल्लेखनीय हैं। इस पात्र–परम्परा का निर्माण, अच्छी तरह से गूँथी एवं मर्दित मिट्टी से किया जाता था। चाक पर निर्मित यह पात्र–परम्परा अत्यन्त पतले एवं हल्के रूप में मिलती है। बर्तन को अत्यन्त ऊँचे तापक्रम पर पकाया गया है। इस मृद्भाण्ड–परम्परा के पात्र–प्रकारों में सीधे किनारे वाली थालियाँ, सीधे एवं उन्नतोदर कटोरे, ढक्कन, कोखदार, हाँड़ियाँ, तथा कलश का उल्लेख किया जा सकता है। बर्तनों की औसत मोटाई के आधार पर इसे तीन श्रेणियों, मोटे, मध्यम एवं पतले में विभाजित किया जा सकता है। इससे सम्बद्ध पात्र–परम्पराओं में लाल रंग के पात्र, मोटे धूसर पात्र, कृष्ण लेपित मृद्भाण्ड उल्लेखनीय हैं। नरहन में तृतीय काल से इन पात्रों के साथ ही रज्जु–छाप पात्र का एक ठीकरा भी मिला है[103]। लेकिन यह विन्ध्यक्षेत्र एवं मध्य गंगा घाटी के नवपाषाणिक स्तरों से मिले कार्डेड वेअर से कुछ भिन्न प्रकार का है[104]। इमलीडीह के तीसरे काल से एन0 बी0 पी0 का एक ठीकरा प्राप्त हुआ है[105]। यद्यपि धुरियापार के द्वितीय काल की प्रतिनिधि पात्र परम्परा एन0 बी0 पी0 है, तथापि इससे सम्बद्ध अन्य पात्र परम्पराओं के ठीकरे भी उपलब्ध हुए है[106]।

लौह उपकरण :

यद्यपि उत्तर भारत में लोहे का प्रचलन 1000 ई0 पू0 में प्रारम्भ हो चुका था, तथापि इसका व्यापक रूप से प्रचलन एन0 बी0 पी0 काल में हुआ। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लौह तकनीक से प्रभावित था। इस तकनीक के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि–कार्य के साथ ही घरेलू उद्योगों एवं वास्तुकला पर भी पड़ा। इन तथ्यों के आलोक में कहा जा सकता है कि इस युग के लोग लौह अयस्क को पिघलाने एवं प्राप्त लोहे को

पीटकर उपकरण बनाने की तकनीक में प्रगति कर चुके थे। लौह उपकरणों के व्यापक प्रचलन का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र में भी पड़ा। लौह उपकरणों में बाण फलक, भाले के शीर्ष, वर्छी, कीलें, खुरपी, बसुला, छेनी तथा कड़ाही, विभिन्न क्षेत्रों से उपलब्ध हुए हैं। नरहन के उत्खनन से भी ताँबे एवं लोहे की बनी वस्तुएँ मिली है[107]। लोहे की लोकप्रियता के कारण ताँबे का प्रयोग अपेक्षाकृत सीमित हो गया। ताँबे का प्रयोग अब सिक्कों के निर्माण, अंजनशलाकाओं, खिलौनों, मुद्रिकाओं एवं मनकों आदि के बनाने में किया जाने लगा[108]।

कृषि एवं पशुपालन :

कृषि इस युग के लोगों की जीविका का प्रमुख साधन था। क्योंकि इस युग तक आते–आते शिकार में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों यथा– हड्डी के प्वाइन्ट्स (Bone Points) एवं बाण फलकों (Arrowheads) की संख्या अत्यन्त सीमित हो गयी थी[109]। इन साक्ष्यों के आलोक में ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जीवन कृषि पर पूरी तरह निर्भर हो चुका था। इस युग के लोग चावल, (Oryza Sativa) गेहूँ, मूँग, कोदो, मटर, खेसारी और तिल की खेती करते रहे होंगे। नरहन से इनके दाने उपलब्ध हुए हैं[110]। फलों में बेर के बीज (Fruit-ston of Jujube) और आँवला के टुकड़े (Endocrap Pieces of Anwala) भी नरहन से मिले हैं[111]।

पशुपालन इनके आर्थिक जीवन का दूसरा प्रमुख आधार था। इस युग से सम्बन्धित विभिन्न पुरास्थलों के उत्खनन से गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े एवं सुअर आदि की हड्डियाँ मिली हैं। नरहन से प्राप्त कुछ सिक्कों पर हाथी का अंकन हुआ है। सम्भवतः ये सभी पशु इनके पालतू रहे होंगे। यद्यपि नरहन के उत्खनन में इस युग के स्तरों से इन पशुओं की हड्डियाँ नहीं मिली हैं, लेकिन यहाँ इसके पूर्व के स्तरों से इन पशुओं की हड्डियाँ मिल चुकी हैं। मांस भी इनके भोजन का एक अंग था। इसके प्रमाण स्वरूप पशुओं की कुछ ऐसी हड्डियाँ मिली हैं जिन पर धारदार हथियार से हलाल करने के निशान मिले हैं। कृषि–कार्य में भी पशुओं का, विशेषतः बैलों का सहयोग लिया जाता रहा होगा। लोहे के बने फालों से द्योतित होता है कि इन हलों को बैल खींचते रहे होंगे। भारवहन में भी बैलों एवं घोड़ों को प्रयुक्त किया जाता रहा होगा। इसके अतिरिक्त दूध, दही एवं घी के लिए भी इनकी उपयोगिता रही होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव ने कृषि एवं पशुपालन की जो परम्परा नवपाषाण काल में शुरू की थी वह उत्तरोत्तर परिष्कृत होते हुए वर्तमान समय में भी चल रही है।

अभिलेख एवं मुद्राएँ :

भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण एवं उसके स्वरूप को समझने में अभिलेखों की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण है। भारत में ऐतिहासिक महत्त्व के अभिलेखों की संख्या सर्वाधिक है। इतना ही नहीं, विश्व में ऐसा

कोई भी देश नही है, जिसके प्राचीन इतिहास का पुनर्निमाण अभिलेखों पर इतना अधिक निर्भर हो। अभिलेखों के अभाव में अशोक महान, शक्तिशाली गुप्त नरेश, एक पहेली ही रह जाते। इसके अतिरिक्त हर्ष एवं उत्तर भारत पर शासन करने वाले अन्य अनेक राजवंशों के इतिहास की जानकारी से हम वंचित रह जाते। इस प्रकार इतिहास, विशेषतः भारतीय इतिहास के संदर्भ में, अभिलेखों को प्राथमिक महत्त्व के साधन के रूप में स्वीकार किया जा सकता है।

गोरखपुर जनपद से उपलब्ध समस्त अभिलेख दानपरक हैं। इस जनपद से आठ अभिलेख प्राप्त हुए हैं। इनमें सोहगौरा से प्राप्त ताम्रपत्र विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह भारत के प्राचीनतम तीन अभिलेखों, पिपरहवा, भट्टप्रोलु में से एक है। ये सभी अभिलेख कांस्य–ताम्र पर उत्कीर्ण हैं। इनका सम्बन्ध मौर्य, कलचुरि और गाहडवाल युग से है। सोहगौरा से उपलब्ध कांस्यपत्राभिलेख मौर्य काल का है। जनपद से एक अभिलेख कलचुरि शासक सोढ़देव का भी मिला है। शेष छः अभिलेखों का सम्बन्ध गाहडवाल राजवंश से है। उल्लेखनीय है कि गोरखपुर जनपद से अब तक कोई प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध नहीं हुआ है। यद्यपि सरयूपार के अन्य क्षेत्रों से कुछेक प्रस्तर अभिलेख मिले हैं, लेकिन इनकी संख्या अत्यन्त सीमित है। अशोक के बाद गुप्तकाल तक की अवधि का एक भी प्रस्तर अभिलेख इस क्षेत्र में नहीं मिलता, जिसका प्रधान कारण प्रस्तर की अनुपलब्धता है। द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से गुप्तों के उदय के पूर्व की अवधि में उत्तर–भारत के विभिन्न भागों से प्राप्त होने वाले सभी अभिलेख प्रायः धार्मिक प्रसंग से जुड़े हुए हैं। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने कुशीनगर में अशोक द्वारा स्थापित दो स्तम्भ देखे थे। बौद्ध केन्द्रों पर अशोक ने स्तम्भों की स्थापना की थी।

गोरखपुर जनपद में सोहगौरा से उपलब्ध कांस्य पत्राभिलेख सर्वाधिक प्राचीन अभिलेख है। जनपद से कलचुरि एवं गाहडवाल वंशों के जो अभिलेख मिले हैं, उनकी व्याख्या यहाँ करना यथेष्ट नहीं है, क्योंकि प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के लिए निर्धारित समय सीमा के अन्तर्गत वे नहीं आते हैं। इसके अतिरिक्त गोरखपुर के सीमावर्ती जनपदों से भी कुछ अभिलेख मिले हैं। इनकी भी व्याख्या यहाँ सम्भव नहीं है, क्योंकि ये भी निर्धारित समय सीमा एवं भौगोलिक सीमा के बाहर हैं। सोहगौरा कांस्य पत्राभिलेख यहाँ व्याख्या की दृष्टि से उपयुक्त है। अतएव निम्नलिखित पंक्तियों में इसकी विशेषताओं की चर्चा की जा रही है–

सोहगौरा कांस्य पत्राभिलेख :

यह अभिलेख गोरखपुर जिले के बाँसगाँव तहसील के सोहगौरा ग्राम से मिला था। यह स्थल गोरखपुर वाराणसी राजमार्ग पर स्थित कौड़ीराम से लगभग 3 किमी0 पूरब, राप्ती एवं आमी नदियों के संगम पर स्थित है। यह अभिलेख स्थानीय जमींदार पंडित सर्वजीत राम त्रिपाठी को मिला था, लेकिन इसे प्रकाश में लाने का श्रेय डॉ0 हुई (गोरखपुर के जिलाधिकारी) को दिया गया। डॉ0 टी0 पी0 वर्मा[112] के अनुसार यह अभिलेख बाँसगाँव से प्राप्त हुआ था लेकिन किसी कारण यह सोहगौरा पहुँच गया। फलतः इसका परिचय

सोहगौरा के साथ जुड़ गया। सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ कि टीले के दक्षिणी भाग में भवन–निर्माण के लिए नींव खोदने के दौरान यह अभिलेख प्रकाश में आया।

अभिलेख कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के पास सुरक्षित था, लेकिन वर्तमान समय में यह वहाँ से गायब हो चुका है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि तीसरी शताब्दी ई0 पू0 की ब्राह्मी है। डॉ0 राजबलि पाण्डेय जैसे कुछ विद्वान् इसे प्राग्–मौर्य युग का मानते हैं। परन्तु डॉ0 डी0सी0 सरकार का विचार है कि इसके व' (पंक्ति 2), 'ड' (पंक्ति 2) ह्रस्व 'इ' की मात्रा (यथा पंक्ति 1 के 'ति' तथा चौथी पंक्ति के 'यि' अक्षरों में), निश्चय ही अशोक के बाद की तिथि की द्योतक है। लेख में कोई तिथि नहीं दी गयी है। अभिलेख के ऊपर तीन मंजिले मकानों के चित्र, प्राकार में वृक्ष, कमल की कली तथा मेरू पर चन्द्र चिन्ह का अंकन हुआ है। प्रारम्भ में इसे ताम्र–पत्र स्वीकार किया गया था, किन्तु कालान्तर में डॉ0 डी0 सी0 सरकार ने अपने निरीक्षण के दौरान इसे कांस्य धातु का बताया[113]। इस अभिलेख की ऊँचाई 2 ½ इंच, चौड़ाई 1 7/8 इंच एवं मोटाई 1 इंच है। इसका भार 5 1/5 तोला है। डॉ0 स्मिथ ने इसे ढालकर निर्मित किया गया बताया है। डॉ0 हार्नले ने पट्ट के धरातल के खुरदरे पन को देखकर सम्भावना व्यक्त किया था कि इसका साँचा बालुकामय मिट्टी से निर्मित किया गया होगा। डॉ0 फलीट का अनुमान है कि इसे (कांस्यपत्र को) कड़े साँचे में ढालकर बनाया गया होगा[114]। कांस्यपत्र के चारों कोनों पर चार छिद्र बने हुए हैं, जिनका उपयोग इसे (कांस्य पत्र को) टाँगने के लिए किया जाता होगा।

इस अभिलेख का प्रयोजन श्रावस्ती के महामात्यों के शासनादेश पर दो कोष्ठागारों के निर्माण एवं उनसे केवल आपात्काल में (दुर्भिक्ष के समय) अन्न का वितरण है। मौर्यकाल में 12 वर्षो के दुर्भिक्ष (अकाल) की चर्चा, जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन में भी मिलती है। वस्तुतः इस क्षेत्र में आज भी प्रतिवर्ष बाढ़ आती रहती हैं, जिसकी त्रासदी यहाँ के लोगों को भुगतनी पड़ती है। सम्भवतः बाढ़ की यह आपदा उस समय भी आती रही होगी, जिसकी चर्चा उक्त अभिलेख में हुयी है।

यह अभिलेख निम्न तथ्यों को उद्घाटित करता है–

1. प्राचीन भारत में अकाल की त्रासदी से निपटने के लिए कोष्ठागार निर्माण तथा उसमें संग्रहीत अन्न के वितरण की जानकारी मिलती है। यह अन्न वितरण के लिए प्रथम आभिलेखिक प्रमाण है।
2. अभिलेख के ऊपर वास्तु संरचना का प्रथम बार अंकन हुआ है।
3. लेख के ऊपर कोष्ठागारों, कमल की कली, वेदिका से परिवेष्टित वृक्ष (Tree in railing) तथा पर्वत पर चन्द्र के चिन्हों का अंकन हुआ है। ये सभी दृश्य मौर्य युगीन आहत मुद्राओं (Punch marked coins) पर दृष्टिगोचर होते हैं।

4. गोरखपुर जनपद से प्राप्त प्रथम राजकीय अभिलेख।

5. मौर्य काल में अभिलेख लेखन हेतु धातु का प्रयोग।

6. प्रशासनिक दृष्टि से तृतीय शताब्दी ई0 पू0 में गोरखपुर परिक्षेत्र श्रावस्ती के महामात्यों के अन्तर्गत आता था।

सिक्के :

सिक्कों से जहाँ एक ओर सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक इतिहास के निर्माण में सहायता मिलती है, वहीं दूसरी ओर इसके आगमन से मानव की आर्थिक प्रगति की सूचना भी मिलती है। प्रारम्भिक ऐतिहासिक संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता, सिक्कों के सर्वप्रथम प्रचलन को माना जा सकता है। आर्थिक जीवन में जटिलता आ जाने के कारण वस्तु-विनिमय में परेशानी होने लगी। फलतः ताम्र एवं रजत के आहत सिक्कों का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। ये सिक्के भारत के प्राचीनतम सिक्के हैं। इन्हीं धातुओं से निर्मित लेख रहित ढली हुयी मुद्राओं की गणना, आहत मुद्राओं की समकालिक मुद्रा के रूप में की जा सकती है। सिक्कों के प्रचलन से एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के काल में व्यापार-वाणिज्य के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुयी।

गोरखपुर जनपद के विभिन्न क्षेत्रों से प्राचीन मुद्राएँ मिली हैं, जो रजत, ताम्र एवं स्वर्ण धातु की हैं। इसके अतिरिक्त सीमावर्ती अन्य जनपदों से भी प्राचीन मुद्राएँ उपलब्ध हुयी हैं, जिनका यहाँ प्रसंगतः मात्र उल्लेख किया जा रहा है, व्याख्या नहीं। क्योंकि ये जनपद, विषय की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण करते हैं। जनपद के जिन स्थलों से ये मुद्राएँ मिली हैं वे इस प्रकार हैं- फरेन्दा तहसील में बनरसिहा एवं परसादयाराम, गोरखपुर सदर तहसील में गुलरिहा बाजार, कुसमौल या कुसमौली, कटौरा, सहजनवाँ तथा राहुल सांकृत्यायन संस्थान अलीनगर, गोरखपुर और बाँसगाँव तहसील में सोहगौरा, नरहन, दुघरा, मकन्दपुर, गुरसानी, कोटवा, गोपालपुर। इस प्रकार जनपद में कुल 14 स्थलों से प्राचीन मुद्राएँ मिली हैं। इनके अतिरिक्त जनपद से कुछ ऐसी भी मुद्राएँ मिली हैं, जिनके प्राप्ति स्थल अज्ञात हैं। राहुत सांस्कृत्यायन संस्थान गोरखपुर, बनरसिहा, सोहगौरा, नरहन, मकन्दवार तथा सहजनवां से प्राप्त मुद्राओं के अतिरिक्त सभी सिक्के निधियों से प्राप्त हैं। धातुओं में सर्वाधिक रजत-मुद्राएँ है। संख्या की दृष्टि से रजत के बाद क्रमशः स्वर्ण एवं ताम्र मुदाएँ हैं।

उपर्युक्त स्थलों के अतिरिक्त सीमावर्ती अन्य जनपदों में भी इन मुद्राओं का प्रसार हुआ था। इनमें खारपुर या खानपुर (महराजगंज), पिपरहवा-गेनवरिया-कपिलवस्तु (बस्ती) श्रावस्ती (गोण्डा) तथा कुशीनगर से भी प्राचीन मुद्राएँ मिली हैं।

इस प्रकार सरयूपार क्षेत्र से प्राचीन मुद्राएँ बहुतायत से मिली हैं। इनमें आहत, कास्ट (Cast), कुषाण, पांचाल, अयोध्या एवं गुप्त शासकों की मुद्राएँ मिली हैं। गोरखपुर जनपद से प्राप्त सिक्के मुख्यतः आहत, कास्ट (ढली हुयी) अयोध्या, पांचाल, कुषाण, इण्डो ससैनियन, गुप्त एवं पूर्व मध्यकालीन हैं। इनमें कुछ मुद्राएँ उत्खनन एवं कुछ धरातल से मिली हैं। जनपद से उपलब्ध अधिसंख्य मुद्राओं का पूर्ण विवरण उपलब्ध न होने के कारण यहॉ उनका सम्यक विवेचन सम्भव नहीं है।

गोरखपुर जनपद से प्राप्त सिक्कों में आहत मुद्राओं की संख्या सर्वाधिक है। आहत मुद्राएँ रजत, स्वर्ण एवं ताम्र, तीनों धातुओं से बनी हैं। इनमें 309 रजत, 2 स्वर्ण तथा 27 ताम्र की हैं। नरहन के तीसरे काल से ताँबें का एक कास्ट सिक्का मिला है। इसी काल से एक निधि मिली है, जिसमें 48 आहत सिक्के एवं तीन धातु के टुकड़े मिले है[115]। रजत आहत मुद्राएँ गुलरिहा बाजार, परसादयाराम तथा नरहन से मिली हैं। स्वर्ण आहत मुद्राएॅ, डोमिनगढ़ से तथा ताम्र सिक्के बनरसिहा एवं सोहगौरा से मिले हैं।

जनपद से प्राप्त आहत सिक्के लेख रहित हैं। इन सिक्कों के अध्ययन का आधार उन पर अंकित चिन्ह है, जिनकी सहायता से इन्हें विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करने का प्रयास विद्वानों द्वारा किया गया है[116]।

जनपद से उपलब्ध आहत सिक्कों की धातुओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन आर्थिक स्थिति सुदृढ़ थी। ढली हुयी मुद्राएँ सोहगौरा[117] और नरहन[118] से प्राप्त हैं। कास्ट सिक्के अधिकतर रजत आहत मुद्राओं के साथ मिलते हैं, तथा इन पर भी आहत मुद्राओं की भाँति पाँच चिन्ह पाये जाते हैं। अतएव इन्हें मौर्य–युग से सम्बद्ध किया जाता है। गोरखपुर से जो आहत रजत मुद्राएँ मिली हैं, वे सम्भवतः अशोक के काल की रही होंगी। अशोक के समय में मौर्य साम्राज्य काफी समृद्ध था।

गोरखपुर जनपद से अयोध्या एवं पांचाल जनपदों की मुद्राएँ प्राप्त हुयी हैं। एक सिक्का अग्निमित्र का उपलबध हुआ है। ये सभी सिक्के सोहगौरा उत्खनन से प्राप्त हुए हैं। अयोध्या के सिक्कों का इस क्षेत्र से प्राप्त होना स्वाभाविक है, लेकिन सुदूर पांचाल सिक्कों का यहाँ मिलना एक अनोखी बात है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि पांचाल नरेश का शासन यहाँ कभी था। ऐसी स्थिति में यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सिक्के यात्रा के सिलसिले में यहाँ आ गये हों।

कुषाण मुद्राओं एवं मृण्मूर्तियों की, इस क्षेत्र में बहुलता के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश पर कुषाणों का शासन रहा होगा। गोरखपुर के पार्श्ववर्ती जनपदों में सम्भूरिया (देवरिया) तथा पिपरहवा (बस्ती) से भी प्रभूत मात्रा में कुषाण मुद्राएँ मिली हैं[119]। जनपद के सोहगौरा, दुघरा, मकन्दवार एवं सहजनवाँ से कुषाण मुद्राएँ मिली हैं। दुघरा और मकन्दवार से प्राप्त सिक्कों की धातु एवं संख्या अज्ञात है, किन्तु सहजनवाँ एवं सोहगौरा से प्राप्त सिक्के ताम्र के है। उपर्युक्त साक्ष्यों के आधार पर यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि गोरखपुर क्षेत्र कुषाण शासन के अन्तर्गत था। सीमावर्ती बस्ती जनपद के

पिपरहवा नामक स्थल से एक मुद्रा छाप प्राप्त हुआ है, जिस पर *'देवपुत्र बिहारे कपिलवत्थु भिक्खु संघस'* लेख अंकित है। उल्लेख्य है कि 'देवपुत्र' शब्द का प्रयोग कुषाण राजाओं के लिए किया जाता था। अतएव इन साक्ष्यों से इस क्षेत्र पर कुषाणों की सत्ता की पुष्टि होती है।

गोरखपुर जनपद के कुसमौली या कुसमौल (सदर तहसील) नामक स्थल से इण्डो–ससैनियन शासकों की 8 (आठ) रजत मुद्राएँ प्राप्त हुयी हैं। ये सिक्के रा0 सं0 ल0 से जमाकर्ता व्यक्ति को लौटा दिया गया[120]।

कलावशेष :

(1) वास्तुकला :– इस काल में भवन–निर्माण के क्षेत्र में मिट्टी, घास, फूस एवं बाँस बल्ली से निर्मित भवनों की परम्परा के साथ ही, भट्ठे में पकी हुयी ईंटों से मकान बनाने की एक नयी परम्परा की शुरूआत हुयी। इसके प्रमाण भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रों से मिल चुके हैं। गोरखपुर जनपद में प्राचीन संरचनाओं के अवशेष अथवा ईंटों के ढेर सोहगौरा, नरहन, उपधौलिया (निकट चिलुआताल), देवकली (निकट गगहा), ददेवकली (निकट कौड़ीराम), देईपार (निकट सहजनवाँ), डोमिनगढ़ (निकट गोरखपुर शहर) तथा पीपीगंज के निकट भीटी से उपलब्ध हुए हैं।

नरहन के तृतीय काल से कच्ची ईंटों से निर्मित भवन के साथ ही मिट्टी एवं लकड़ी की संरचनाएँ भी मिली हैं[121]। नरहन के चतुर्थ काल (200 ई0पू0 से 300 ई0पू0) से पकी हुयी ईंटों से निर्मित भवनों के साक्ष्य मिले हैं। इनमें प्रयुक्त ईंटों का आकार 44 × 23 × 6 सेमी0 है[122]। यहाँ से रिंग–वेल (वलय–कूपों) के प्रमाण भी मिले हैं। इन कूपों का व्यास 0.70 सेमी0 है। सम्भवतः इनका निर्माण स्वच्छता एवं सफायी की दृष्टि से किया जाता था। इस युग में सफायी की दृष्टि से सछिद्र घड़ों को जोड़कर सोख्ता गड्ढों (Sokag-Pits) का निर्माण भी किया जाता था।

सोहगौरा में एन0 बी0 पी0 के सर्वोच्च स्तर का निर्माण आवास के गिरे हुए मलवे से हुआ है। इन साक्ष्यों (मलवे से उपलब्ध) से ई0 पू0 द्वितीय–तृतीय सदी में आवास निर्माण की विधि पर प्रकाश पड़ता है। इनमें प्रयुक्त ईंटों का आकार 45 × 28 × 10 तथा 32 × 24 × 6 सेमी0 है। छत का निर्माण, मिट्टी में भूसा मिलाकर इसे धरन तथा करी के ऊपर परत के रूप में जमा दिया जाता था। उत्खनन में, मिट्टी की छत के खण्ड, पके हुए मिले हैं। इन पर धरन तथा करी के निशान हैं[123]।

देवकली में ईंटों के ढेर मिले हैं, जिनमें कुछ ही सुरक्षित है। इनका आकार 30 × 19 × 6 सेमी0 है। इन ईंटों से मिलते–जुलते आकार की ईंटें गेनवरिया (सिद्धार्थनगर) के उत्खनन से प्राप्त हुयी हैं, जिनका

काल प्रथम शताब्दी ई0 से तृतीय शताब्दी ई0 है। अतएव देवकली के ईंटों के लिए भी यही तिथि प्रस्तावित की जा सकती है।

कौड़ीराम के निकट के देवकली से भी प्राचीन भवन संरचनाओं के साक्ष्य मिले हैं। यहाँ ईंटों का आकार 20 × 16 × 5 सेमी0 है। इन ईंटों से मिलते–जुलते आकार की ईंटें, श्रावस्ती के तीसरे काल के उपकाल 2 से प्राप्त है[124] जिनका समय प्रथन शदी ई0 से प्रारम्भ होता है।

सहजनवां के निकट स्थित देईपार के टीले से 35 × 25 × 5 सेमी0 आकार की ईंटें मिली हैं। इन ईंटों से मिलते जुलते आकार की ईटें (35 × 22 से 21 × 8 × 7) सेमी0 गेनवरिया के द्वितीय काल के द्वितीय चरण (Phase) से मिली हैं[125]। गेनवरिया के द्वितीय काल के लिए छठी सदी ई0 पू0 से द्वितीय सदी ई0 पू0 के बीच का समय प्रस्तावित है। अतएव देईपार से मिले ईटों के लिए यह तिथि उपयुक्त होगी।

डोमिनगढ़ से 44 × 24 × 4 सेमी0 आकार की ईटें, टीले के दीवार से मिली हैं। श्रावस्ती के द्वितीय काल के तृतीय चरण से 46 से 42 × 22.5 × 7 सेमी0 आकार की ईटें मिली हैं,[126] जो डोमिनगढ़ की ईटों से मिलती–जुलती हैं। श्रावस्ती के दूसरे काल के तीसरे चरण के लिए 125 ई0 पू0 से 50 ई0 पू0 के बीच की तिथि निर्धारित की गयी है। अतएव यही तिथि डोमिनगढ़ से उपलब्ध ईटों के लिए भी प्रस्तावित की जा सकती है।

मूर्तिकला (मृण्मूर्ति) :

भारत में मृण्मूर्तियों का इतिहास बहुत पुराना है। यद्यपि इसकी प्राचीनता ताम्राश्म–युग तक जाती है तथापि एन0 बी0 पी0 काल में यह उद्योग काफी प्रगति कर चुका था। हड़प्पा, मोहनजोदड़ों, सिन्ध और बलुचिस्तान जैसे ताम्राश्म युगीन स्थलों से प्रचुर मात्रा में मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। उत्तरी भारत के ऐतिहासिक स्थलों, तक्षशिला, श्रावस्ती, पिपरहवा, अहिच्छत्रा, पाटलिपुत्र, बसाढ़, राजघाट, मथुरा, कोसम, बेसनगर संकिसा आदि पुरास्थलों से प्रचुर मात्रा में मृण्मूर्तियाँ प्रकाश में आयी हैं[127]।

मृण्मूर्तियों से जन साधारण की धार्मिक आस्था एवं सामाजिक जीवन का द्योतन होता है। वस्तुतः मृण्मूर्ति कला से भारतीय सांस्कृतिक चेतना का परिचय मिलता है। मृण्मूर्तियाँ प्रायः धार्मिक एवं मनोरंजन दोनों ही दृष्टियों से बनायी जाती थीं, जिनसे लोक–हृदय प्रतिबिम्बित होता है। इस युग में हाथी, घोड़े, वृषभ, कुत्ते, भेडा (Ram) तथा हिरण आदि पशुओं और कच्छप तथा सर्प आदि सरीसृपों एवं चिड़ियों की हस्त–निर्मित मूर्तियाँ मिलती हैं। आँखों को एक गोले (वृत्त) के अन्दर छेद करके बनाया गया है। पशुओं की मृण्मूर्तियों को छोटे–छोटे गोलों (Circlets) के ठप्पे लगाकर (Punch) गहरे रेखांकन तथा किसी चीज से दबाकर बनायी

गयी पत्तियों (Impressed Leaf Desings) के द्वारा सजाया–सँवारा गया है। अधिकाँश मृण्मूर्तियाँ लाल रंग की हैं, जिनके ऊपर गेरू के गहरे घोल का प्रलेप (Red Slip) चढ़ाया गया है।

पशुओं की मृण्मूर्तियों के अलावा मानव मृण्मूर्तियों को साँचे में (Mould) ढालकर बनाये गये कतिपय नमूने भी मिलते हैं। आँखों को एक छोटे से वृत्त या केवल रेखांकन के द्वारा, और बालों को प्रदर्शित करने के लिए, सिर पर गहरी रेखाएँ खींच दी गयी हैं, तथा नाक बनाने के लिए मिट्टी को चुटकी से दबा दिया गया है। कालांतर में बड़े–बड़े कर्णपटल (Ear Obes) और उनमें चक्राकार कर्णफूल (Rosettes), गले में भारी कामदार हारावली आदि का निर्माण आसञ्जन विधि (Applique Technique) से किया गया है। स्त्री मृण्मूर्तियों को भव्य शिरोवेशभूषा, (Eloborate head dresses) कर्णाभरण एवं हारावली से अलंकृत किया गया है। स्त्री मृण्मूर्तियों के वस्त्रालंकरण पर्याप्त एवं लहराते हुए (Flowing) बनाये गए हैं। हस्तिनापुर से प्राप्त पशु मानवीय–मृण्मूर्ति (Therianthropic Figure) में मुखाकृति मानव और शरीर पशु का है।

मूर्तिकला के क्षेत्र में गोरखपुर परिक्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुयी थी। सरयूपार परिक्षेत्र में उत्खनित महत्त्वपूर्ण स्थलों में श्रावस्ती, पिपरहवा, सोहगौरा, नरहन, कुशीनगर, फाजिलनगर–सठियाँव आदि का उल्लेख किया जा सकता है, जहाँ से बहुतायत से मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। ये मृण्मूर्तियाँ मौर्य, शुंग, कुषाण एवं गुप्त युगों से सम्बन्धित हैं। यहाँ जिन मृण्मूर्तियों की चर्चा की जा रही है, वे उत्खनन एवं सर्वेक्षण में उपलब्ध हुयी हैं। ध्यातव्य है कि ये सभी मृण्मूर्तियाँ गोरखपुर महानगर के संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। पूर्वायतन संग्रहालय में सुरक्षित मृण्मूर्तियाँ सोहगौरा उत्खनन एवं सर्वेक्षण से प्राप्त हैं, जबकि बौद्ध संग्रहालय में सुरक्षित मूर्तियाँ सर्वेक्षण में उपलब्ध हुयी हैं। इन संग्रहालयों में संग्रहीत मूर्तियाँ सोहगौरा, नरहन, डोमिनगढ़, रामूडीह, भौवापार, जगतबेला तथा बनरसिहा जैसे पुरास्थलों से मिली हैं। बौद्ध संग्रहालय की कुछ मूर्तियों का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है[128]। जनपद से मुख्यतः, पशु एवं मानव (स्त्री एवं पुरुष) मूर्तियाँ उपलब्ध हुयी हैं। इनके अतिरिक्त दो गोल ठप्पे डोमिनगढ़ से प्राप्त हैं। एक मूर्ति नागफण की भी है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हें निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है[129]।

1. मौर्यकाल
2. शुंगकाल
3. कुषाणकाल
4. गुप्तकाल

मौर्यकाल :

पशु मूर्तियाँ : गोरखपुर परिक्षेत्र से उपलब्ध मौर्य–युगीन मृण्मूर्तियों में पशु मृण्मूर्तियाँ सर्वाधिक हैं, जिनमें वृषभ, अश्व एवं भेड़ा उल्लेखनीय है। जनपद से 11 × 6 सेमी0 आकार की एक अश्व की मूर्ति उपलब्ध हुयी है, जो बौ0 सं0 में सुरक्षित है। अश्व की पीठ पर अस्पष्ट ठप्पे दृष्टिगोचर होते हैं। जनपद से 10 × 5 सेमी0 आकार की वृषभ–मूर्ति भी मिली है, जिसके मुख व पैर खण्डित हैं। मूर्ति के ऊपर चक्राकार ठप्पे दर्शनीय हैं। मूर्ति पर लाल रंग का लेप किया गया है।

जनपद के सोहगौरा से भेड़ें की तीन मूर्तियाँ मिली हैं। इनमें से एक मूर्ति खण्डित है। खण्डित मूर्ति का आकार 6 × 9 सेमी0 है। भेड़े के मस्तक का अर्द्धांश भाग शेष है। जिससे इसकी पहचान हो सकी है। वर्तमान समय में यह मूर्ति पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित है। दूसरी मूर्ति का आकार 10 × 8 सेमी0 है। मूर्ति पर लाल रंग की पालिश यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होती है। भेड़े की तीसरी मूर्ति भी 10 × 8 सेमी0 आकार की है, जिस पर लाल पालिश लगी हुयी है। मुख्य भाग खण्डित है। यह भी सम्भव है कि यह पशु–आकृति भैंसे की हो। यह मूर्ति भी पू0 सं0, गो0 वि0 में सुरक्षित है।

सोहगौरा से ही 4 × 2 सेमी0 आकार की एक लघु पशु–मूर्ति मिली है, जिसका मुख अस्पष्ट है। अतएव मूर्ति किस पशु की है, यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। मूर्ति में चार पैर हैं। यह मूर्ति भी पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित है।

नारी मूर्तियाँ

जनपद से तीन नारी मूर्तियाँ मिली हैं, जिनमें से दो मातृदेवी की प्रतीत होती हैं तथा तीसरी मूर्ति सामान्य नारी की है। प्रथम दो मूर्तियाँ (मातृदेवी की) कहाँ से उपलब्ध हुयी हैं? यह ज्ञात नहीं हो सका है। मूर्तियों का आकार क्रमशः 7.5×5 सेमी0, 8.5×6 सेमी0 तथा 6.5×4.5 सेमी0 है। तीनों मूर्तियाँ बौ0 सं0 में सुरक्षित हैं। प्रथम मूर्ति को संग्रहालय में कुषाण युग के अन्तर्गत रखा गया है, लेकिन सूक्ष्म विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूर्ति कुषाण–युगीन न होकर मौर्य–युग की है। तीसरी मूर्ति खण्डित है, जिसका उर्ध्व भाग शेष है। यह पशुमुखी मूर्ति है। इसके उरोज अत्यन्त उभरे हुए हैं। बायाँ स्तन खण्डित है।

शुंगकाल :

नारी मृण्मूर्ति : जनपद के विभिन्न स्थलों से शुंगयुगीन मात्र नारी मृण्मूर्तियाँ ही उपलब्ध हुयी हैं, जिन्हें महानगर में अवस्थित संग्रहालयों,– बौ0 सं0 एवं पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित रखा गया है। इन मूर्तियों का विवरण निम्न पंक्तियों में दिया जा रहा है।

(i) 12 × 5 सेमी0 आकार की यह देवी प्रतिमा जनपद के किस स्थल से मिली है, यह ज्ञात नहीं हो सका है। प्रतिमा स्थानक है, जिसके केश दो शैलियों में सुसज्जित हैं। इसके सिर के ऊपर का जूड़ा गोलाकार मे है, जो कि शुंगयुगीन एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इसके दाहिने हाथ में पुष्प है, जिसका डंठल या नलिका हाथ के नीचे तक प्रदर्शित की गयी है। पुष्प को कमल स्वीकार करने की दशा में यह मूर्ति लक्ष्मी की हो सकती है। प्रतिमा का वाम–हस्त कमर पर अवलम्बित है। प्रतिमा बौ0 सं0 में सुरक्षित है।

(ii) 11 × 6 सेमी0 आकार की सिरविहीन शुकसारिका की यह प्रतिमा भी गोरखपुर जनपद से मिली है, लेकिन प्राप्ति स्थल अज्ञात है। इस स्थानक प्रतिमा का दाहिना हाथ कटि पर है, तथा वाम हस्त से शुक को पकड़े हुए है। कमर में मेखला तथा अधोवस्त्र धारण कराया गया है। यह मूर्ति भी बौ0 सं0 में सुरक्षित है।

(iii) 11 × 6 सेमी0 आकार की शुक सारिका की स्थानक प्रतिमा जनपद से प्राप्त हुयी है, जिसका प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। प्रतिमा के सिर पर केशों के स्थान पर अलंकृत पगड़ी दर्शायी गयी है। कर्ण, कुण्डल युक्त है, तथा गले में एकावली है, जिसका पेण्डुलम स्तनों से होता हुआ नाभि तक लटका हुआ है। इस प्रतिमा में अलंकृत पगड़ी, मथुरा से प्राप्त शुंगकालीन प्रतिमाओं के समान है। यह मूर्ति भी बौ0 सं0 में सुरक्षित है।

(iv) 6.5 × 5 सेमी0 आकार की नारी प्रतिमा भी जनपद से प्राप्त हुयी है, तथा वर्तमान समय में बौ0 सं0 में सुरक्षित है। प्रतिमा का केश राशि खण्डित है। गले में अलंकृत एकावली तथा उरोज अत्यधिक उभरे हुए हैं। दाहिना हाथ पूरी तरह खण्डित हो चुका है, तथा वाम–हस्त का लगभग अर्द्धांश सुरक्षित है। मुखमण्डल पर मुस्कराहट के भाव से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिमा किसी रमणी की रही होगी।

(v) 15 × 12 सेमी0 आकार की खण्डित मातृदेवी की प्रतिमा जनपद के सोहगौरा नामक स्थल से प्राप्त हुयी है, जो पू0 सं0 गो0 वि0 में रखी गयी है। इस प्रतिमा का मध्य भाग सुरक्षित है। दाहिना हाथ भी खण्डित हो चुका है। लेकिन वाम–हस्त का कुछ अंश शेष है। इसके उरोज अलग से चिपकाए गए प्रतीत होते हैं, जिनके अग्र भाग पर छिद्र बने हुए हैं।

(vi) खण्डित मातृदेवी की यह प्रतिमा सोहगौरा से मिली है, जिसका आकार 17 × 16 सेमी0 है। मोढ़े पर बैठी हुयी मूर्ति का दाहिना पैर मिट्टी की पट्टिका पर अवलम्बित है। सिर एवं वाम–पाद खण्डित है। गले में हार का अलंकरण है जो वक्षस्थल को स्पर्श कर रहा है। नाभि का प्रदर्शन एक बिन्दु के माध्यम से किया गया है। यह प्रतिमा भी पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित है।

(vii) 6.5 × 5.5 सेमी0 आकार की मातृदेवी की प्रतिमा सोहगौरा से मिली है, जो पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित है। उक्त संग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णानंद त्रिपाठी इस प्रतिमा को लक्ष्मी मानते हैं। प्रतिमा के

दोनों हाथों में सनाल कमल है। इसके केश सुसज्जित तथा वक्षस्थल से कटि प्रदेश के उर्ध्व भाग तक माला लटक रही है। इसके उरोज अत्यन्त उभरे हुए हैं।

कुषाण काल :

जनपद से कुषाण–युगीन जो मृण्मूर्तियाँ मिली हैं, उनमें मानव मूर्तियों की संख्या सर्वाधिक है। इनमें नारी मृण्मूर्तियों की संख्या पुरुष मूर्तियों से अधिक है।

नारी :

जनपद से उपलब्ध अधिकाँश नारी मृण्मूर्तियाँ खण्डित हैं। इन मृण्मूर्तियों को पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित रखा गया है। नारी मूर्तियों की कुल संख्या लगभग 21 है। इनमें से आठ मूर्तियाँ जनपद के सोहगौरा नामक पुरास्थल से उपलब्ध हुयी हैं। इसके अतिरिक्त डोमिनगढ़ से छः मूर्तियाँ मिली हैं। नरहन, बनरसिहा, भौवापार एवं जगतबेला से भी एक–एक मूर्तियाँ मिली हैं। शेष तीन मूर्तियों का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है।

पुरुष :

जनपद से जो पुरुष मूर्तियाँ मिली हैं, उनकी संख्या लगभग 11 है। पुरुष मूर्तियाँ भी प्रायः खंडित ही मिली हैं। इनमें से अधिकाँश मृण्मूर्तियों का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है, जिनकी संख्या लगभग पाँच है। डोमिनगढ़ से तीन पुरुष मूर्तियाँ मिली हैं। इसके अतिरिक्त सोहगौरा एवं रामूडीह से एक–एक मूर्तियाँ मिली हैं। भौवापार से पुरुष का एक ऐसा मस्तक मिला है, जिसमें तीन आँखें प्रदर्शित की गयी हैं। इन आँखों से त्रिनेत्र शिव की पहचान की जा सकती है। सिर पर जटाजूट को एक पट्टिका से कसकर व्यवस्थित किया गया है। कुषाण–युगीन पुरुष मूर्तियों में से तीन मूर्तियाँ पू0 सं0 गो0 वि0 एवं शेष आठ मूर्तियाँ बौ0 सं0 में सुरक्षित है।

7.3 × 9 सेमी0 आकार की प्रेमी–युगल की प्रतिमा मिली है, जो बौ0 सं0 में सुरक्षित है। प्रेमी पुरुष, प्रेमिका के दाहिनी ओर खड़ा है, तथा प्रेमिका (स्त्री) का हाथ पकड़े हुए है। दोनों प्रतिमाएँ पगड़ी धारण की हुयी हैं। स्त्री के दाहिने हाथ में चूड़ियाँ प्रदर्शित है, तथा वाम–हस्त कटि पर अवलम्बित है।

पशु :

कुषाण–युगीन पशु मूर्तियों की संख्या तीन है। इनमें एक मूर्ति खण्डित है, जो सम्भवतः वृषभ की है। शेष दो मूर्तियाँ अश्व एवं हाथी की हैं। इन तीनों मूर्तियों का प्राप्ति स्थल अज्ञात है। तीनों मूर्तियाँ बौ0 सं0 में सुरक्षित हैं।

अन्य :

उपर्युक्त मूर्तियों के अतिरिक्त कुषाण–युगीन दँतियादार लोढ़े भी कई स्थलों से मिले हैं। सोहगौरा के कुषाण कालीन स्तरों से इस प्रकार के लोढ़े बहुतायत से मिले हैं। इसके अतिरिक्त डोमिनगढ़ से 9 सेमी0 व्यास के दो गोल ठप्पे मिले हैं, जिन्हें पू0 सं0 गो0 वि0 में रखा गया है।

गुप्तकाल

पशु :

गुप्तयुगीन पशु मृण्मूर्तियों में वृषभ (8×5 सेमी0) तथा नागफ़ण (13.5×9.5 सेमी0) की मूर्तियाँ जनपद से मिली हैं, जिनका प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। वृषभ के मस्तक से लेकर पूरे पीठ पर चक्राकार ठप्पे लगाए गये हैं। वृषभ के मुख, सींग, कान व पूँछ खण्डित हैं। दोनों ही मूर्तियाँ बौ0 सं0 में सुरक्षित हैं।

नारी :

गुप्तकाल की तीन खण्डित नारी मृण्मूर्तियाँ जनपद के सोहगौरा नामक स्थल से उपलब्ध हुयी हैं। इन्हें पू0 सं0 गो0 वि0 में रखा गया है। इनका आकार 3.5 × 2.2 सेमी0, 3 × 2.2 सेमी0 तथा 10.5 × 6.5 सेमी0 है। उक्त नारी मृण्मूर्तियों में से दो मूर्तियों (3 × 2.2 सेमी0 तथा 10.5 × 6.5 सेमी0) का मात्र शिरोभाग उपलब्ध हो सका है।

मनके :

प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग (एन0 बी0 पी0 काल) के लोगों ने अपनी परिष्कृत अभिरूचि का परिचय, विभिन्न प्रकार के आभूषणों के निर्माण के माध्यम से दिया है। विभिन्न पुरास्थलों के उत्खनन से इस संस्कृति के स्तरों से माणिक्य के मनके, चूडियाँ, कड़े एवं अंगूठियाँ मिली हैं। तामड़ा पत्थर, (Carnelian) बादली पत्थर (Agate) तथा काँच के बने हुए बेलनाकार (Spherical) एवं त्रिभुजाकार (Tringular) मनके अधिक प्रचलित थे। नरहन के उत्खनन में तृतीय एवं चतुर्थ काल से इस तरह के पुरावशेष मिले हैं[130]। यहाँ के तृतीय काल से मिट्टी के बने मनके, चूड़ियाँ एवं नाव की आकृति के देह–मर्दक (Boat Shaped Skin Rubbers) मिले हैं। इसके अतिरिक्त लाल जैस्पर के बने कर्णाभूषण (Ear-Studs) तथा मिट्टी, काँच एवं बादली पत्थर

की बनी चूड़ियाँ भी यहाँ से मिली हैं। चतुर्थ काल से भी लाल जैस्पर (Red Jasper) के बने कर्णाभूषण, ताँबे की बनी अँगूठी एवं अंजनशलाकाएँ, (Antimony-rods), मिट्टी, काँच, हड्डी, हाथी दाँत एवं अगेट (Agate) की बनी चूड़ियाँ मिली हैं। उपर्युक्त पुरावशेषों के आलोक में इस युग के लोगों की आभूषणों के प्रति अभिरूचि का परिचय मिलता है।

हड्डी की शलाकाएँ :

इस युग के स्तरों से हड्डी की शलाकाएँ पर्याप्त मात्रा में मिली हैं, लेकिन परवर्ती काल में इनकी संख्या उत्तरोत्तर घटती हुयी दिखलायी पड़ती है। इनको पुराविदों ने बाण–फलक (Arrow Points) या अस्थि–निर्मित बेधक (Bone Points) एवं लेखनी (Stylus) आदि नाम दिये है। इन्हें बाण फलक मानने की दशा में यह निष्कर्ष निकलता है कि ये शिकार करते रहे होगें। लेकिन कालान्तर में इन बाण फलकों की सीमित संख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि शिकार की ओर से इनका रुझान कम हो रहा था, तथा कृषि को जीविका के साधन के रूप में स्थापित किया जा रहा था[131]। इन हड्डी की शलाकाओं को यदि लेखनी (Stylus) कहें तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि इनसे लिखने का काम होता था।

ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (200 ई0 से 600 ई0 तक)

गोरखपुर परिक्षेत्र से उपलब्ध कुषाण युगीन मुद्राओं एवं मूर्तियों के आधार पर इस क्षेत्र में कुषाणों, विशेषतः कनिष्क एवं हुविष्क का शासन स्वीकार किया जा चुका है। यह भी स्पष्ट है कि कुषाणों के अन्त एवं गुप्तों के उदय के बीच की अवधि में स्थानीय राजा शासन करते रहे। गोरखपुर जनपद में भी हुविष्क के पश्चात् इस राजवंश की सत्ता का कोई साक्ष्य नहीं मिलता।

कुषाणों के अन्त के पश्चात् इस क्षेत्र में द्वितीय शताब्दी ई0 के मध्य में स्थानीय राजाओं के सिक्के मिलना प्रारम्भ हो जाते हैं। स्पष्ट है कि कनिष्क के निर्बल उत्तराधिकारियों की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर, पुनः कोशल क्षेत्र में स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गयी। स्थानीय राजाओं की सूची इस प्रकार है[132]–

1. कुमुदसेन
2. अजवर्मन
3. माधववर्मन
4. संघमित्र
5. विजयमित्र

6. देवमित्र

7. सत्यमित्र

8. आयुमित्र

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में कुषाण सत्ता की समाप्ति के पश्चात् अयोध्या के स्थानीय शासक, गुप्तों के उदय के पूर्व तक शासन करते रहे। चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य विस्तार के सम्बन्ध में वायु पुराण में कहा गया है कि 'गुप्त वंशीय नरेश अनुगंगा, प्रयाग, साकेत, मगध इन सब जनपदों को भोगेंगे'[133]। विष्णु पुराण में कहा गया है कि 'प्रयाग तक विस्तृत, गंगा के तटवर्ती प्रदेश को मगध और गुप्त भोगेंगे'[134]। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राएँ उत्तर प्रदेश में मथुरा, अयोध्या, सीतापुर, टांडा, गाजीपुर तथा बनारस से प्राप्त हुयी हैं[135]। यदि उपर्युक्त क्षेत्र गुप्तों के अधीन थे, तो यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि गोरखपुर क्षेत्र भी उसके (चन्द्रगुप्त प्रथम) राज्य के अन्तर्गत रहा होगा। चन्द्रगुप्त प्रथम के उपरान्त भी इस राजवंश के शासकों की सत्ता इस क्षेत्र पर कायम रही। प्रो0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार इस काल में गुप्तों की राजधानी पाटलिपुत्र हो गयी थी और गोरखपुर परिक्षेत्र मगध का अभिन्न अंग बन गया था[136]।

चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् इस क्षेत्र पर समुद्रगुप्त का शासन रहा। गोरखपुर परिक्षेत्र से मिले समुद्रगुप्त की एक स्वर्ण मुद्रा[137] एवं अयोध्या में गुप्तों के जयस्कन्धावार[138] से इसकी पुष्टि होती है।

समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सत्तासीन हुआ, लेकिन इस शासक का गुप्त इतिहास में कोई विशेष योगदान नहीं है। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' शासक बना। इसके समय में श्रावस्ती भुक्ति (प्रान्त) मगध साम्राज्य का एक प्रान्त था, और गोरखपुर इसमें (श्रावस्ती–प्रांत में) पड़ता था[139]। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त की कुछ स्वर्ण मुद्राएँ जनपद के गुरसैनी[140], कोटवा[141] और गोपालपुर[142] से प्राप्त हुयी हैं। इससे स्पष्ट है कि गोरखपुर परिक्षेत्र पर भी चन्द्रगुप्त द्वितीय का आधिपत्य था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त शासक बना। कुशीनगर से प्राप्त छः रजत सिक्के तथा कोटवा निधि से प्राप्त 16 सिक्के, गोरखपुर परिक्षेत्र पर उसके शासन को प्रमाणित करते हैं।

इस प्रकार कुमारगुप्त के पश्चात् क्रमशः स्कन्दगुप्त, पुरूगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, नरसिंहगुप्त 'बालादित्य' तथा कुमारगुप्त तृतीय ने इस परिक्षेत्र पर अपना आधिपत्य बनाये रखा।

गुप्तों के पश्चात् मौखरियों का भी आधिपत्य इस परिक्षेत्र पर बना रहा। तत्पश्चात् वर्द्धन–वंशीय हर्ष का काल (606–647 ई0) प्रारम्भ होता है। गोरखपुर परिक्षेत्र हर्ष के अधीन शासित रहा।

इस परिक्षेत्र में सर्वेक्षण के दौरान अनेक स्थलों से ऐतिहासिक युग के भवनों के प्रमाण एवं अन्य कलावशेष उपलब्ध हुए हैं। उत्खनित स्थलों में सोहगौरा[143] एवं नरहन[144] के पाँचवे काल से इस युग से

सम्बन्धित विविध पुरावशेष उपलब्ध हुए हैं। दोनों ही पुरास्थलों पर ऐतिहासिक युग (कुषाण–गुप्त काल) की शुरूआत एन0 बी0 पी0 परम्परा के ठीक बाद होती है।

पात्र-परम्परा :

इस युग की प्रतिनिधि मृद्भाण्ड–परम्परा, रेड वेअर की है। इसमें मुख्यतः कटोरे, थालियाँ, घड़े, तसले, (Basins) टोंटीदार बर्तन (Spouted Vessels) बर्तन, स्प्रिंकलर तथा ढक्कन (Lids) हैं[145]। सोहगौरा के पॉचवे काल से रेड वेअर (लाल रंग के पात्र) के कुछ ठीकरों पर मुहर लगाकर एवं नक्कासी करके उन्हें अलंकृत किया गया है[146]। नरहन से एक डिस–आन–स्टैण्ड प्राप्त हुआ है[147]। लाल रंग का यह डिस–आन–स्टैण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण है। जनपद के अन्य स्थलों, यथा उपधौलिया, गोरसेहरा, राजधानी, देवकली, कोटवा, बांसगाँव, सोपाईघाट, असौजी, गोपालपुर एवं अन्य बहुत से स्थलों से इस युग से सम्बन्धित पात्रावशेष उपलब्ध हुए हैं[148]।

लघु पुरावशेष (Small-finds) :

उत्खनित पुरास्थलों से उपलब्ध लघु पुरावशेषों में पत्थर एवं मिट्‌टी के मनके, ताँबे एवं लोहे की कीलें, (Copper and Iron nails) मिट्‌टी के बने लोढ़े (Terracotta Pestles) तथा मिट्‌टी के बने स्टैम्प मिले हैं। खेल से सम्बन्धित वस्तुओं में मिट्‌टी की खिलौना गाड़ी के फ्रेम, हाथी दाँत के बने पासे (Dice made of ivory) तथा बत्तख की आकृति के खिलौने विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

श्रृंगार प्रसाधनों में मिट्‌टी, हड्‌डी एवं काँच की बनी चूड़ियाँ, ताँबे की अंजन शलाका, (Antimony rods) ताँबे की अँगूठी, (Copper ring) हड्‌डी एवं मिट्‌टी के बने कर्णाभूषण, (Pendants) सभी उत्खनित स्थलों से प्राप्त हुए हैं। सोहगौरा से हड्‌डी की शलाका भी मिली है,[149]। जिसे लेखनी या बाण फलक माना जा सकता है। बहुत सम्भव है कि यह लेखनी ही रही हों, क्योंकि शिकार की प्रवृत्ति पूर्वापेक्षा अब क्षीण हो चुकी थी और इस युग तक लेखन कला पर्याप्त विकसित हो चुकी थी, नरहन से 700 ई0 का टूटा हुआ सीलिंग (Sealing) मिला है[150] जिस पर दो शब्द–'धर्म हे' (Dharm he) अंकित है।

सिक्के :

इतिहास, विशेषतः भारतीय इतिहास के निर्माण में सहयोगी एवं साक्षी की भूमिका निभाने वाले प्रामाणिक साधनों में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुद्राएँ न केवल अपने युग की राजनीतिक घटनाओं का बल्कि सम्बन्धित युग की सांस्कृतिक गतिविधियों पर भी प्रकाश डालती हैं। इनसे भौतिक समृद्धि पर भी

प्रकाश पड़ता है। गुप्त–युग तक आते–आते जीवन के हर क्षेत्र में मुद्राओं का प्रयोग अनिवार्य हो गया था। यही कारण है कि गुप्त–युगीन मुद्राएँ बहुतायत से मिलती हैं।

गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलों से गुप्त शासकों की स्वर्ण–मुद्राएँ प्राप्त हुयी हैं। ये मुद्राएँ समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एवं कुमारगुप्त की हैं। जनपद के बांसगाँव (गोपालपुर) से एक मुद्रा–निधि प्राप्त हुयी है[151]। यहाँ से 20 रजत मुद्राएँ मिली हैं, जिनमें 7 चन्द्रगुप्त द्वितीय की हैं। शेष 13 सिक्कों के विषय में कोई विवरण नहीं है। स्वर्ण–मुद्राएँ दो निधियों से प्राप्त हुयी हैं। प्रथम बांसगाँव तहसील में स्थित कोटवा निधि[152] तथा द्वितीय निधि[153] का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। द्वितीय निधि से गुप्तकालीन 11 स्वर्ण मुद्राएँ उपलब्ध हुयी है। इनका कोई विवरण उपलब्ध नहीं है। अतएव इनका सम्बन्ध किस शासक से है, कहना मुश्किल है। कोटवा निधि से चन्द्रगुप्त द्वितीय की 6 (छः) तथा कुमारगुप्त प्रथम की 10 मुद्राएँ उपलब्ध हैं। इन सिक्कों के अतिरिक्त गुरसानी[154] (बांसगाँव) से चन्द्रगुप्त द्वितीय का एक सिक्का तथा राहुल सांकृत्यायन संस्थान अलीनगर,[155] गोरखपुर से समुद्रगुप्त का एक सिक्का प्राप्त है। इस प्रकार गोरखपुर जनपद गुप्त शासकों के अधीन लम्बे समय तक शासित रहा। गोरखपुर एवं निकटवर्ती अन्य जनपदों (पूर्वोत्तर प्रदेश) से मिली निधियों एवं अभिलेखों के आधार पर विद्वानों का एक वर्ग इस क्षेत्र को गुप्तों का आदि राज्य मानने को तैयार है। इन मुद्राओं से गुप्त शासकों की आर्थिक समृद्धि के साथ ही साथ उनके सामाजिक एवं सांस्कृतिक अवदान पर भी प्रकाश पडता है।

वास्तुकला :

वस्तुतः गुप्त–युग को 'भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग', गुप्त नरेशों की सांस्कृतिक उपलब्धियों के विशेष सन्दर्भ में ही कहा गया है। संस्कृति के विविध क्षेत्रों के साथ ही साथ गुप्त–युगीन वास्तु और स्थापत्य का क्षेत्र भी काफी समृद्ध रहा। वस्तुतः इस युग की कीर्ति कला दृश्य रचनाओं द्वारा चिरस्थायी बना दी गयी है[156]।

इस युग में पूरे उत्तरी भारत में एक अद्भुत कलात्मक क्रियाशीलता दिखायी देती है। गुप्त युगीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण मंदिर हैं। गुप्तकालीन मंदिरों का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर हुआ था, जिन पर चढ़ने के लिए चारों ओर से सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। प्रारम्भ में मंदिरों की छत चपटी बनायी जाती थी, किन्तु कालान्तर में शिखर भी बनाया जाने लगा। मन्दिर में मूर्ति रखने के लिए चौकोर या गोलाकार गर्भगृह बनाया जाता था। यह तीन ओर से दीवारों से घिरा रहता था तथा एक ओर प्रवेश द्वार बनाया जाता था। गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर बने चौखट पर मकरवाहिनी गंगा और कूर्मवाहिनी यमुना की आकृतियाँ उत्कीर्ण

मिलती हैं, जो गुप्तकला की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त हंस–मिथुन, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष, मंगल–कलश, शंख, पद्म आदि पवित्र मांगलिक चिन्हों एवं प्रतीकों का भी अंकन किया गया है। प्रारम्भ में गर्भगृह के सामने एक स्तम्भ–युक्त मण्डप बनाया जाता था, किन्तु कालान्तर में गर्भगृह के चारों ओर इसे बनाया जाने लगा।

इस प्रकार गुप्त–युग तक मंदिरों का निर्माण व्यापक पैमाने पर होने लगा था। इस युग के मंदिरों में तिगवा का विष्णु मन्दिर, एरण का विष्णु मन्दिर, नचना कुठार का पार्वती मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर (ये सभी मन्दिर मध्य प्रदेश में अवस्थित हैं) तथा उ0 प्र0 में देवगढ़ का दशावतार मन्दिर एवं भीतरगाँव का मन्दिर विशेष महत्त्वपूर्ण हैं।

गोरखपुर परिक्षेत्र में इस तरह के मन्दिरों के प्रमाण नहीं मिलते। इस युग से सम्बन्धित कुछ स्थलों पर अधिक से अधिक दीवालों के अवशेष और यत्र–तत्र बिखरे हुए प्राचीन ईंटों के अतिरिक्त और कुछ नहीं मिलता। इन ध्वंसावशेषों (मलवों) के आधार पर समूचे भवन की निर्माण–योजना अन्धकार में ही रह जाती है। बिखरे हुए इन मलवों के आधार पर हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच पाते। लेकिन बिखरे हुए ईंटों के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि, ये मन्दिर के ही अवशेष रहे होंगे। इनका काल निर्धारण, ईंटों के आकार–प्रकार के आधार पर ही किया जाता है। जिन पुरास्थलों पर इन भवन या मन्दिर संरचनाओं के अवशेष मिले हैं, उनमें उसरैन, धुरियापार तथा देवकली (निकट गगहा) का उल्लेख किया जा सकता है। देवकली से प्राप्त ईंटों का आकार 55 × 23 सेमी0 से 21 × 8 सेमी0 है। इसका समय प्रथम शताब्दी ई0 से तृतीय शताब्दी ई0 है। सोहगौरा के पंचम काल से वलय–कूपों (Ring-well) के प्रमाण मिले हैं। इन वलय कूपों का निर्माण सफायी की दृष्टि से किया जाता होगा। नरहन में पाँचवें काल के भवनों को ग्रामीणों ने तोड़कर उनमें प्रयुक्त ईंटों को लूट लिया है। 1980 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से फाजिलनगर–सठियाँव (जनपद कुशीनगर) में उत्खनन कार्य हुआ, जिसमें गुप्त–कालीन भवनों के साक्ष्य व्यापक पैमाने पर प्राप्त हुए। ये भवन पकी ईंटों से बनाये गये थे, जिनके ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आवास–गृहों के निर्माण की जो परम्परा नवपाषाण काल में प्रारम्भ हुयी, वह उत्तरोत्तर परिष्कृत होती रही। फलतः पकी ईंटों से भवनों का निर्माण किया जाने लगा। लेकिन यह तथ्य विशेष महत्त्वपूर्ण है कि नवपाषाण काल के कच्चे–भवनों (लकड़ी–मिट्टी एवं फूश के छप्पर) की परम्परा आज भी प्रवहमान है।

कृषि एवं पशुपालन :

जनपद में अवस्थित पुरास्थलों, सोहगौरा, नरहन एवं धुरियापार के उत्खनन में ऐतिहासिक काल के स्तरों से अनाज के दानों के प्रमाण नहीं मिले हैं। फिर भी पूर्ववर्ती स्तरों से मिले अनाज के कार्बनीकृत दानों के आलोक में हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि, इस युग में कृषि–कार्य बड़े पैमाने पर की जा रही थी। कृषि की यह परम्परा नवपाषाण युग में प्रारम्भ हुयी थी, जो क्रमशः विकसित होती रही है। साहित्यिक साक्ष्यों से भी इस युग में प्रचलित कृषि पर प्रकाश पड़ता है। इस युग में धान, गेहूँ, गन्ना, जूट, तिलहन, कपास, ज्वार, मसाले, धूप, नील आदि प्रभुत मात्रा में उत्पन्न होते थे। दलहन में मूँग, मसूर, खेसारी की खेती भी सम्भवतः होती थी, क्योंकि नरहन के तीसरे काल से इनके कार्बनीकृत दाने उपलब्ध हुए हैं। फलों में बेर एवं आँवला के प्रमाण मिले हैं। अतएव उक्त फलों की खेती भी होती रहीं होगी। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग (गुप्तकाल) में कृषि काफी विकसित हो चुकी थी, जिसमें गुप्त शासकों का समुचित सहयोग रहा होगा। सिंचाई के साधनों की भी समुचित व्यवस्था की गयी थी। कृषि इस युग का प्रमुख उद्योग था। यह जीविका का प्रमुख साधन भी था।

इस काल के लोग पशुपालक भी थे। इनके पालतू पशुओं में से कुछ कृषि–कार्य के लिए भी उपयोगी थे। इसके अतिरिक्त ये दूध–दही एवं घी के भी स्रोत थे। इनके पालतू पशुओं में गाय, बैल, भैंस, भेड़, बकरी, घोड़े, हाथी एवं सूअर का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि जनपद में उत्खनित स्थलों पर इस युग के स्तरों से किसी पशु के जीवाश्म (Fossils) नहीं मिले हैं, तथापि मृण्मूर्तियाँ मिली हैं। पूर्ववर्ती स्तरों से उक्त पशुओं की हड्डियाँ मिली हैं, जिनमें से कुछ पर धारदार हथियार से वध करने के निशान मिले हैं। इस आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवतः ये मांसभक्षी भी थे।

मूर्तिकला :

इस युग में मूर्तिकला का सम्यक् रूपेण विकास हुआ। इसमें मानव एवं पशु मूर्तियों का बाहुल्य है[157]। मानव–मूर्तियों में स्त्री एवं पुरुष दोनों हैं। इन मानव–मूर्तियों का सम्बन्ध हिन्दू देवी–देवताओं से जोड़ा गया है। इस युग में बुद्ध की भी कुछ मूर्तियाँ बनायी गयी हैं। इस युग के मूर्ति–शिल्पियों ने कुषाण–युगीन नग्नता एवं पूर्व मध्यकालीन प्रतीकात्मक सूक्ष्मता के बीच संतुलित समन्वय स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है[158]। यही कारण है कि गुप्तयुगीन मूर्तियों में आद्योपान्त आध्यात्मिकता, भद्रता एवं शालीनता दृष्टिगोचर होती है[159]।

इस युग की मूर्तियों पर गान्धार शैली का प्रभाव नहीं पड़ा है। गुप्त युग की तीन बुद्ध मूर्तियाँ उल्लेखनीय हैं–

1. सारनाथ की बुद्ध मूर्ति

2. मथुरा की बुद्ध मूर्ति

3. सुल्तानगंज की बुद्ध मूर्ति

उल्लेखनीय है कि गोरखपुर जनपद से गुप्तयुगीन कोई प्रस्तर–मूर्ति नहीं मिली है।

मृण्मूर्ति कला :

इस युग में प्रस्तर मूर्तियों की भाँति मृण्मूर्तियों का निर्माण भी किया गया। इनमें विष्णु, कार्तिकेय, दुर्गा, गंगा–यमुना आदि देवी–देवताओं की मूर्तियाँ बनायी गयीं। उक्त मूर्तियाँ पहाड़पुर, राजघाट, भीटा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पवैया, अहिच्छत्र, मथुरा आदि से प्राप्त हुयी हैं। अहिच्छत्र की मूर्तियों में गंगा–यमुना की मूर्तियॉ तथा पार्वती का सुन्दर सिर उल्लेखनीय है। श्रावस्ती से जटा–जूटधारी शिव के सिर की मूर्ति मिली है।

गोरखपुर जनपद से वृषभ (8 × 5 सेमी0) तथा नागफण (13 × 9.5 सेमी0) की मूर्तियाँ मिली हैं। दोनों मूर्तियाँ गोरखपुर महानगर में अवस्थित संग्रहालय (बौ0 सं0 सं0) में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त सोहगौरा के गुप्तकालीन स्तरों से तीन खण्डित नारी मूर्तियाँ मिली हैं। अत्यन्त घिसी अवस्था में होने के कारण इनकी व्याख्या सम्भव नहीं है। इन मूर्तियों के आभूषण, केश–सज्जा तथा मुखाकृति के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ये नारी मूर्तियाँ हैं। तीनों मूर्तियाँ गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्वायतन संग्रहालय में संग्रहीत हैं। नरहन के पाँचवे काल से मातृदेवी की मूतियाँ मिली हैं[160]।

संदर्भ :

1. *आई0 ए0 आर0*, 1961–62, पृष्ठ–56
2. तत्रैव, 1974–75, पृष्ठ 46–47
3. चतुर्वेदी, एस0 एन0 : एडवांस आफ विन्ध्यन निओलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्वर्स टू दि हिमालय तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रीजन आफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इनवार्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, पृष्ठ–103
4. तत्रैव
5. सिंह, पुरुषोत्तम : आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द, *प्राग्धारा* नं0 3, 1992–93, पृष्ठ 21–30
6. तत्रैव, पृष्ठ–23
7. तत्रैव
8. तत्रैव, पृष्ठ 30

9. तत्रैव
10. तत्रैव
11. संकालिया, एच0 डी0: 1974, *दि प्री हिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान,* पूना पृष्ठ 295–96; शर्मा, जी0 आर0, मिश्रा वी0 डी0, मडल डी0, मिश्रा बी0 बी0, एण्ड पाल, जे0 एन0, 1980, *बिगिनिंग्स आफ एग्रीकल्चर,* इलाहाबाद, पृष्ठ 149–152
12. मिश्र, वी0 डी0 : *सम ऐस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालाजी,* इलाहाबाद, 1977 पृष्ठ 108
13. शर्मा जी0 आर0, मिश्रा वी0 डी0, मडल डी0, मिश्रा बी0 बी0 एण्ड पाल जे0 एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत,* इलाहाबाद, पृष्ठ 153
14. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–102
15. तत्रैव, पृष्ठ–102
16. सिंह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–23
17. तत्रैव, पृष्ठ 23
18. तत्रैव, पृष्ठ 24
19. सिंह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 31
20. सारस्वत, के0 एस0, सीड एण्ड फ्रूट रिमेंस ऐट ऐन्सिएण्ट इमलीडीह खुर्द, *प्राग्धारा* नं0 3, 1992–93, पृष्ठ 39
21. तत्रैव, पृष्ठ 39
22. तत्रैव
23. तत्रैव
24. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 107
25. इण्डियन आर्क्यालाजिकल रिव्यू, 1961–62, पृष्ठ–56
26. तत्रैव, 1974–75, पृष्ठ 46–47
27. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट, पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 104
28. सिंह, पुरूषोत्तम, सिंह अशोक कुमार और सिंह इन्द्रजीत, 1991–92, ट्रायल डिग्गिंग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा,* अंक 2, पृष्ठ 55
29. सिंह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 31
30. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 104
31. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *एक्सकेवेशन ऐट नरहन,* पृष्ठ 15
32. सिंह पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 32
33. तत्रैव, पृष्ठ 32
34. तत्रैव
35. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 15

36. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 104
37. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15
38 तत्रैव
39. तत्रैव
40. साररस्वत, के0एस0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 39
41 सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 15
42. सिंह, पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 32
43. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 18
44. चतुर्वेदी एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 105
45. तत्रैव
46. तत्रैव
47. तत्रैव
48. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19
49. तत्रैव,
50. तत्रैव, पृष्ठ 18
51. तत्रैव,
52. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 107
53. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 32
54. तत्रैव,
55. मिश्र, बी0बी0, चाल्कोलिथिक कल्चर आफ दि नार्दर्न विन्ध्याज एण्ड दि मिड गंगा वैली, *पीपिंग थ्रु दि पास्ट*, (जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल वाल्यूम), 2000 ई0, पृष्ठ 80
56. तत्रैव,
57. पाण्डेय, जे0 एन0, *पुरातत्त्व विमर्श*, 1983 पृष्ठ 374
58. झा, डी0 एन0, एवं श्रीमाली कृष्णमोहन (संपादक); 1981, *प्राचीन भारत का इतिहास*, पृष्ठ 110
59. तत्रैव
60. तत्रैव
61. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 378
62. श्री कृष्णानंद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर
63. *इ0 आर्क0*, (1974–75), पृष्ठ 47
64. तत्रैव

65. तत्रैव

66. सिंह पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

67. सिंह पुरुषोत्तम, तत्रैव, पृष्ठ 19

68 इन स्थलो की पहचान तृतीय अध्याय मे हो चुकी है।

69 सिंह, पुरुषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

70 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 385

71. सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

72. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 374

73. सिंह पुरुषोत्तम, *पूर्वोद्धृत*, 1994, पृष्ठ 22

74. तत्रैव

75. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 385

76. तत्रैव

77. सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

78. तत्रैव, पृष्ठ 26

79. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 385

80. सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15

81 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 385

82. तत्रैव

83. सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 18

84. तत्रैव, पृष्ठ 19

85. पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 386

86. तत्रैव

87. सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

88. सिंह, पुरुषोत्तम, सिंह अशोक कुमार और सिंह इन्द्रजीत, 1991–92, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 55

89. तत्रैव, पृष्ठ 58

90. सिंह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 34

91. सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

92. तत्रैव

93. तत्रैव

94. तत्रैव

95. सिंह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 34

96. सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

97. तत्रैव

98 तवैव

99 *रामायण*, 2, 49, 11–12, 50–1, 7, 104, 15

100 *प्रा० रा० इ०*, पृष्ठ 78

101. पाण्डेय, जे० एन०, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 404

102. तत्रैव

103. सिंह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22

104. तत्रैव

105. सिंह, पुरुषोत्तम, 1992–93, पृष्ठ 34

106. सिंह पी०, अशोक कुमार सिंह, इन्द्रजीत सिंह, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 58

107. सिंह, पी०, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

108. पाण्डेय, जे० एन०, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 414

109 सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

110. तत्रैव

111. तत्रैव

112. वर्मा, टी० पी०, वाल्यूम 17, पृष्ठ 12 (1991)

113. सरकार, डी० सी०, नोट्स ऑन सम इन्सक्रिप्सन्स इन दि कलेक्शन आफ दी एशियाटिक सोसायटी, *जे० ए० एस० एल०*, वाल्यूम 8 (1952), पृष्ठ 1–3

114. फ्लीट, जे० एफ़०, टैक्स्ट्स ऑन सोहगौरा कापर प्लेट, *जे० आर० ए० एस०*, वाल्यूम 21 (1907), पृष्ठ 509–533

115. पुरुषोत्तम, सिंह, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

116. गुप्त, पी० एल०, 1955, *पंचमार्क्ड क्वायन्स ऑफ एन्श्येन्ट इण्डिया*

117. प्रो० शैलनाथ चतुर्वेदी, 1974, सोहगौरा उत्खनन (रिपोर्ट अप्रकाशित)

118. वर्मा, टी० पी०, ए नोट ऑन ए कापर क्वायन्स फ्राम नरहन 'द्रष्टव्य, *भारती*, न्यू सीरीज 3, 1985, पृष्ठ 103–64

119. *क्वा० हो० यू० पी०*, टी० टी० आर० नं० 11, पृष्ठ 140–41, (1928–29)

120. *क्वा० हो० यू० पी०*, टी० टी० आर० नं० 8, पृष्ठ 84 (1911–12)

121 सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22

122. तत्रैव, पृष्ठ 26

123. चतुर्वेदी, एस० एन०, 1974, *पूर्वोद्धृत*

124. सिन्हा, के० के०, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*, पृष्ठ 20 (1959)

125 श्रीवास्तव, के0 एम0, *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु*, पृष्ठ 62 एवं 67

126. सिन्हा, के0 के0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15 एव 18

127 अग्रवाल, वी0 एस0, टेराकोटा फिगुराइन्स ऑफ अहिच्छत्रा, डिस्ट्रिक बरेली, *एन्श्येण्ट इण्डिया* नं0 4, पृष्ठ 105 (1947–1948)

128. श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी से विमर्श के आधार पर

129. संग्रहालय में विभिन्न मूर्तियों के लिए प्रस्तावित युगों का उल्लेख यहाँ हुआ है।

130. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22–27

131. तत्रैव, पृष्ठ 23

132. शाही, टी0 पी0, *अयोध्या का इतिहास*, पृष्ठ 103 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

133. पार्जिटर, एफ0 ई0, *पुराण टेक्सट्स ऑन दि डाइनेस्टिज आफ दि कलिएज*, पृष्ठ 53

134. तत्रैव, पृष्ठ 53, पाद टिप्पणी 8

135. गोयल, श्रीराम, *गुप्त साम्राज्य का इतिहास*, पृष्ठ 46

136. पाण्डेय, राजबलि, *गोरखपुर जनपद का इतिहास*, पृष्ठ 167

137 राहुल साकृत्यायन सस्थान, अलीनगर गोरखपुर में सुरक्षित है।

138. महानौहस्त्यश्च जयस्कन्धावारा .... जायोद्धया .... वासका सर्वराज्योच्छेतु .... द्रष्टव्य, सरकार, *सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स*, पृष्ठ 265

139. *गो0 ज0 इ0*, पृष्ठ 167

140. *क्वा0 हो0 यू0 पी0*, टी0 टी0 आर0 नं0 29, पृष्ठ 92

141. *पी0 ए0 एस0 बी0*, पृष्ठ 182 (1887)

142. *जे0 आर0 ए0 एस0*, पृष्ठ 49 (1893)

143. चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 103

144. सिंह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 27

145. *इण्डियन आर्क्यालॉजी*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 47

146. तत्रैव

147. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 29

148. द्रष्टव्य, इसी शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय

149. *इण्डियन आर्क्यालाजी ए रिव्यू*, 1974–75, पृष्ठ 47

150. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 29

151. *जे0 आर0 ए0 एस0*, पृष्ठ 49 (1893)

152. *पी० ए० एस० बी०*, पृष्ठ 182 (1887), स्मिथ, *जे० आर० ए० एस०*, पृष्ठ 46 (1889)

153. *क्वा० जो० यू० पी०*, टी० टी० आर० नं० 9, (6, 7, 1987) पृष्ठ 195

154. तत्रैव, टी० टी० आर० नं० 29, (1913–14) पृष्ठ 94

155. राहुल सांकृत्यायन संस्थान के निदेशक से प्राप्त सूचना के आधार इस सिक्के की चर्चा की गयी है।

156. अग्रवाल, वी० एस०, *वाकाटक गुप्त एज*, पृष्ठ 446

157. *इण्डियन आर्क्यालाजी*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 47

158. श्रीवास्तव, के० सी०, *प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति*, पृष्ठ 458

159. तत्रैव

160. सिंह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 27

उपसंहार

गोरखपुर परिक्षेत्र मध्यगंगा घाटी में सरयू–सदानीरा अंतर्वेदी का ऐसा अंतस्तल है, जिसका महत्त्व बहुआयामी है। भारत के आध्यात्मिक आकाश में गौतमबुद्ध जैसे देदीप्यमान नक्षत्र का उदय इसी परिक्षेत्र में हुआ था, जिसने विश्व को आध्यात्मिकता का पाठ पढ़ाया। इस परिक्षेत्र के आध्यात्मिक महत्त्व का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि धरती के गर्भ में छिपे हुए निर्जीव, भौतिक पुरावशेषों के खोजी पुराविद् भी एक समय में तथागत से जुड़े हुए क्षेत्रों की सीमा में ही कार्य करते रहे। इनका एक मात्र उद्देश्य, बुद्ध से सम्बन्धित स्थलों की पहचान करना था।

ध्यातव्य है कि सोहगौरा के उत्खनन के समय तक (1961–62) पूर्व बुद्ध–युग का इतिहास अंधकारमय रहा है, जिसे उद्‌घाटित करने के प्रयास समय–समय पर होते रहे हैं। इसमें कुछ अंग्रेज पुराविदों एवं प्रशासनिक अधिकारियों यथा, ए0सी0एल0 कार्लायल, डॉ0 फ्यूहरर, ए0 स्वीटन (कमिश्नर गोरखपुर), डॉ0 हुई (जिलाधिकारी गोरखपुर), डब्लू0 सी0 पेप्पे, तथा पी0सी0 मुकर्जी का नाम लिया जा सकता है। इनके द्वारा किये गये कार्यों की विस्तृत चर्चा इस शोध--प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय में की जा चुकी है। इस प्रकार बुखनन से लेकर सोहगौरा उत्खनन तक एवं उसके बाद के कुछेक दशकों में इस क्षेत्र के पुरातत्त्व पर जो कार्य किए गए, उनके आधार पर जनपद के सांस्कृतिक इतिहास का कोई निश्चित स्वरूप स्पष्ट नहीं हो पा रहा था। अतएव प्रस्तुत शोध–प्रबंध में उपर्युक्त अनुसंधानों एवं स्वयं द्वारा सर्वेक्षित स्थलों के आलोक में जनपद के सांस्कृतिक स्वरूप को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है।

भारत में क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर अनेक कृतियाँ अस्तित्व में आ चुकी हैं। इनमें आर्क्यालजी आफ गुजरात[1] आर्क्यालजी आफ कुमायूँ[2], आर्क्यालजी ऑफ पांचाल[3], आर्क्यालजी आफ वैशाली[4] आर्क्यालजी ऑफ लखनऊ[5], आर्क्यालजी ऑफ पाटलिपुत्र[6], तथा आर्क्यालजी ऑफ तमिलनाडु[7] उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर अनुसंधान की शुरूआत प्रो0 एच0डी0 सांकलिया ने की। उपर्युक्त अनुसंधानों से क्षेत्रीय पुरातत्त्व के आलोक में विभिन्न युगों में मानव की जीवन–पद्धति पर सम्यक् प्रकाश पड़ता है। इन ग्रन्थों से मानव के सांस्कृतिक

यात्रा में आए विभिन्न पडावों पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ता है। प्रस्तुत शोधप्रबंध– "गोरखपुर जनपद का पुरातत्त्व" भी क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर किये गये कार्यों की श्रृंखला में एक कड़ी के रूप में है।

शोधकर्ता ने सर्वेक्षण के लिए जनपद में प्रवाहित नदियों को आधार बनाया है, क्योंकि यह विदित है कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं का जन्म नदियों के तटवर्ती इलाकों में ही हुआ है। मानव सभ्यता के विकास मे नदी घाटियो का अप्रतिम योगदान रहा है। प्रारम्भ से ही नदियाँ मानव के विकास के निमित्त उर्बर भूमि प्रदान करती रही हैं। गोरखपुर परिक्षेत्र में नदियों का जाल फैला हुआ है, अतएव यह क्षेत्र पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है। यही कारण है कि यह क्षेत्र समय–समय पर अनेक पुराविदों एवं पुरातत्त्व–प्रेमियों को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।

यह शोध प्रबन्ध पाँच अध्यायों में विभक्त है। यह अध्याय (उपसंहार) पूर्ववर्ती अध्यायों में विवेचित तथ्यों का निष्कर्ष रूप में प्रस्तुतीकरण है। इसके पूर्व के चार अध्यायों में जनपद के राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश एवं पृष्ठभूमि को मूलतः विभिन्न स्थलों से उपलब्ध, अभिलेखों, सिक्कों, मृद्भाण्ड उद्योगों एवं मृण्मूर्तियों के पुरातात्त्विक–मंथन के आलोक में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। वस्तुतः जनपद में अब तक जो कार्य हुए हैं वे प्रायः खण्डित हैं। अतएव उनसे जनपद के पुरातत्त्व का कोई निश्चित स्वरूप द्योतित नहीं हो रहा था। इस शोध प्रबंध का सृजन इसी अभाव की पूर्ति के विशेष उद्देश्य से किया गया है।

प्रथम अध्याय में जनपद की सामान्य विशेषताओं की चर्चा की गयी है, जिन्हें नौ उपविभागों में विभक्त किया गया है। प्रथम उपविभाग में जनपद के विशेष संदर्भ में विषय (पुरातत्त्व) के महत्त्व की चर्चा करके उन कारणों का उल्लेख किया गया है, जिनसे प्रेरित होकर मैंने शोध–कार्य के निमित्त विषय के रूप में "गोरखपुर जनपद के पुरातत्त्व" को चुना। द्वितीय उपविभाग में जनपद का सामान्य परिचय दिया गया है, जिसके अंतर्गत जनपद की भौगोलिक स्थिति एवं गोरखपुर महानगर में अवस्थित विभिन्न संस्थाओं का उल्लेख किया गया है। तृतीय उपविभाग में जनपद का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है, जिसमें जनपद के नामकरण की पृष्ठभूमि में कनफटा योगी गोरखनाथ को उत्तरदायी ठहराया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राजवंशों के समय में जनपद की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख किया गया है, जिसके लिए मुख्य रूप से डॉ0 राजबलि पाण्डेयकृत "गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास", डॉ0 विशुद्धानन्द पाठककृत 'हिस्ट्री आफ कोशल', उत्तर–प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर' तथा विकास पुस्तिका (गोरखपुर मंडल) 1995–96 और 1996–97 पर निर्भर रहना पड़ा है। प्रथम दो कृतियों में जनपद के इतिहास की विस्तृत चर्चा की गयी है। इन कृतियों में लेखकद्वय ने जनपद के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बिन्दुओं पर विचार–मंथन किया हैं, फिर भी ज्ञान तो निःस्सीम हैं, जिसे किसी ग्रन्थ की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता।

अतएव इस परिक्षेत्र में कुछ तथ्यों को आज भी अनुसंधान की आवश्यकता है। चतुर्थ उपविभाग में जनपद के क्षेत्रफल का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त सरयूपार परिक्षेत्र की भौगोलिक स्थिति एवं क्षेत्रफल पर भी प्रकाश डाला गया है। पचम उपविभाग में जनपद के तहसीलों की चर्चा की गयी है। इनमें से कुछ तहसीले पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं, जिनका उल्लेख विभिन्न संस्कृतियों के परिप्रेक्ष्य में किया गया है। षष्टम् उपविभाग में जल के महत्त्व, एवं उसके प्राकृतिक स्रोत के रूप में सम्पूर्ण जनपद में प्रवाहित नदियों एव झीलों का उल्लेख किया गया है। ध्यातव्य है कि नदियों के तटवर्ती इलाके प्रारम्भ से ही मानव–जाति के लिए आकर्षक एवं उपयोगी रहे हैं। सप्तम् उपविभाग में समुद्र से जनपद की दूरी एवं ऊँचाई के आधार पर जनपद के जलवायु पर प्रकाश डाला गया है। ध्यातव्य है कि यहाँ की जलवायु में जाड़े एवं गर्मी का संतुलित समन्वय है। इस क्षेत्र मे जाडे एवं गर्मी के संतुलन की पृष्ठभूमि में हिमालय से निकटता भी एक प्रमुख कारक है। अष्टम उपविभाग मे जनपद में अवस्थित वन–क्षेत्र एवं उसमें रहने वाले जीव–जन्तुओं का उल्लेख हुआ है। ध्यातव्य है कि यहाँ के जंगल प्रायः मानव–बस्तियों के निकट हैं, ऐसी दशा में कभी–कभी लोगों के द्वारा जंगली पशुओं का शिकार भी कर लिया जाता है। यहाँ के जंगल इमारती लकड़ी की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध हैं। नवम् उपविभाग में जनपद की जनसंख्या एवं लिंगानुपात का उल्लेख किया गया है। जहाँ तक आबादी का प्रश्न है, उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रों की तुलना में इस जनपद की आबादी घनी है। क्योंकि प्रदेश में प्रति वर्ग किलोमीटर 473 व्यक्ति एवं जनपद में प्रतिवर्ग किलोमीटर 880 व्यक्ति निवास करते है।

द्वितीय अध्याय के अंतर्गत, 1800 ई0 में भारतीय प्रायद्वीप के पुरातात्त्विक क्षितिज पर डॉ0 फ्रांसिस बुखानन के आगमन से लेकर अद्यतन इस परिक्षेत्र में समय–समय पर किये गये पुरातात्त्विक अध्ययन में पूरे परिक्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण किया गया। फलतः जनपद एवं समीपवर्ती जनपदों में अवस्थित अनेक पुरास्थल प्रकाश में आए। अनुसंधान की इस प्रक्रिया में मुख्य रूप से अंग्रेज पुराविदों, प्रशासनिक अधिकारियों एवं स्थानीय प्रबुद्ध–व्यक्तियों ने अपनी नैसर्गिक अभिरुचि दिखायी। इसी क्रम में 1956 ई0 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद यहाँ के पुराविदों एवं इतिहासकारों ने अपने पुरातात्त्विक अध्ययन के आधार पर इस परिक्षेत्र से जुड़ी हुयी अनेक ऐतिहासिक समस्याओं के समाधान के लिए सम्यक् प्रयास किया। जनपद के पुरातात्त्विक अध्ययन की श्रृंखला को आगे बढ़ाने में बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुराविदों ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार द्वितीय अध्याय में 1807 से लेकर अब तक किये गये पुरातात्त्विक–मंथन का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय में उन स्थलों एवं वहाँ से उपलब्ध पुरावशेषों का परिचय दिया गया है, जिनका सम्बन्ध नवपाषाण युग से लेकर ऐतिहासिक युग (600ई0) तक है। इस प्रकार इस अध्याय का सृजन जनपद

के सांस्कृतिक अनुक्रम के विशेष पृष्ठाधार में हुआ है। विभिन्न संदर्भों में इस बात की चर्चा पहले ही की जा चुकी है कि इस क्षेत्र में पहली बार मानव का आगमन नवपाषाणयुग में हुआ।

आमी एवं राप्ती नदियो के संगम पर अवस्थित सोहगौरा, नवपाषाण काल से लेकर मध्यकाल तक की संस्कृतियों की क्रीड़ास्थली रहा है। उल्लेखनीय है कि यहाँ विभिन्न संस्कृतियों से जुड़े हुए पुरास्थल पूरे जनपद में विद्यमान हैं, जिनकी चर्चा तृतीय अध्याय में की जा चुकी है। इस परिक्षेत्र में सोहगौरा के समान ही कुछ ऐसे पुरास्थल भी विद्यमान हैं, जिनके अंतस्तल में विभिन्न संस्कृतियों के अवशेष छिपे हुए हैं। ध्यातव्य है कि ऐसे पुरास्थल सर्वेक्षण के दौरान प्रकाश में आए हैं, जहाँ उत्खनन की विशेष आवश्यकता है। उक्त स्थलों की चर्चा, सम्बन्धित संस्कृतियों के अनुक्रम का उल्लेख करते समय अनेक बार हुयी है। सम्पूर्ण सांस्कृतिक अनुक्रम इस प्रकार है[8] :

1. नवपाषाण काल : प्रमुख स्थल : सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा, (बस्ती जनपद), सूसीपार, रामनगर घाट, बड़गो एवं गेड़ार।

2. ताम्रपाषाण काल : प्रमुख स्थल : सोहगौरा, इमलीडीह, नरहन, धुरियापार, सिकरीगंज, बड़गों, चिलवनखोर, बाड़ोडीह, नेवास तथा गेनवरा।

3. प्रारम्भिक लौह काल (प्री0 एन0 बी0 पी0 काल) : प्रमुख स्थल : रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर तथा पावा।

4. प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल (एन0 बी0 पी0 काल) : प्रमुख स्थल : सोहगौरा (चतुर्थ काल), इमलीडीह (तृतीय काल), नरहन (तृतीय एवं चतुर्थ काल), धुरियापार (द्वितीय एवं तृतीय काल), गोपालपुर, मकन्दवार, बदरा तिवारी, बढ़यापार, कोठा, सोनपिपरी, उपधौलिया, गोरसेहरा, गुरुम्ही, देवकली (निकट गगहा), इटार, गेनवरा, जद्दूपट्टी, सिकरीगंज, झौवा, असौजी, दुघरा, उरुवा बाजार, कुरी बाजार, महादेवा बाजार, उसरैन, बनरसिहा, गिरधरपुर–दुबवलिया और डोमिनगढ़।

5. ऐतिहासिक काल (शुंग, कुषाण, गुप्त) : प्रमुख स्थल : देवकली (निकट कौड़ीराम), राजधानी, कोटवा, सोपाइघाट, भीटी तिवारी, मल्लौर, असुरन का पोखरा, सरया, पिपराइच, बांसगाँव गेनवरा और भरोहिया।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक स्थलों में से कुछ, जनपद की भौगोलिक सीमाओं के बाहर, निकटवर्ती जनपदों में अवस्थित हैं।

इसके बाद प्रारम्भिक मध्यकालीन संस्कृतियों के प्रमाण मिलते हैं, जिनको इस अध्ययन में सम्मिलित नहीं किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत विभिन्न युगों में, पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर मानव की जीवन–पद्धति को समझने की कोशिश की गयी है। यह अध्याय भी तृतीय अध्याय की भाँति, नवपाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक, पाँच सांस्कृतिक कालों में विभक्त किया गया है। पुरातात्त्विक ज्ञान की वर्तमान अवस्था में नवपाषाण काल को इस परिक्षेत्र की प्राचीनतम संस्कृति स्वीकार किया गया है। इसी अवधि में विन्ध्यक्षेत्र के मानव का आगमन यहाँ हुआ। नवपाषाण काल में पहुँचते–पहुँचते मानव ने अपने आदिम जीवन से उबरने के लिए कुछ नये प्रयोग किये। इसी **युग** में पहली बार एक ऐसी परम्परा की शुरूआत की गयी जो आज भी किंचित् परिवर्तनों के साथ प्रवहमान है। सरयूपार के जिन पुरास्थलों से नवपाषाणिक अवशेष मिले हैं, उनमें सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा (बस्ती जनपद), सूसीपार, रामनगरघाट, बड़गों एवं गेड़ार का उल्लेख किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड में ताम्रपाषाणिक मानव की जीवन–पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। इस संस्कृति के अवशेष मुख्यतः जनपद के सोहगौरा (द्वितीय एवं तृतीय काल), इमलीडीह (द्वितीय काल), नरहन (प्रथम काल) एवं धुरियापार (प्रथम काल) के अतिरिक्त संतकबीर नगर जनपद में अवस्थित बड़गों, चिलवनखोर, बाड़ोडीह, नेवास तथा गेनवरा से उपलब्ध हुए हैं।

तृतीय खण्ड में प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 प्रयोक्ता और लौह–प्रयोक्ता लोगों की जीवन–पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। लौह–युगीन स्थलों में मुख्यतया रामग्राम, देवदह पिकलीकानन तथा समीपवर्ती जनपद कुशीनगर एवं इसी जनपद में अवस्थित पावा का उल्लेख किया जा सकता है। इन स्थलों में कुशीनगर एवं पावा का उत्खनन हो चुका है। ध्यातव्य है कि कुशीनगर एवं पावा के अतिरिक्त अन्य लौह युगीन स्थलों की पहचान विवादग्रस्त है। उपलब्ध साक्ष्यों के आलोक में विद्वानों ने इनकी पहचान करने की कोशिश की है।

चतुर्थ खण्ड में प्रारम्भिक ऐतिहासिक युगीन मानव की जीवन–पद्धति को उद्घाटित किया गया है। इस काल का सम्बन्ध एन0बी0पी0डब्लू0 संस्कृति से है। सर्वेक्षण के दौरान लगभग 30 पुरास्थल ऐसे मिले जो कि अतीत में प्रारम्भिक ऐतिहासिक मानव की क्रीड़ास्थली रहे होंगे। इन स्थलों का विस्तृत परिचय तृतीय अध्याय में दिया गया है।

इस अध्याय के पाँचवे खण्ड में ऐतिहासिक काल (200 ई0 से 600 ई0), अर्थात् कुषाण एवं गुप्त युगीन मानव के क्रिया–कलापों का अध्ययन, पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक में किया गया है। वस्तुतः इस युग में लोगों की धार्मिक प्रवृत्ति का विकास बड़ी तेजी के साथ हुआ है। फलतः विभिन्न देवी देवताओं की मूर्तियों का निर्माण किया गया। इस युग के शासक अत्यंत सहिष्णु थे, अतएव उन्होंने सभी धर्मों को प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि गोरखपुर परिक्षेत्र में अपने आगमन के समय तक मानव–जाति ने एक लम्बी यात्रा पूरी कर लिया था। अब वह अपनी मानवेतर एवं मानवसम स्थितियों से उबरकर विकसित मानव बन चुका था। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध में नवपाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक, मानव की विकास–यात्रा का क्रमिक अध्ययन किया गया है।

संदर्भ :

1. संकालिया, एच0डी0, 1941, *आर्क्यालजी आफ गुजरात,* नटवर लाल एण्ड कम्पनी, बाम्बे।
2. नौटियाल, के0 पी0, 1969, *आर्क्यालजी आफ कुमायूँ,* चौखाम्भा बनारस।
3. सिंह, शिवबहादुर, 1979, *आर्क्यालजी आफ पांचाल,* आगम काला प्रकाशन, दिल्ली।
4. कुमार, दिलीप 1986, *आर्क्यालजी आफ वैशाली,* रामानन्द विद्याभवन, नई दिल्ली।
5. सिंह, एच0 डी0 1972, *आर्क्यालजी आफ लखनऊ,* परितोष प्रकाशन, लखनऊ।
6. कुमार, ब्रजमोहन, 1987, *आर्क्यालजी आफ पाटलिपुत्र,* रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली।
7. राजन, के0 1994, *आर्क्यालजी आफ तमिलनाडु,* बुक इण्डिया पब्लिसिंग कम्पनी, दिल्ली।
8. विशेष के लिए, द्रष्टव्य इसी शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

ऋग्वेद	:	सायण भाष्य सहित 5 खण्ड, वैदिक एवं संशोधन मंडल, पूना, 1933–51
अथर्ववेद	:	सुबोध भाष्य, दामोदर सावतलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी (सूरत) 1950
शतपथ ब्राह्मण	:	सायण और हरिस्वामी, भाष्य सहित, बम्बई, 1950
महाभारत	:	गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2021, क्रिटिकल एडीसन, पूना
	:	सम्पादक, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता
	:	अनुवाद, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता
रामायण	:	गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2021
	:	हिन्दी माध्यम व्याख्या सहित, व्याख्याकार पंडित द्वारिका प्रसाद शर्मा, चतुर्वेदी (10 भागों में)
पद्मपुराण	:	गुरूमण्डल ग्रन्थमाला, सं० 18, कलकत्ता 1957–59
विष्णुपुराण	:	बम्बई, 1989
	:	अंग्रेजी अनुवाद, एच०एच० विल्सन, लंदन, 1864–70
विष्णु स्मृति	:	बीस स्मृतियाँ, बरेली, 1966
अष्टाध्यायी	:	अष्टाध्यायी आफ पाणिनि, सम्पादक, श्रीशचन्द्र बसु
कलियुगराजवृत्तांत	:	एम० कृष्णामाचारियर, *हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर*, मद्रास, 1927
कथासरित्सागर	:	सोमदेव, दिल्ली, 1970 (प्रथम संस्करण), पुनर्मुद्रण (1977)
मुद्राराक्षस	:	(शूद्रक कृत) सम्पादक, आर०के० ध्रुव, पूना, 1930
सौन्दरनन्द	:	अश्वघोष
उदान	:	सम्पादक, पी० स्टाइनयल, पालिटेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1885; नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959; अंग्रेजी अनुवाद, डी०एस० स्ट्रांग, लंदन, 1902

जातक : अनुदित, ई०बी० कावेल, लंदन, 1957

थेरगाथा : सम्पादक, एच० ओल्डेनवर्ग, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1883; नालंदा देवनागरी संस्करण 1959, अंग्रेजी अनुवाद,, श्रीमती रिज डेविड्स, *सम्स आफ अर्ली बुद्धिस्ट्स,* जिल्द 2, ब्रदरेन, लंदन, 1964

दीर्घनिकाय : सम्पादक, टी०डब्लू०, रीज डेविड्स और जे०इ० कारपेन्टर, तीन जिल्दों में सम्पन्न, पालिटेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1890–1911, नालंदा देवनागरी संस्करण, तीन जिल्दों में सम्पन्न, 1958; अंग्रेजी अनुवाद, *रिज डेविड्स, डायलाग्स आफ दि बुद्ध,* तीन जिल्दों में, *सेक्रेड बुक्स आफ दि बुद्धिस्ट्स* लंदन, 1899–1926; हिन्दी अनुवाद राहुल सांकृत्यान, *सारनाथ,* 1936

दिव्यावदान : सम्पादक, ई० बी० कावेल और आर० ए० नेल, कैम्ब्रिज, 1886; दि मिथिला इन्स्टीट्यूट, दरभंगा, बिहार, 1959

धम्मपद : सम्पादक एस० एस० थेर, पालिटेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1914; नालंदा देवनागरी संस्करण; अंग्रेजी अनुवाद, एफ० मैक्समूलर, *सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,* जिल्द 10, (भारतीय-संस्करण), दिल्ली 1965, अंग्रेजी अनुवाद, राधाकृष्ण, मद्रास, 1974

बुद्धचरित : सूर्यनारायण चौधरी द्वारा अनुदित, 2 वाल्यूम्स, बनारस 1942

महापरिनिव्वानसुत्त : गोरखपुर जनपद में उद्धृत अंश

सहायक ग्रन्थ :

अग्रवाल, वासुदेव शरण : *मत्स्य पुराण : ए स्टडी,* काशीराज ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी

: *वाकाटक गुप्त एज* (आर० सी० मजूमदार और ए० एस० अल्टेकर) में, पृष्ठ 446, नई दिल्ली, 1967 (1986 रिप्रिंट)

: टेराकोट्टा फिगुराइन्स आफ अहिच्छत्रा (डिस्ट्रिक्ट बरेली), *ऐन्सियण्ट इण्डिया* नं० 4, पृष्ठ 105, नई दिल्ली, 1947–48

ओम प्रकाश : *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर,* इलाहाबाद, १९८७

उपाध्याय, भरत सिंह : *बुद्धकालीन भारतीय भूगोल,* प्रयाग, प्रथम संस्करण 1883

कनिंघम, अलेक्जेण्डर : *ऐन्सियण्ट ज्यागर्फी आफ इण्डिया,* कलकत्ता 1924, नवीन संस्करण वाराणसी, 1963

कुमार, ब्रजमोहन : *आर्क्यालजी आफ पाटलिपुत्र,* रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली, 1987

कुमार, दिलीप : *आर्क्यालजी आफ वैशाली,* रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली, 1986

गोयल, श्रीराम : *गुप्त साम्राज्य का इतिहास,* कुसुमांजलि प्रकाशन,जयपुर, 1987

गुप्त, पी० एल० : *ए बिब्लियोग्रैफी आफ दि हार्ड्स आफ पंचमार्क्ड क्वायन्स आफ एन्सियण्ट इण्डिया*, दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी आफ इण्डिया, बम्बई, 1955

चतुर्वेदी, एस० एन० : *एक्सकेवेशन ऐट सोहगौरा*, गोरखपुर, 1974–75 (अप्रकाशित)

: एडवांस आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालयन तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रीजन आफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड एनवाइरनमेंट*, वाल्यूम 9, 1985, पृष्ठ 101–108.

: एक्सकेवेशन ऐट सठियाँव-फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशंस इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ गोरखपुर एण्ड बस्ती आफ उत्तर प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम 1 नं० 1–2, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, 1980, पृष्ठ 333–340

जैन, जे० सी० : *लाइफ इन ऐन्सियण्ट इण्डिया*, न्यू बुक कम्पनी, बाम्बे 1947

झा, डी० एन० एवं
कृष्णमोहन श्रीमाली (सम्पा०): *प्राचीन भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1981

तिवारी, आर० एवं
आर० के० श्रीवास्तव : एक्सप्लोरेशंस एलांग दि आमी रिवर एण्ड इन इट्स नियर बाई एरियाज इन डिस्ट्रिक्ट सिद्धार्थ नगर, बस्ती एण्ड गोरखपुर, *प्राग्धारा*, अंक 4, 1993–94, पृष्ठ 13–40

दत्त, नलिनाक्ष एवं
कृष्णदत्त बाजपेयी : *उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास*, लखनऊ, 1956 .

नियोगी, रोमा : *हिस्ट्री आफ दि गाहड़वाल डाइनेस्टी*, कलकत्ता, 1959 .

नौटियाल, के० पी० : *आर्क्यालजी आफ कुमायूं*, चौखम्भा, बनारस, 1969 .

पाण्डेय, जे० एन० : *पुरातत्त्व विमर्श*, विद्या प्रकाशन, यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1983

पाण्डेय, रामनिहोर : *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास*, प्रामानिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1983

पाण्डेय, राजबलि : *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास*, गोरखपुर, सं० 2035

पाठक, विशुद्धानंद : *हिस्ट्री आफ कोशल*, वाराणसी, 1963

पार्जिटर, एफ० ई० : *ऐन्सियण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन*, लंदन 1922

पार्जिटर, एफ० ई० : *दि पुराण टेक्सट्स आफ दि डाइनेस्टीज आफ दि कलि एज*, द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1962

पाण्डेय, जगत नारायन : *संसाधन उपयोग और संरक्षण*, वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर, 1991

पेप्पे, डब्लू० सी० : पिपरहवा स्तूप कन्टेनिंग रैलिक्स आफ बुद्ध, *जर्नल आफ दि रायल एसियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड*, 1998 पृष्ठ 575

फ्लीट, जान फेथपुल : *कार्पस इन्सक्रिप्शंस इण्डिकेरम*, वाल्यूम 3, वाराणसी, 1970

: टेक्ट्स आन सोहगौरा कापर प्लेट, *जे० आर० ए० एस०*, वाल्यूम 21 (1907), पृष्ठ 509–533

फ्यूहरर, ए० : *मान्यूमेण्टल एण्टीक्वीटीज एण्ड इन्सक्रिप्शंस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध*, वाराणसी, 1969

बनर्जी, ए० के० : *दि नाथ योगी सम्प्रदाय एण्ड दि गोरखपुर टेम्पुल*, गोरखपुर, 1964

भट्टाचार्य, एस० सी०, वी० डी० मिश्र एवं जे० एन० पाल : *पीपिंग थ्रू दि पास्ट (प्रो० जी० आर० शर्मा मोमोरियल वाल्यूम)*, इलाहाबाद, 2000, पृष्ठ 66–85

मजूमदार, आर० सी० एण्ड (ए० डी० पुसलकर (सम्पा०) : *हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल्स*, भाग–2, बाम्बे 1951 (*दि एज आफ इम्पीरियल युनिटी*)

माथुर, बी० कुमार : *ऐतिहासिक स्थानावलियाँ*, शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969

माण्टगोमरी, मार्टिन : *ईस्टर्न इण्डिया*, वाल्यूम 2, लंदन, 1938

मुकर्जी, पी० सी० : *एन्टीक्वीटीज आफ कपिलवस्तु, तराई ऑफ नेपाल*, (1899), वाराणसी 1969

: *इन्ट्रोडक्सन नरेटिव आफ माई टूर*, 1899

मित्रा, डी० : *बुद्धिस्ट मान्यूमेण्ट्स*, कलकत्ता, 1972

मिश्र, राम सहाय : *मानचित्रावली तथा भौगोलिक वर्णन, गोरखपुर जनपद*, 1972 (भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित)

मिश्र, वी० डी० : *सम ऐस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालाजी*, इलाहाबाद, 1977

मैकडोनल, ए० ए० एण्ड कीथ, ए० बी० : *वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स*, वाल्यूम I एण्ड II, दिल्ली, 1950

रिज, डेविड्स : *बुद्धिस्ट इण्डिया*, कलकत्ता 1902, लंदन, 1903

राय चौधरी, हेमचन्द्र : *प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास*, किताब महल, इलाहाबाद, 1976

राजन, के० : *आर्क्यालजी आफ तमिलनाडु*, बुक इण्डिया पब्लिसिंग कम्पनी, 1994

राकहिल : *दि लाइफ आफ दि बुद्धा*, वाराणसी, 1972

लॉ, बी० सी० : *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया*, दिल्ली, 1939

: *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल*, लखनऊ, 1972

वर्मा, राधाकान्त : *क्षेत्रीय पुरातत्त्व*, इलाहाबाद, 2000 ई०

वर्मा, टी० पी० : ए नोट आन दी कापर क्वायन्स फ्राम नरहन, द्रष्टव्य, *भारती न्यू सीरीज* 3, 1985, पृष्ठ 163–64

: आइडेन्टिफिकेशन आफ प्लेस नेम्स इन सोहगौरा, ब्रांज प्लेट, *जे०ए० एस०इ०*, वाल्यूम 17, पृष्ठ 12 एवं आगे (1991)

वाटर्स, टी० : *आन युवान-च्वांग ट्रवेल्स इन इण्डिया*, वाल्यूम I एण्ड II, लंदन, 1904, दिल्ली 1959

वैशम, ए० एल० : *स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर*, सम्बोधि पब्लिकेशन्स, कलकत्ता 1964

शर्मा, जी०आर० : *भारतीय संस्कृति, पुरातात्त्विक आधार*, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985

शर्मा, जी० आर०, मिश्र,
वी० डी०, मंडल, डी०, मिश्र,
बी० बी० एण्ड पाल, जे० एन० : *विगिनिंग्स आफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद, 1980

स्मिथ, वी० ए० : *दि अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया*, आक्सफोर्ड, 1924

: दि रिमेंस नियर कसया, इलाहाबाद, 1896, *जे० आर० ए० एस०* (1902) पृष्ठ 139

सरकार, डी० सी० : नोट्स आन सम इन्सक्रिप्शंस इन दि कलेक्शन आफ दि एशियाटिक सोसायटी, *जे० ए० एस० एल०*, वाल्यूम 8, 1952, पृष्ठ 103

सिन्हा, के० के० : *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*- 1959, वाराणसी 1967

सिंह, पुरुषोत्तम : *एक्सकेवेशन ऐट नरहन*, बी० आर० पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1994

: आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द-1992, *प्राग्धारा* अंक 3, 1992–93, पृष्ठ 21–35

सिंह, पुरुषोत्तम, माखन लाल : एवं सिंह, अशोक कुमार — एक्सकेवेशन ऐट नरहन-1983-85, *पुरातत्त्व* नं० 15, 1985-86, पृष्ठ 117-120

सिह, पुरुषोत्तम, सिंह, अशोक कुमार एण्ड सिंह, इन्द्रजीत : ट्रायल डिगिंग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा*, अंक 2, 1991-92, पृष्ठ 58

सारस्वत, के० एस० : सीड एण्ड फ्रूट रिमेन्स ऐट इमलीडीह खुर्द- ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *प्राग्धारा*, अंक 3, 1992-93, पृष्ठ 37-41

सिंह, यू० एण्ड पाण्डेय, जे० एन० : *चेंजेज इन दि कोर्स आफ रिवर राप्ती एण्ड देयर इफेक्ट्स आन सेटिलमेण्ट्स*, यू० जी० सी० प्रोजेक्ट, गोरखपुर, 1973

सिंह, शिव बहादुर : *आर्क्यालजी आफ पांचाल*, आगम काला प्रकाशन, दिल्ली, 1979

सिंह, एच० डी० : *आर्क्यालजी आफ लखनऊ*, परितोष प्रकाशन, लखनऊ, 1972

सिंह, डी० पी० एण्ड सिंह जे० के० : आजमगढ़ जनपद का मूलभूत इतिहास, अग्रगामी अध्ययन, *भारतीय इतिहास संकलन समिति पत्रिका*, वाराणसी, पृष्ठ 350

संकालिया, एच० डी० : *दि प्री हिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, पूना, 1974

: *आर्क्यालजी आफ गुजरात*, नटरवलाल एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1941

हार्डी : *मैनुअल आफ बुद्धिज्म इन इट्स माडर्न डेवलपमेण्ट*, चौखम्भा बनारस, 1967, XVI

हापकिन्स, इ० डब्ल्यू० : *दि रिलीजन्स ऑफ इण्डिया*, नई दिल्ली, 1972

श्रीवास्तव, के० एम० : *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु*, नई दिल्ली, 1986

श्रीवास्तव, ए०के० : क्वायंस होर्ड्स आफ यू०पी०

त्रिपाठी, आर० एस० : हिस्ट्री आफ ऐन्सियण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1960

शोध-पत्रिकाएं एवं रिपोर्ट

आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट

आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट

इण्डियन आर्क्यालाजी – ए रिव्यू : आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नई दिल्ली

इण्डियन आर्क्यालाजिकल पालिसी, 1915, कलकत्ता (1916)

एपिग्रैफिया इण्डिका

एन्सियण्ट इण्डिया : बुलेटिन आफ आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नई दिल्ली

जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी

जर्नल आफ दि एपिग्रैफिकल सोसायटी आफ इण्डिया

जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ लंदन

जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

प्रोसीडिंग आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

मैन एण्ड इनवाइरनमेण्ट : बुलेटिन आफ आई० एस० पी० क्यू० एस०, पुणे

हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालजी : जर्नल आफ दि डिपार्टमेण्ट आफ ऐन्सियण्ट हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्क्यालजी, यूनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद

प्राग्धारा : राज्य पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ

पुरातत्त्व : बुलेटिन आफ इण्डियन आर्क्यालाजिकल सोसायटी, नई दिल्ली

युग-युगीन सरयूपार : उ० प्र० इतिहास संकलन समिति पत्रिका, वाराणसी, 1987

विकास पुस्तिका (गोरखपुर मंडल) : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ० प्र०

भारती : बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

गोरखपुर जनपद का भौतिक विभाजन
N
नेपाल
तराई क्षेत्र
आनन्दनगर
महराजगंज
रोहिन नदी
राप्ती नदी
गण्डक नदी
बखीरा
चिलुआ ताल
आमी नदी
गोरखपुर
रामगढ़ ताल
मध्य क्षेत्र
कुआनो नदी
बांसगाँव
दक्षिण क्षेत्र
कछार
भेरीताल
घाघरा नदी
संकेत सूची
ताल
नदियाँ
जनपद मुख्यालय
तहसील मुख्यालय
0
60
कि०मी०
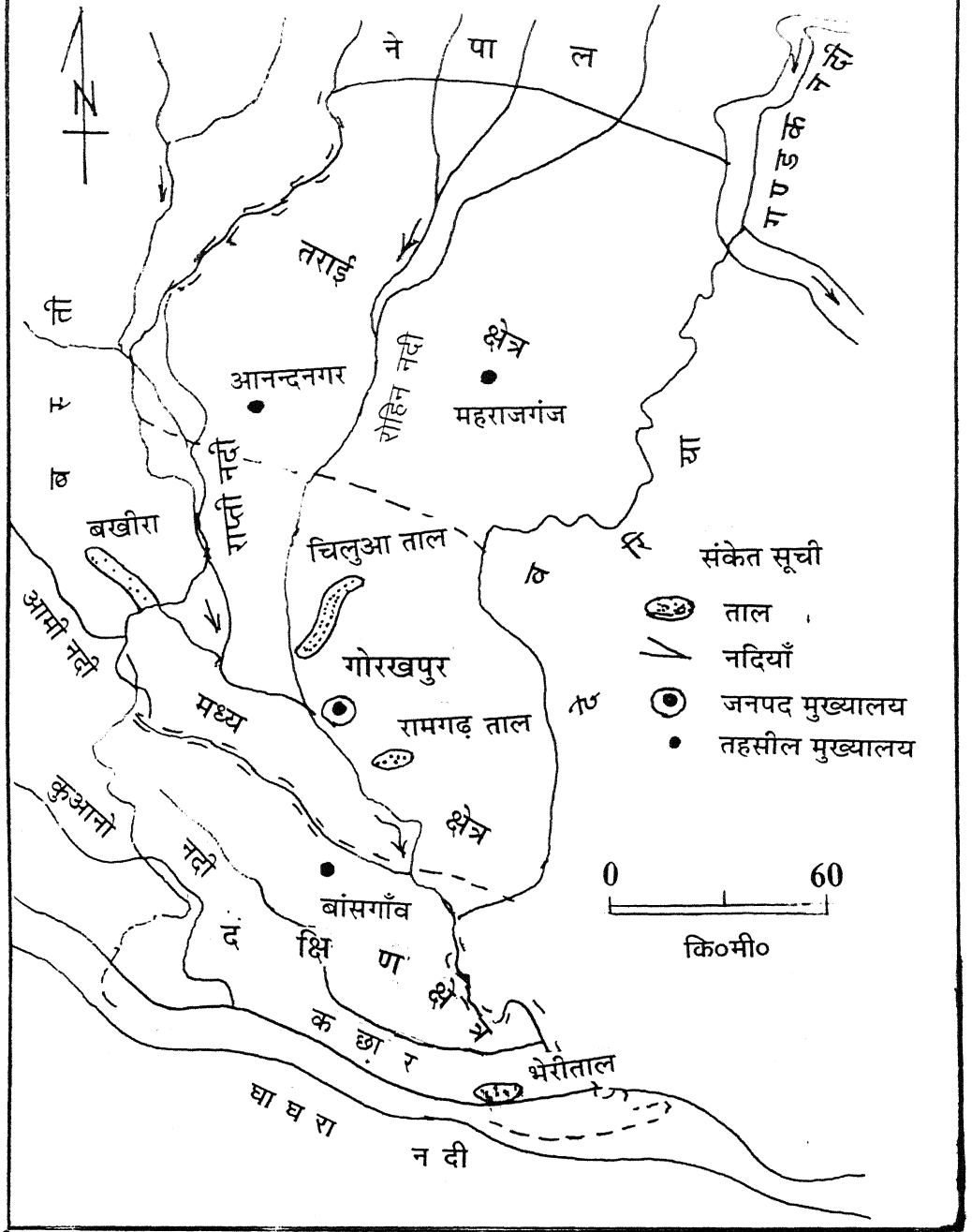
मानचित्र संख्या-1
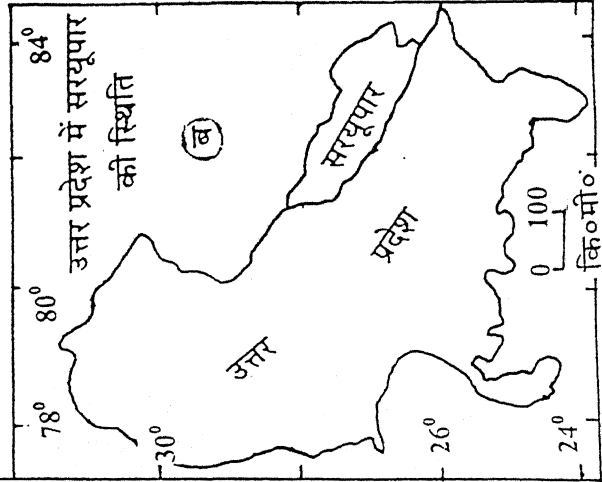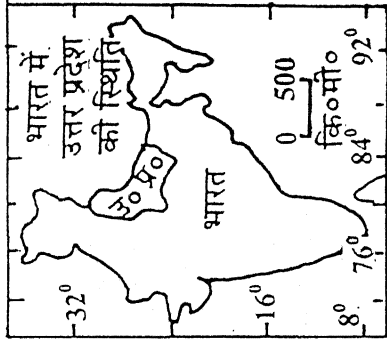
सरयूपार मैदान के नवपाषाणिक-ताम्रपाषाणिक एवं बौद्ध स्थल

भारत में उत्तर प्रदेश की स्थिति
उ० प्र०
भारत
(अ)
0 500
कि०मी०
32°
16°
8°
76°
84°
92°

उत्तर प्रदेश में सरयूपार की स्थिति
(ब)
उत्तर प्रदेश
सरयूपार
0 100
कि०मी०
78°
80°
84°
30°
26°
24°

(स)
ने पा ल
बि हा र
घा घ रा न दी
बहराइच
श्रावस्ती
पिपरहवा
गोण्डा
बस्ती
सूसीपार
रामनगर
बड़गों
गेड़ार
लहुरादेवा
गोरखपुर
सोहगौरा
इमलीडीह
कुशीनगर
फाजिलनगर
देवरिया
नरहन
0 25
किमी०

संकेत सूची
नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक स्थल
बौद्ध स्थल
जनपद मुख्यालय

मानचित्र संख्या-2
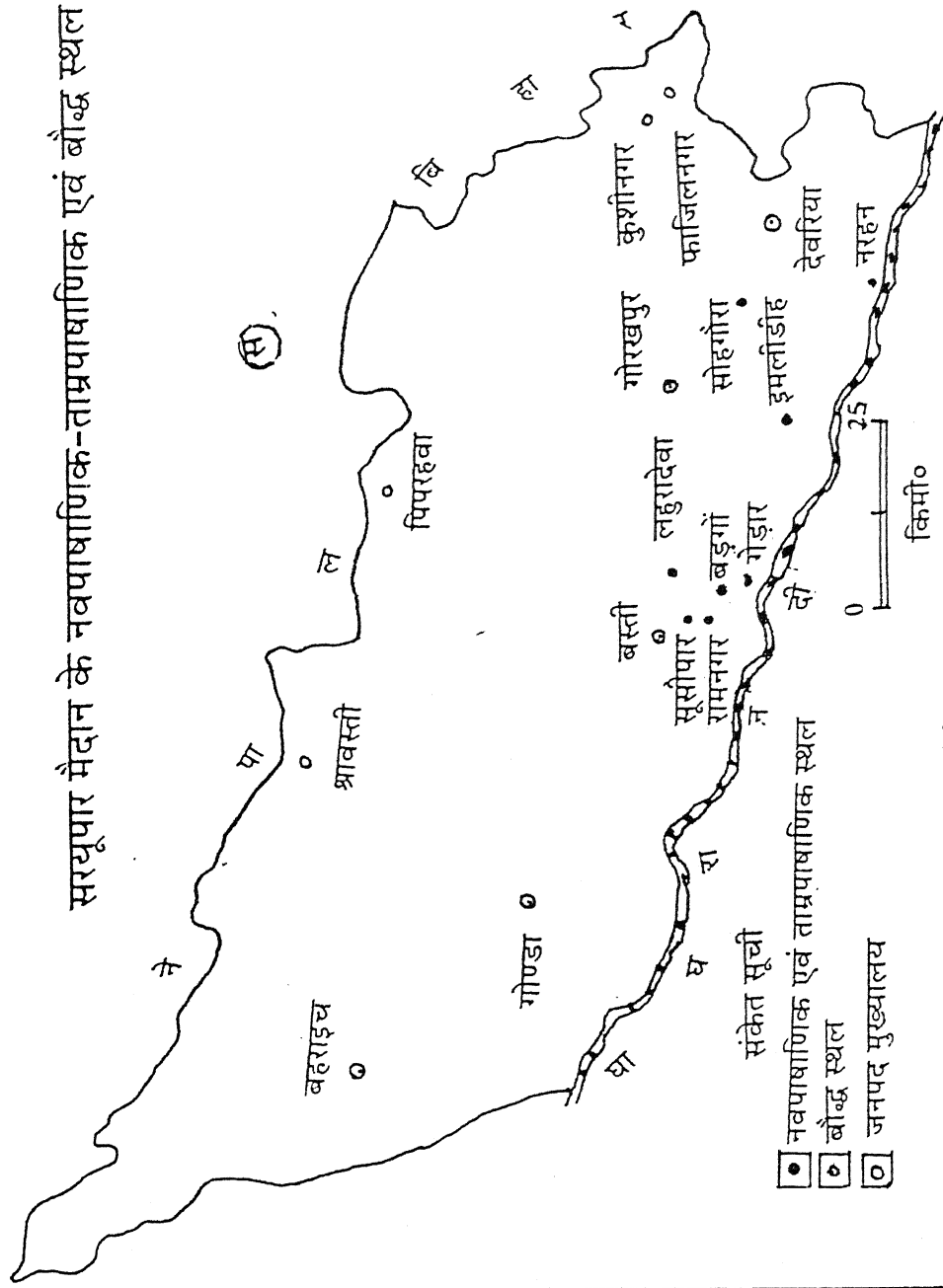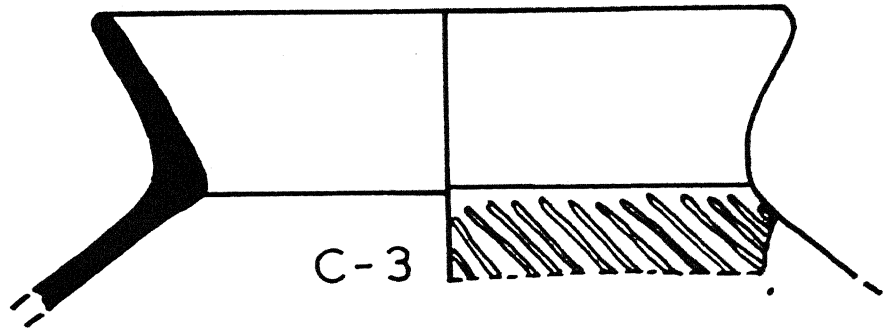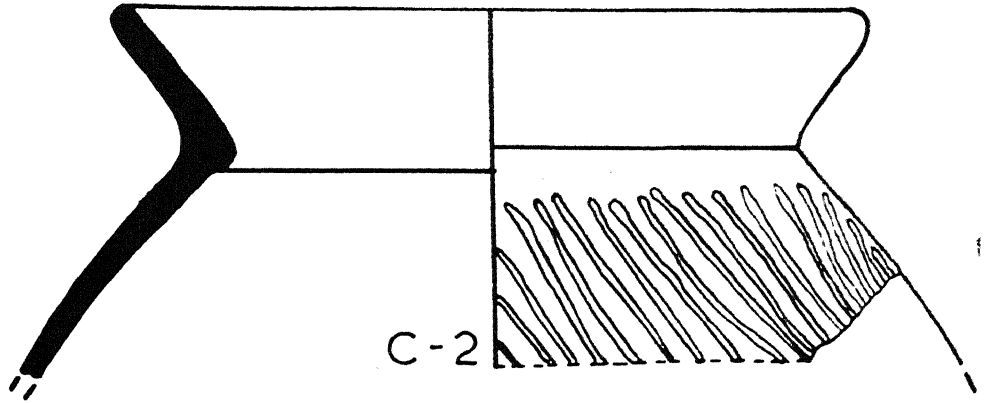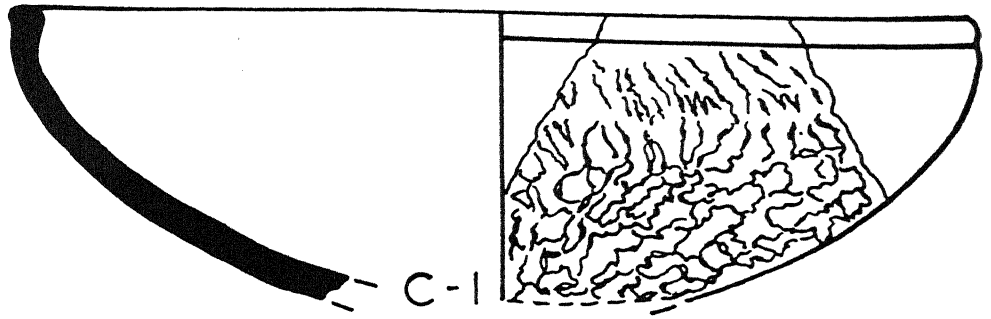
रेखाचित्र संख्या-3, सोहगौरा : प्रथम काल के नवपाषाणिक पात्र-प्रकार
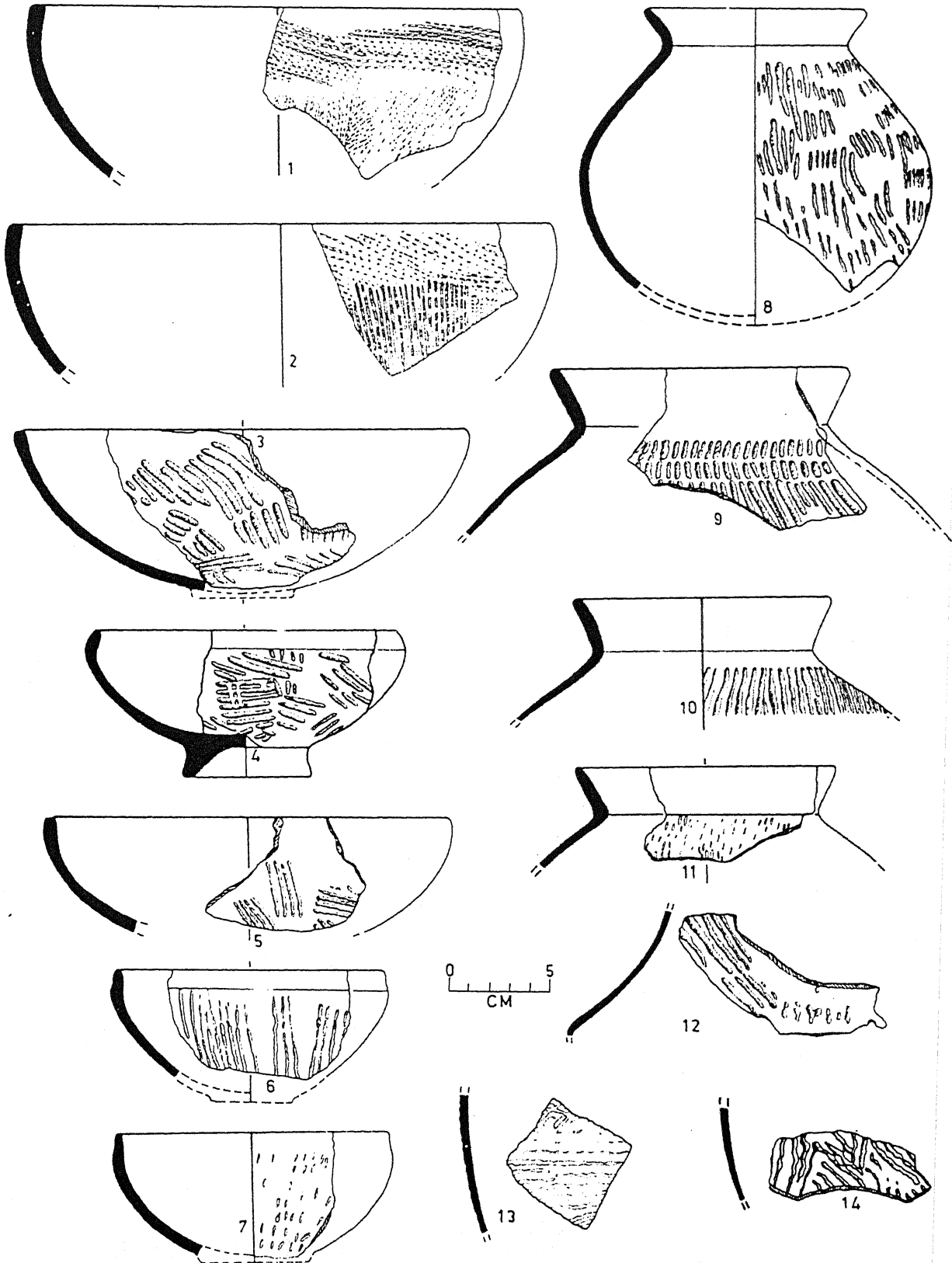
रेखाचित्र संख्या- 4, इमलीडीह : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, प्रागधारा अंक 3, से साभार)
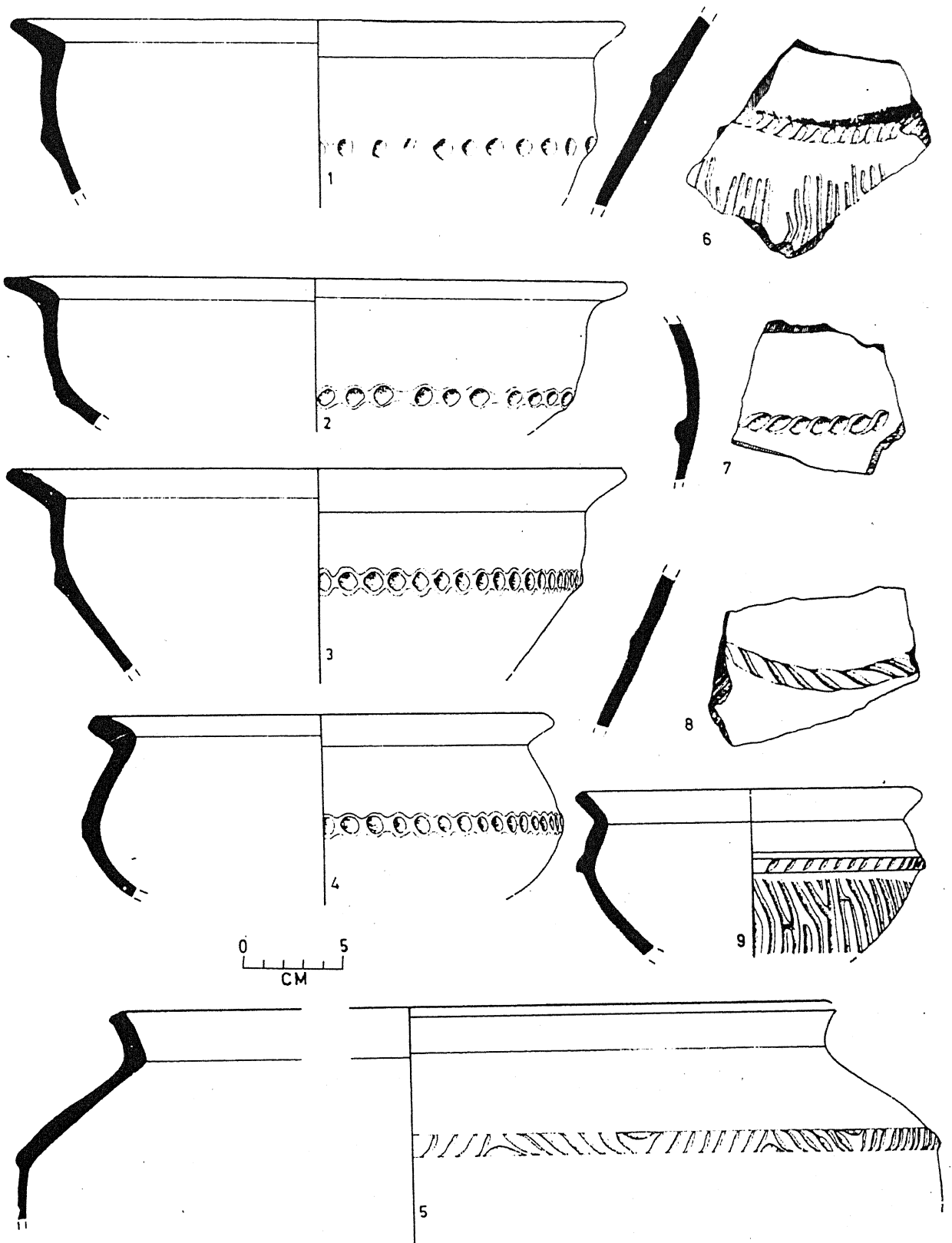
इमलीडीह : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर पर एप्लीक अलंकरण (पुरुषोत्तम सिंह प्राग्धारा, अंक 3 साभार)
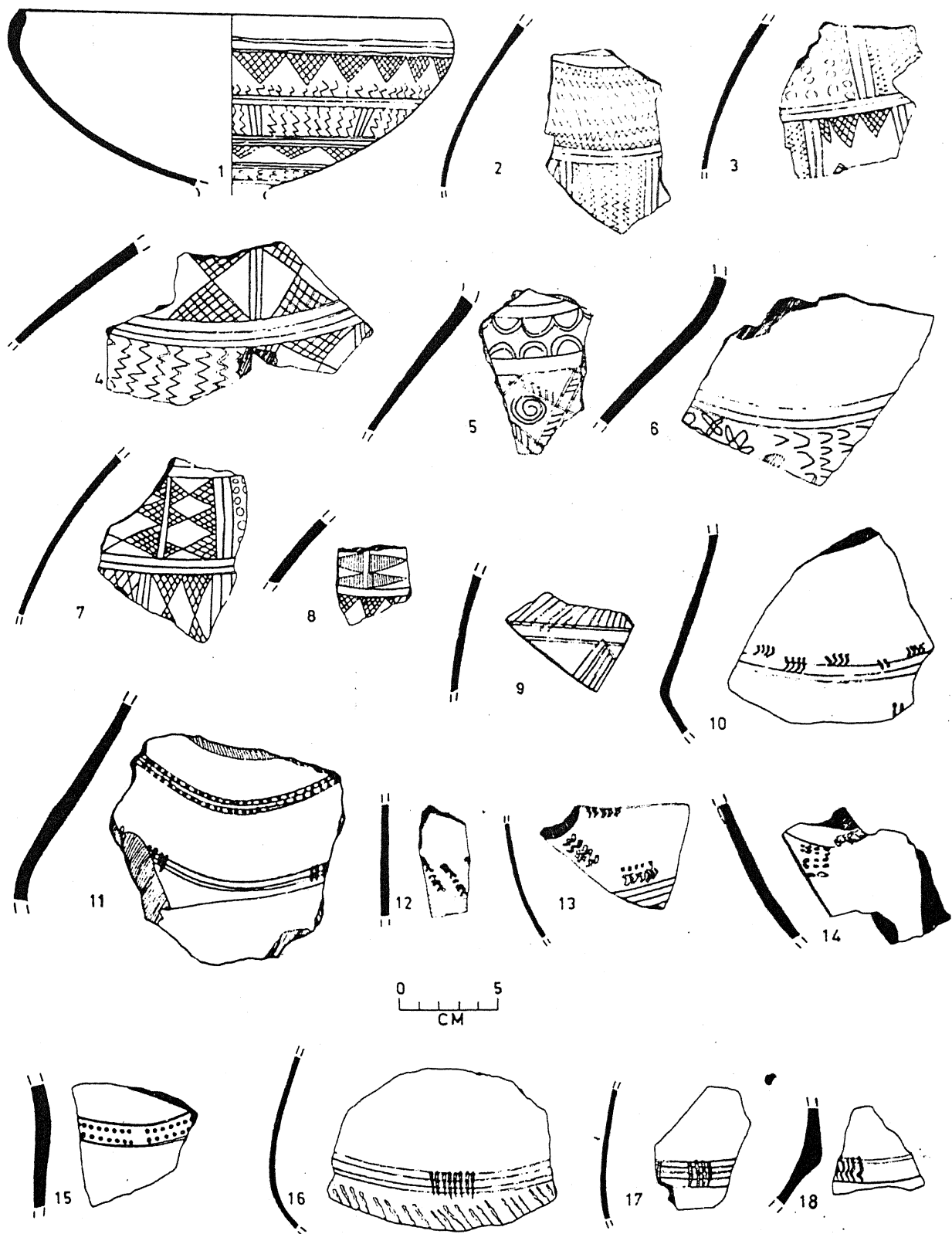
रेखाचित्र संख्या- 6 इमलीडीह : प्रथमकाल, मृद्भाण्डों पर पकाने के बाद उत्कीर्ण और चित्रित आकृतियाँ (पुरुषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 3 से साभार)
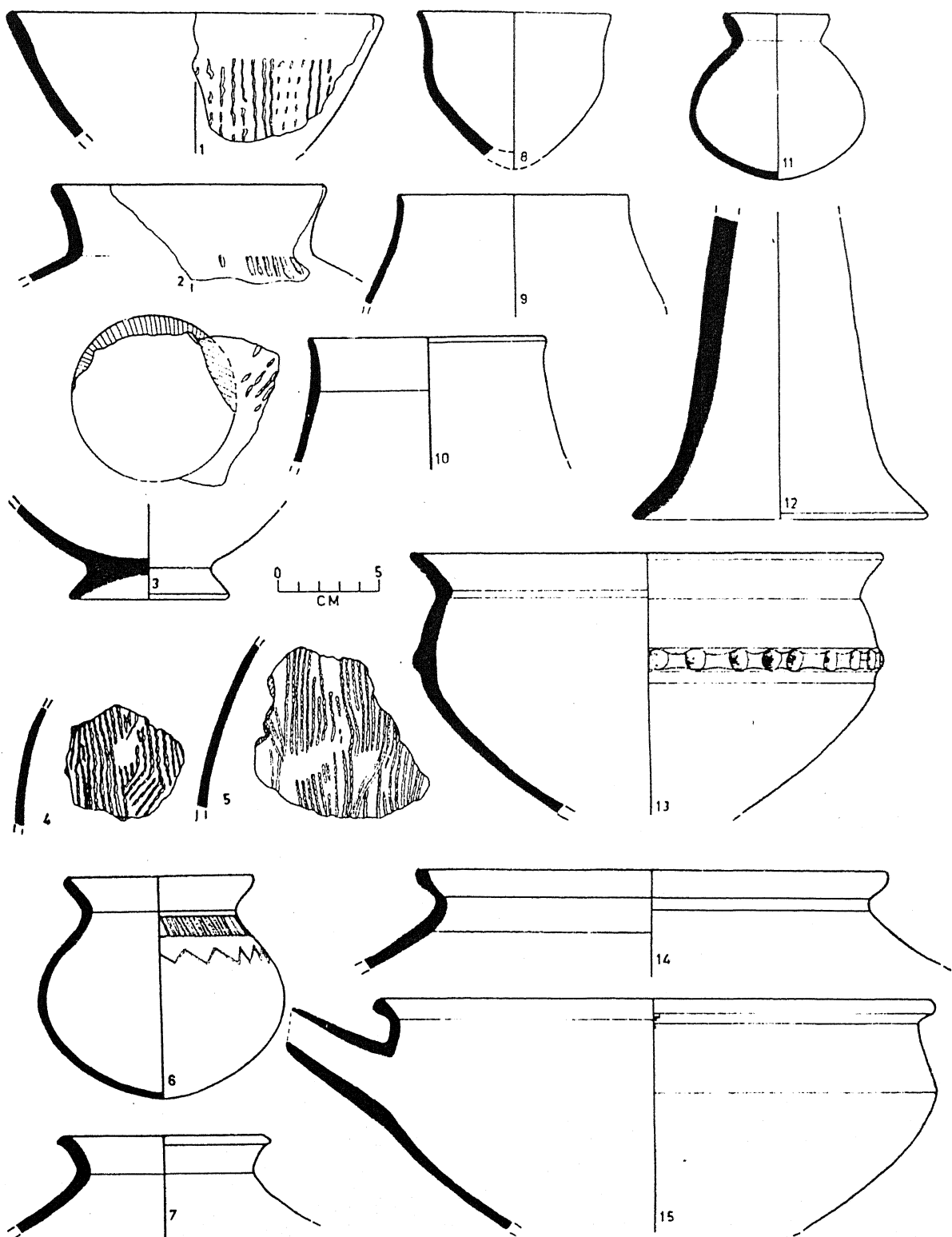
रेखाचित्र संख्या- **8**, इमलीडीह : प्रथम काल के कुछ अन्य पात्र-प्रकार (पुरूषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 4 से साभार)
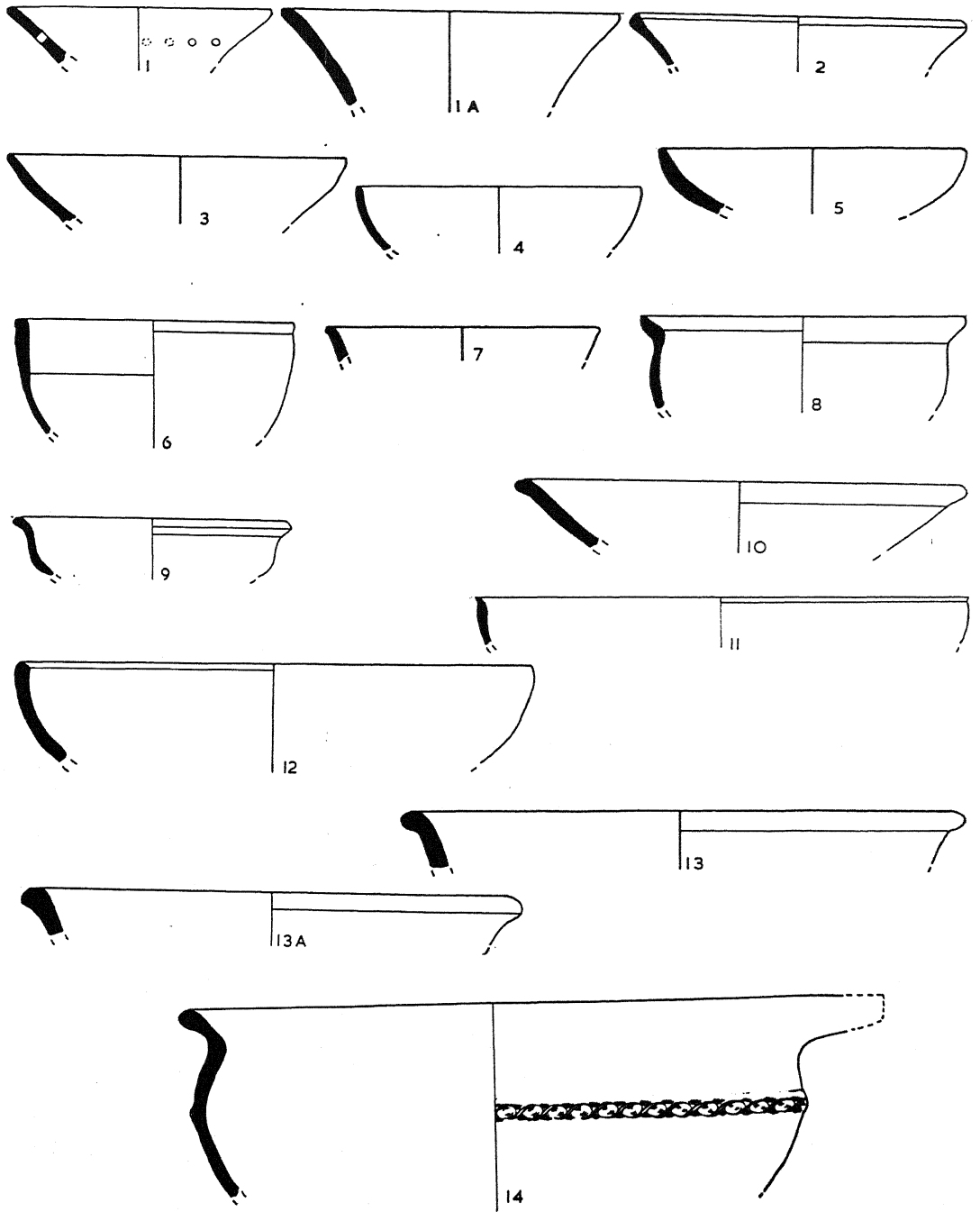
रेखाचित्र संख्या-9, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार
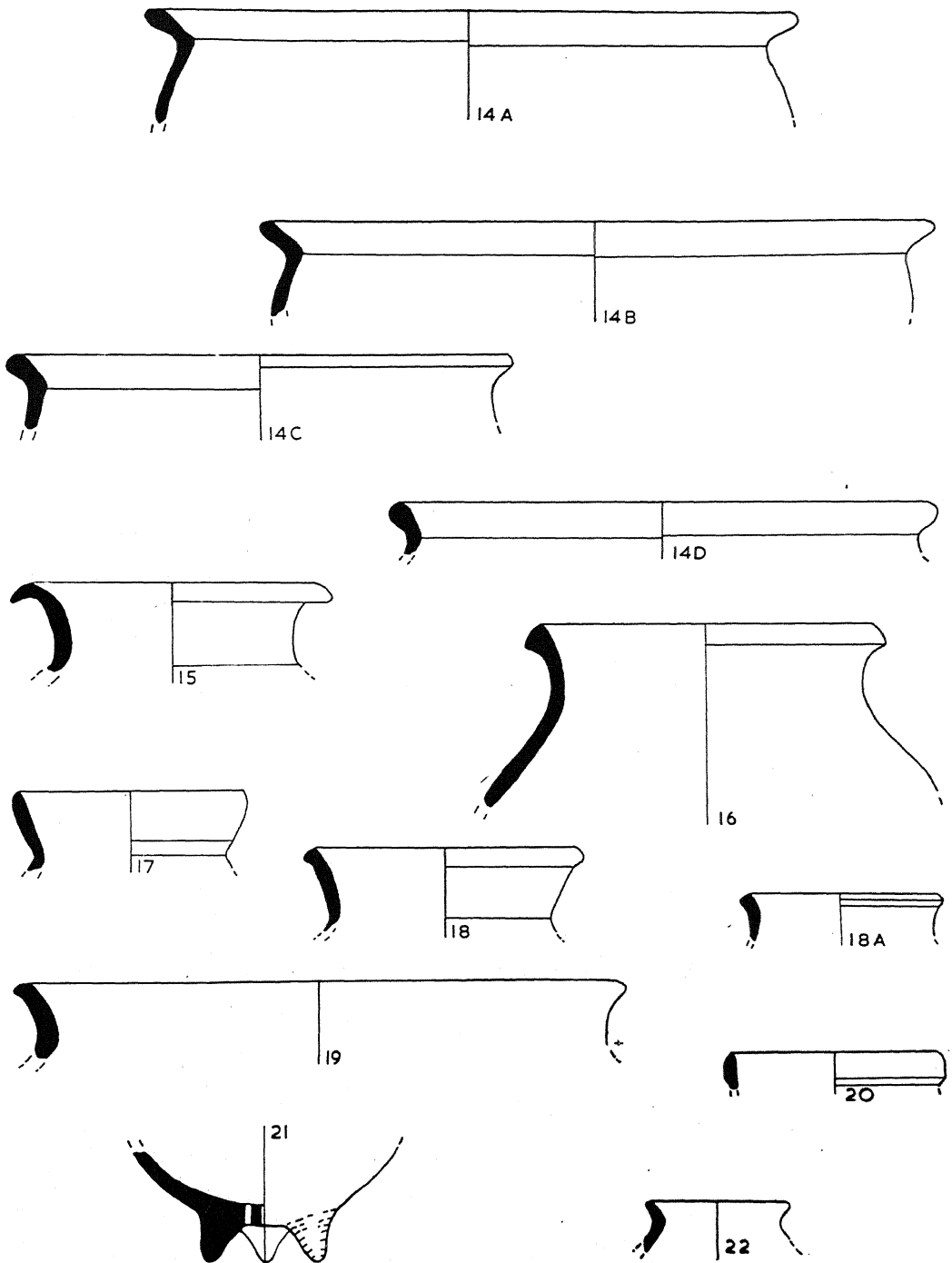
रेखाचित्र संख्या-10, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार
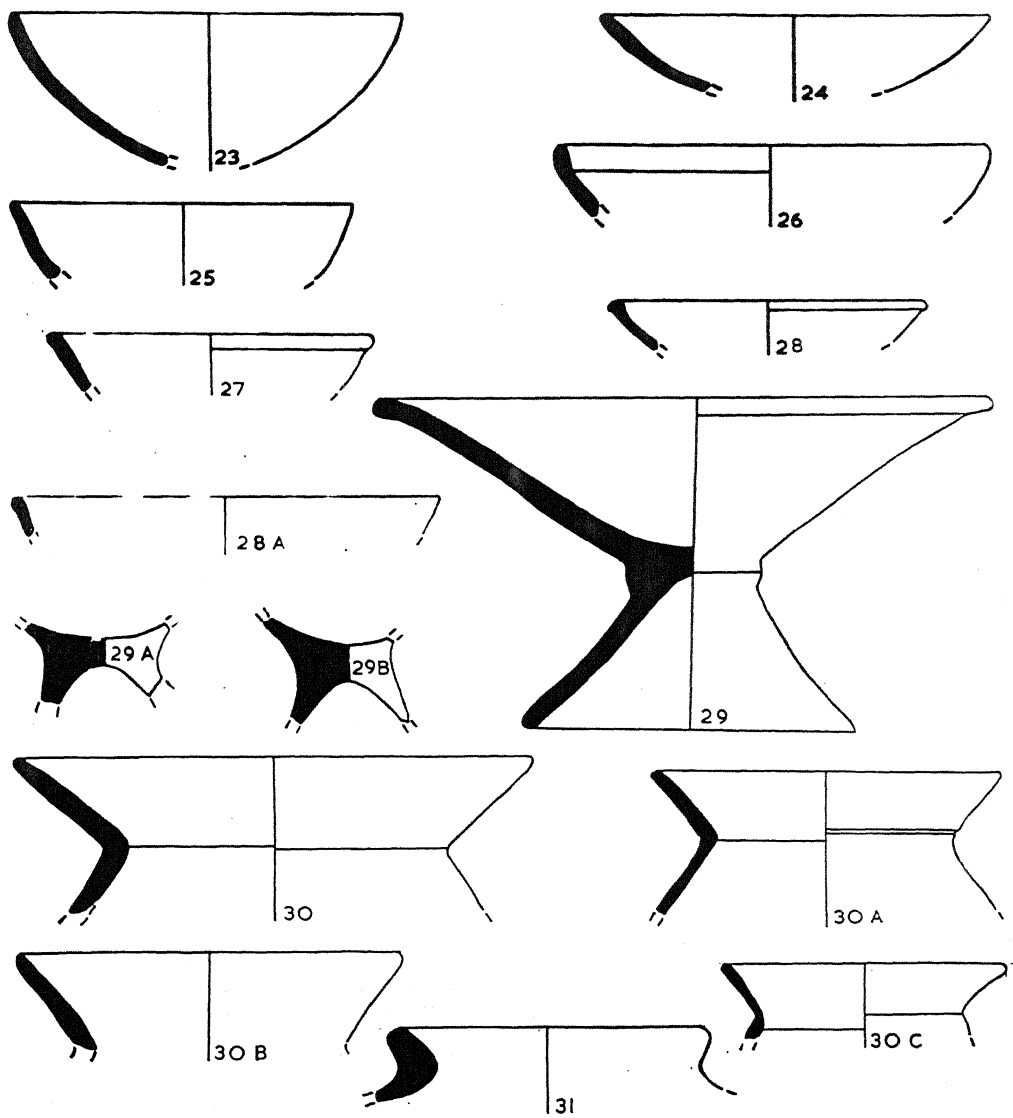
रेखाचित्र संख्या–11, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार
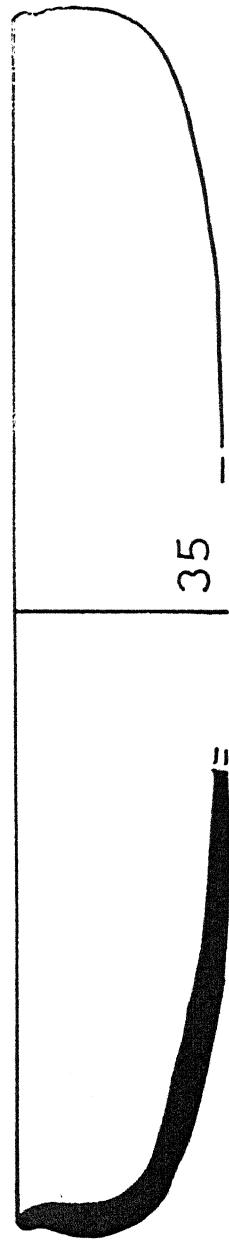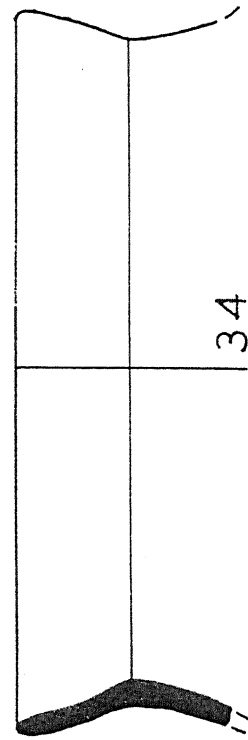
रेखाचित्र संख्या–12, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार
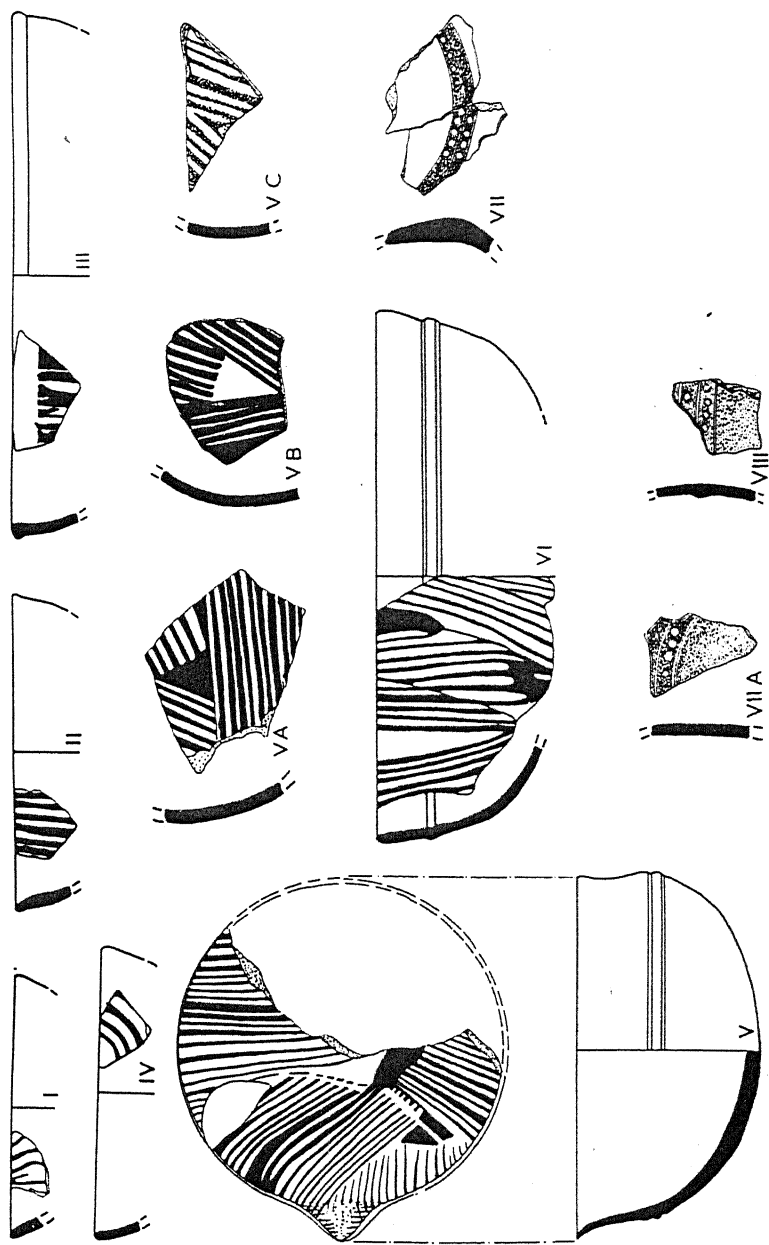
रेखाचित्र संख्या-13, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार
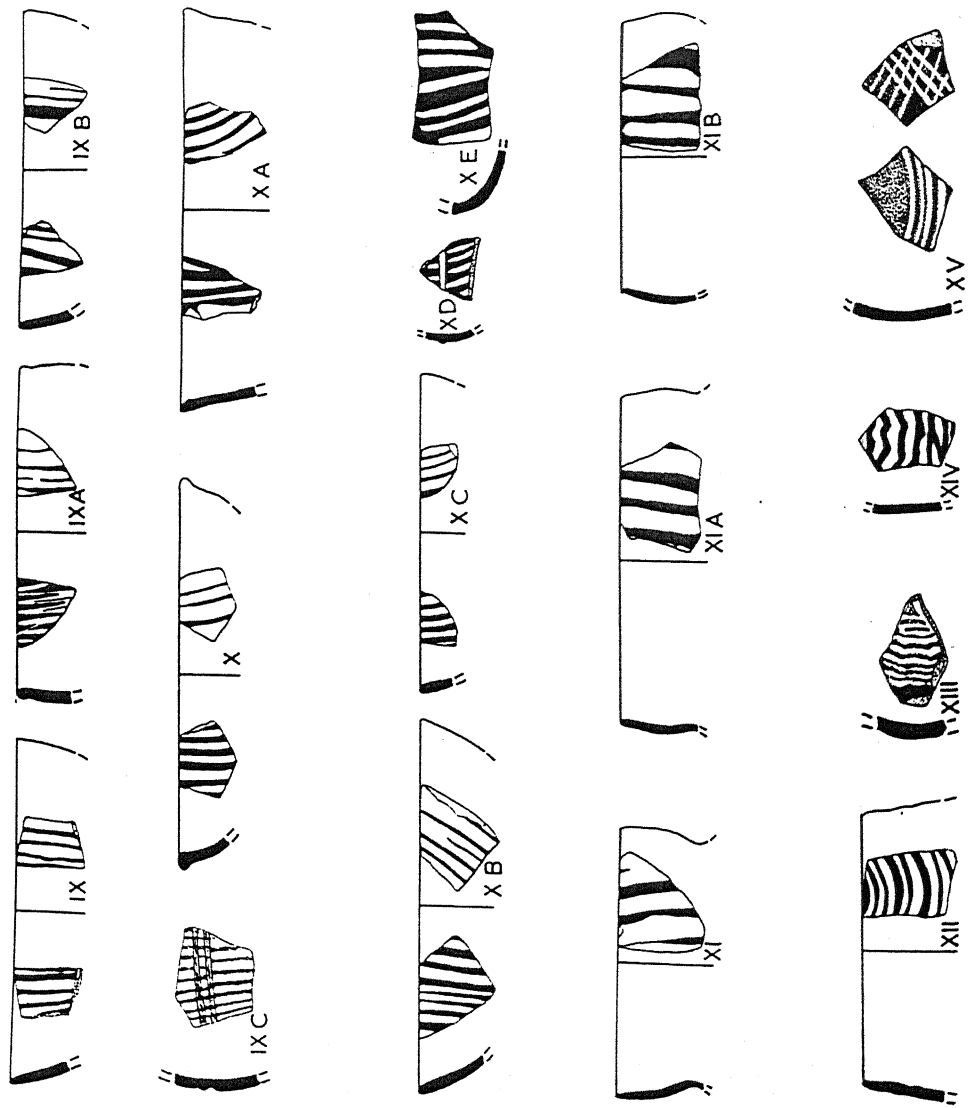
रेखाचित्र संख्या–14, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार

A1

A2

A3

A4
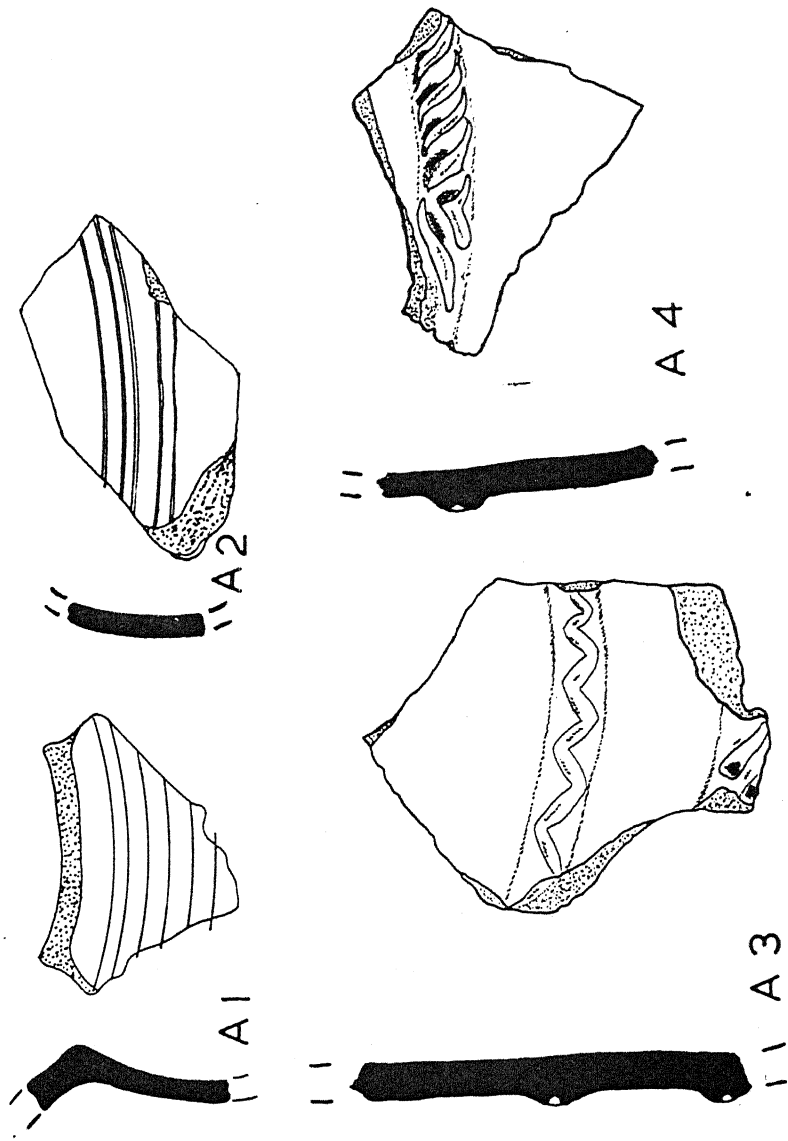
रेखाचित्र संख्या–15, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार
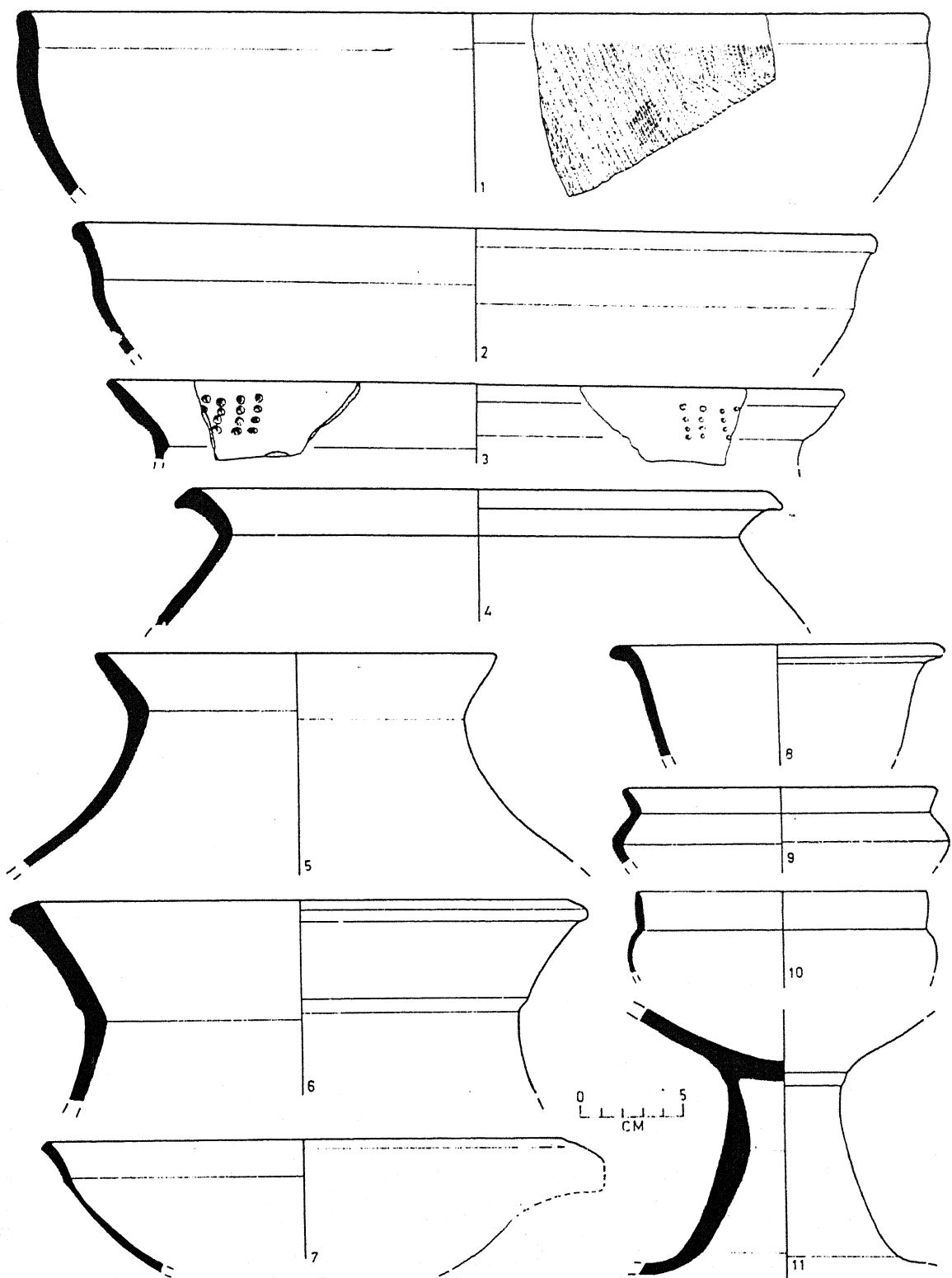
रेखाचित्र संख्या- **16,**
इमलीडीह : द्वितीय काल के कुछ अन्य पात्र-प्रकार (पुरूषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 4 से साभार)
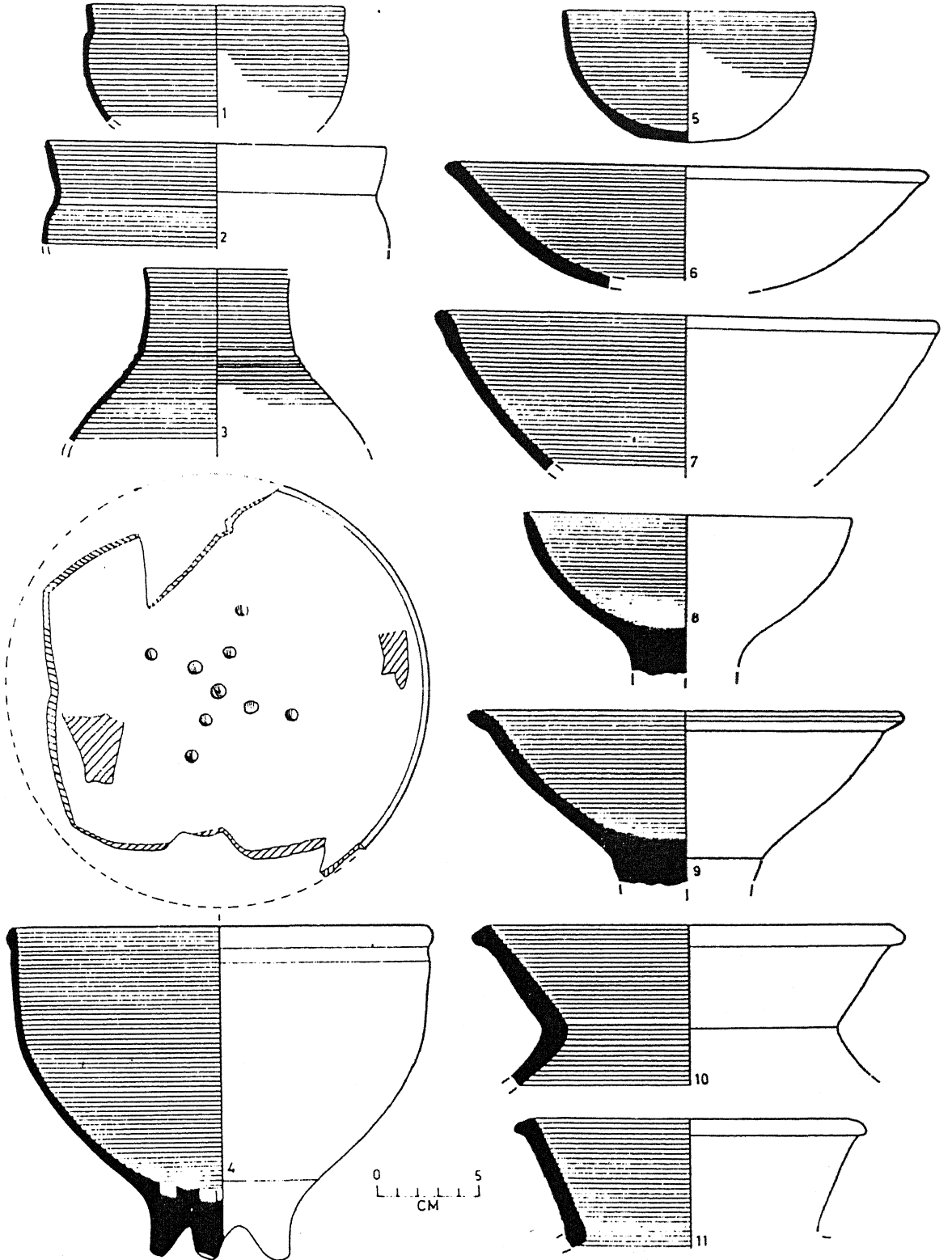
रेखाचित्र संख्या- 17,

इमलीडीह : द्वितीय काल के कुछ अन्य पात्र-प्रकार (पुरूषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 4 से साभार)
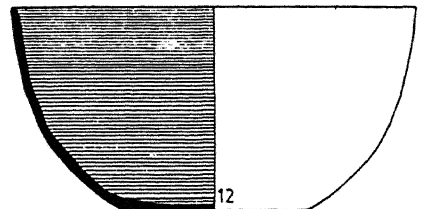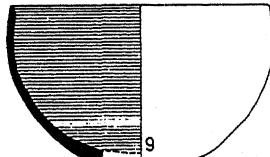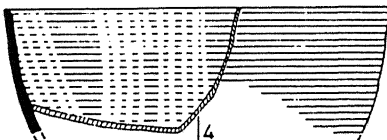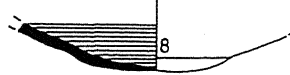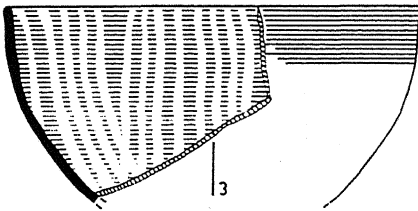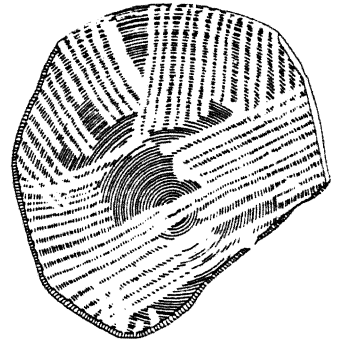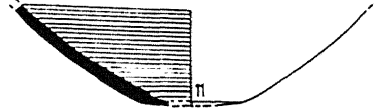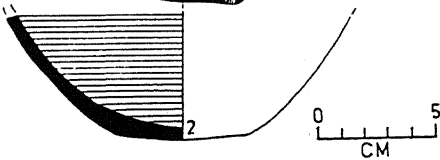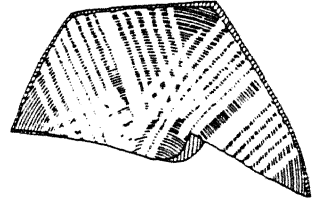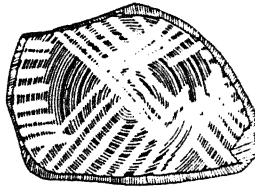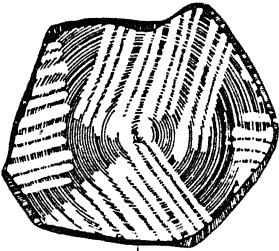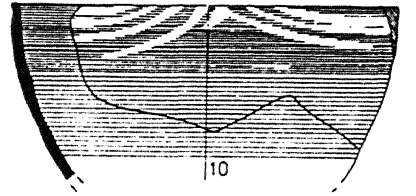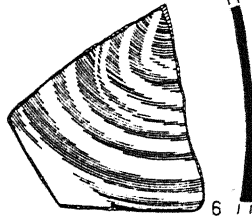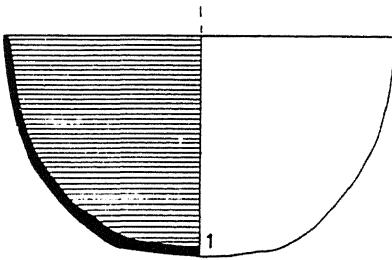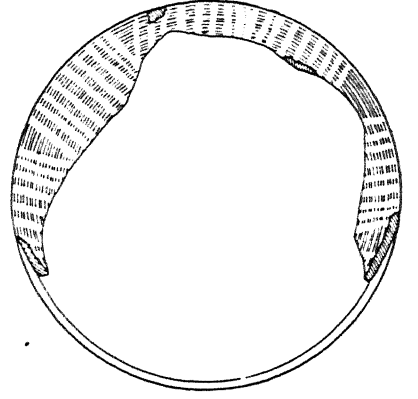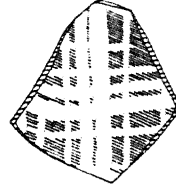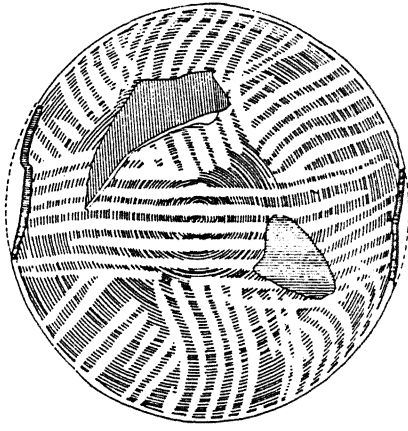
रेखाचित्र संख्या- 18, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन नरहन, से साभार)
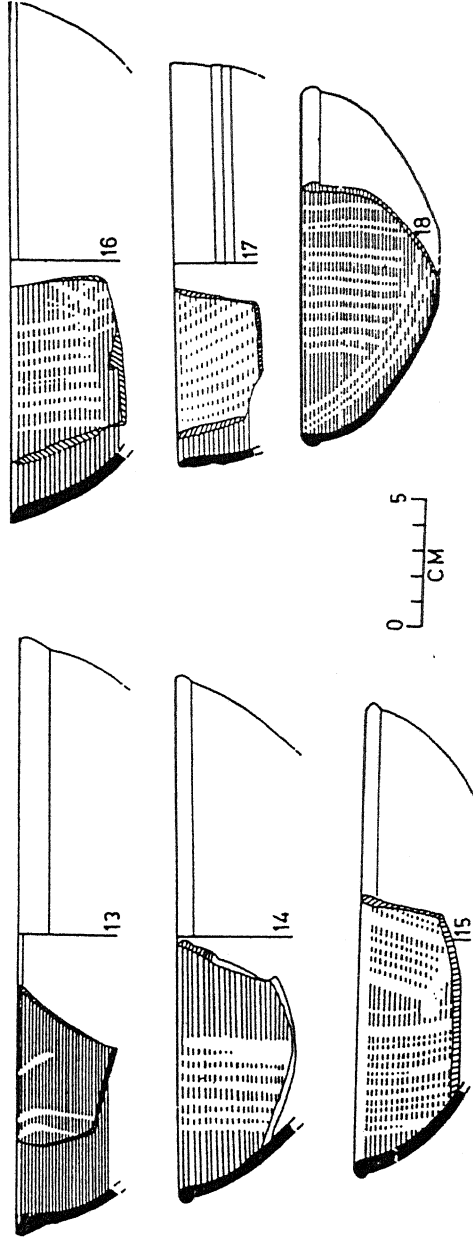
रेखा चित्र संख्या- 19, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)
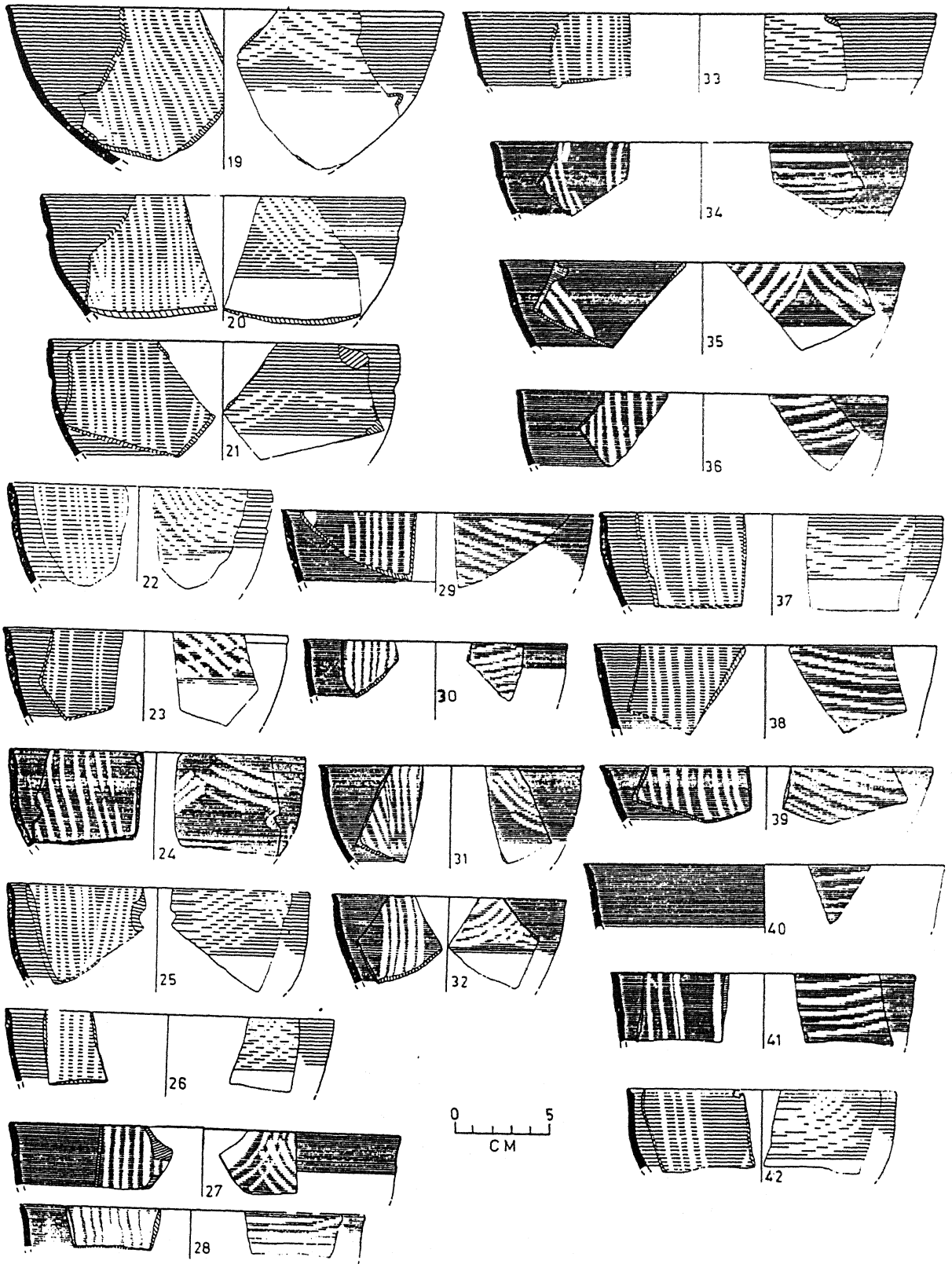
रेखाचित्र संख्या- 20, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)
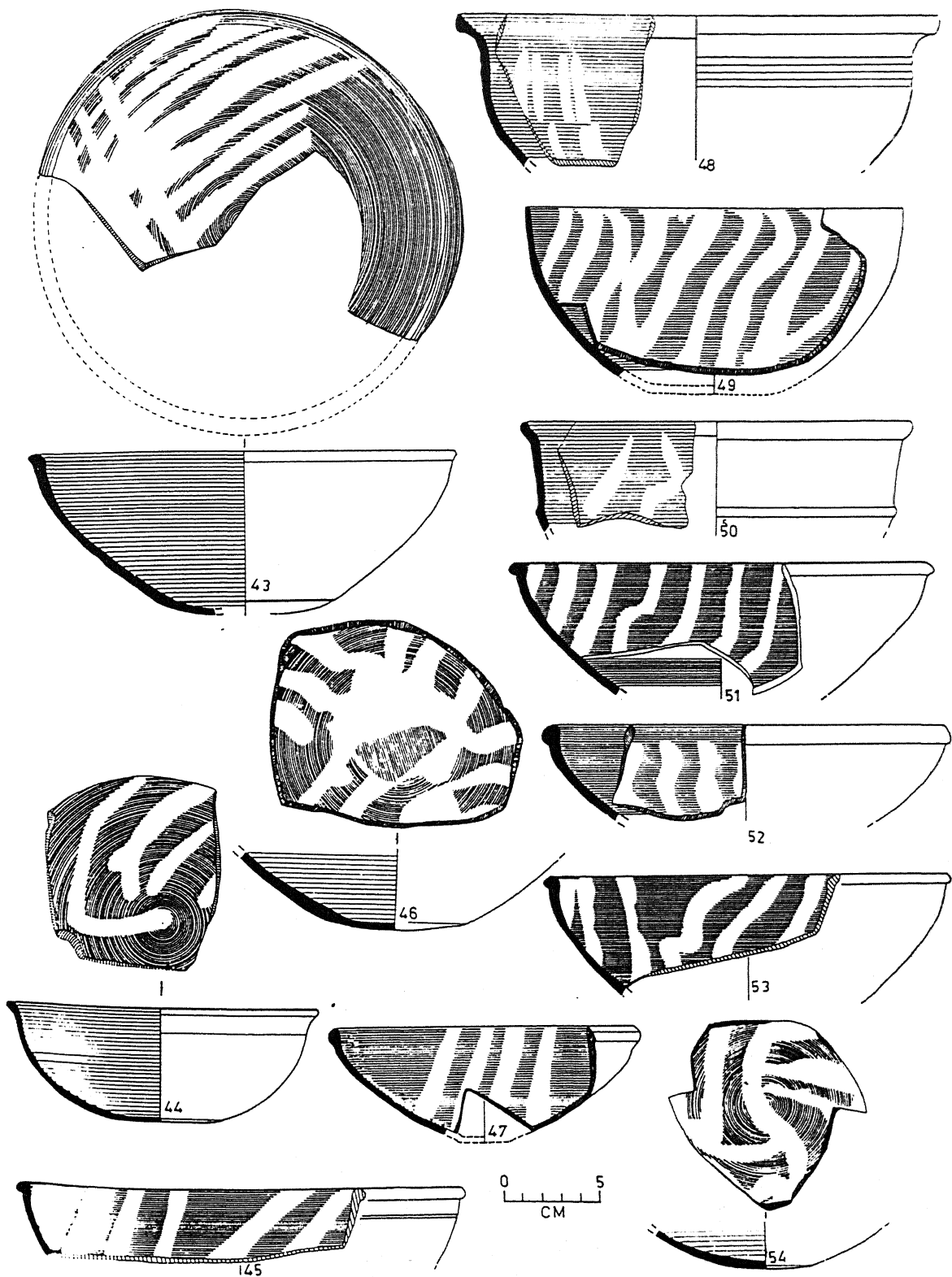
रेखाचित्र संख्या- 21,नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन, से साभार)
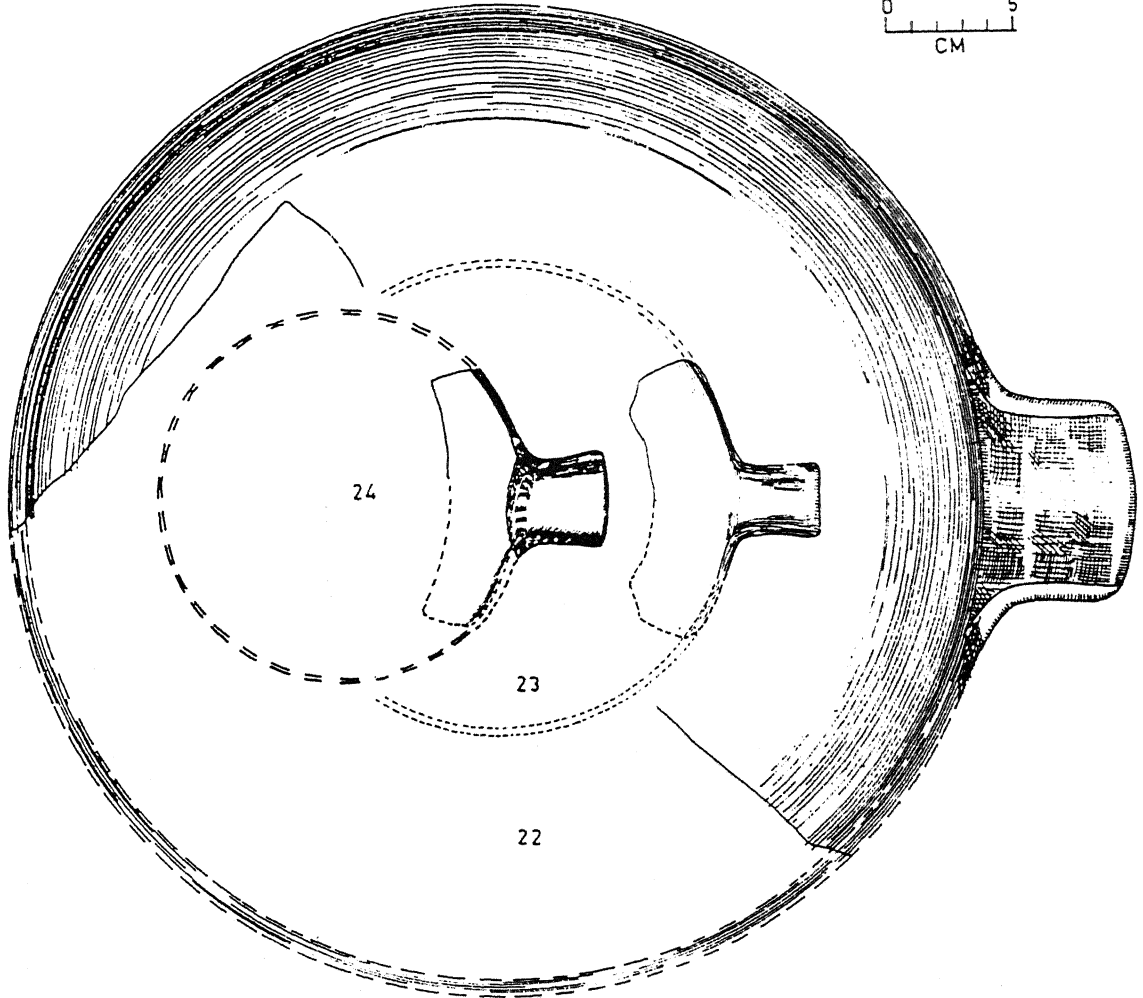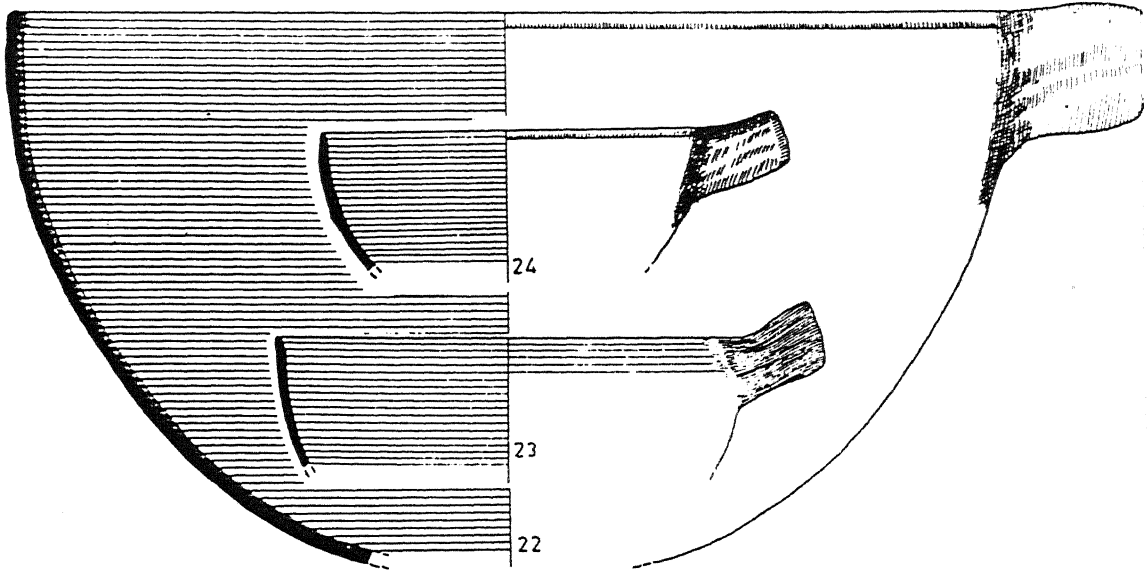
रेखाचित्र संख्या- 22, नरहन : प्रथमकाल, बर्निस्ड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरूषोत्तम सिंह, ऐट नरहन से साभार)
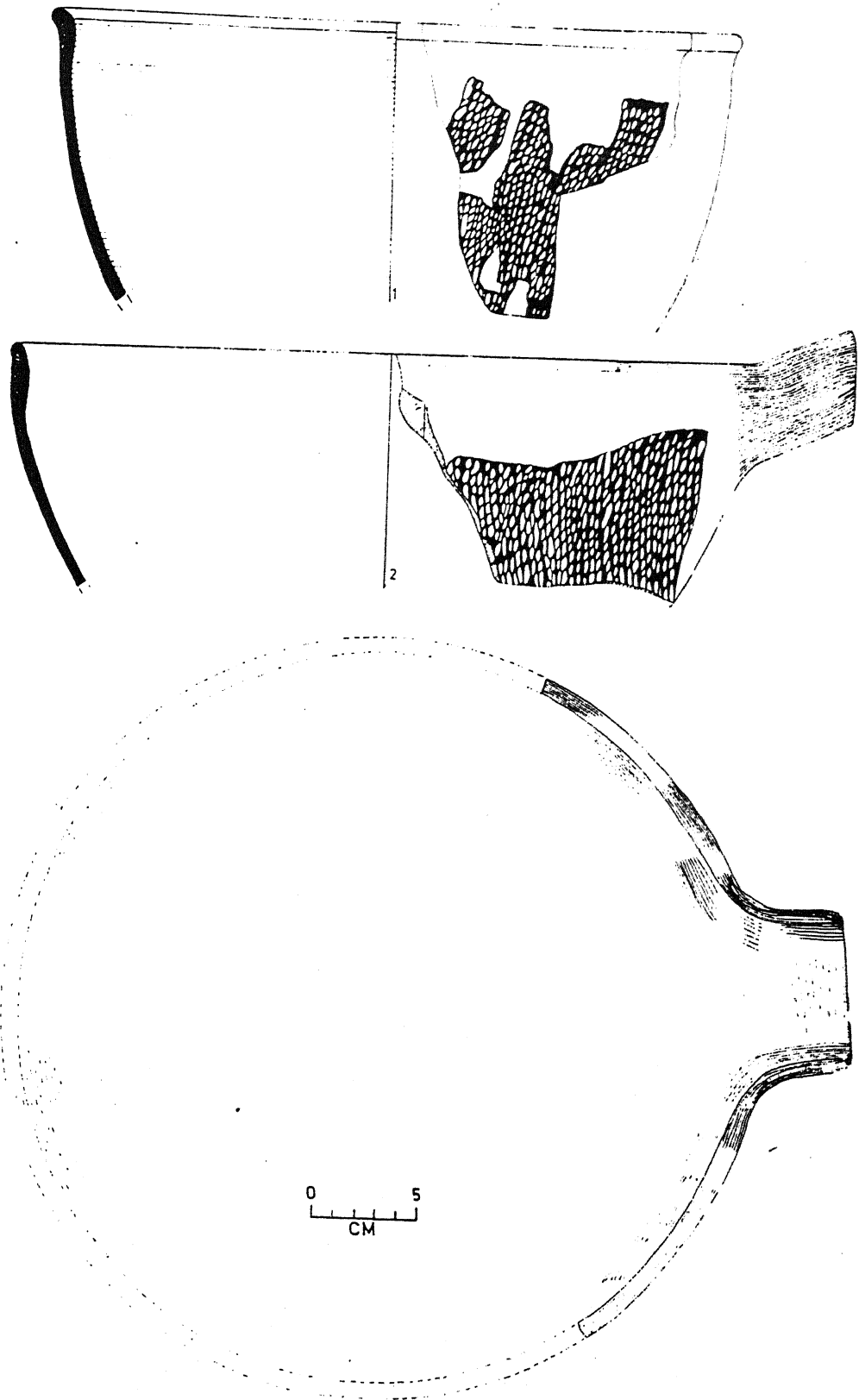
रेखाचित्र संख्या- 23 नरहन : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर (पुरूषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)
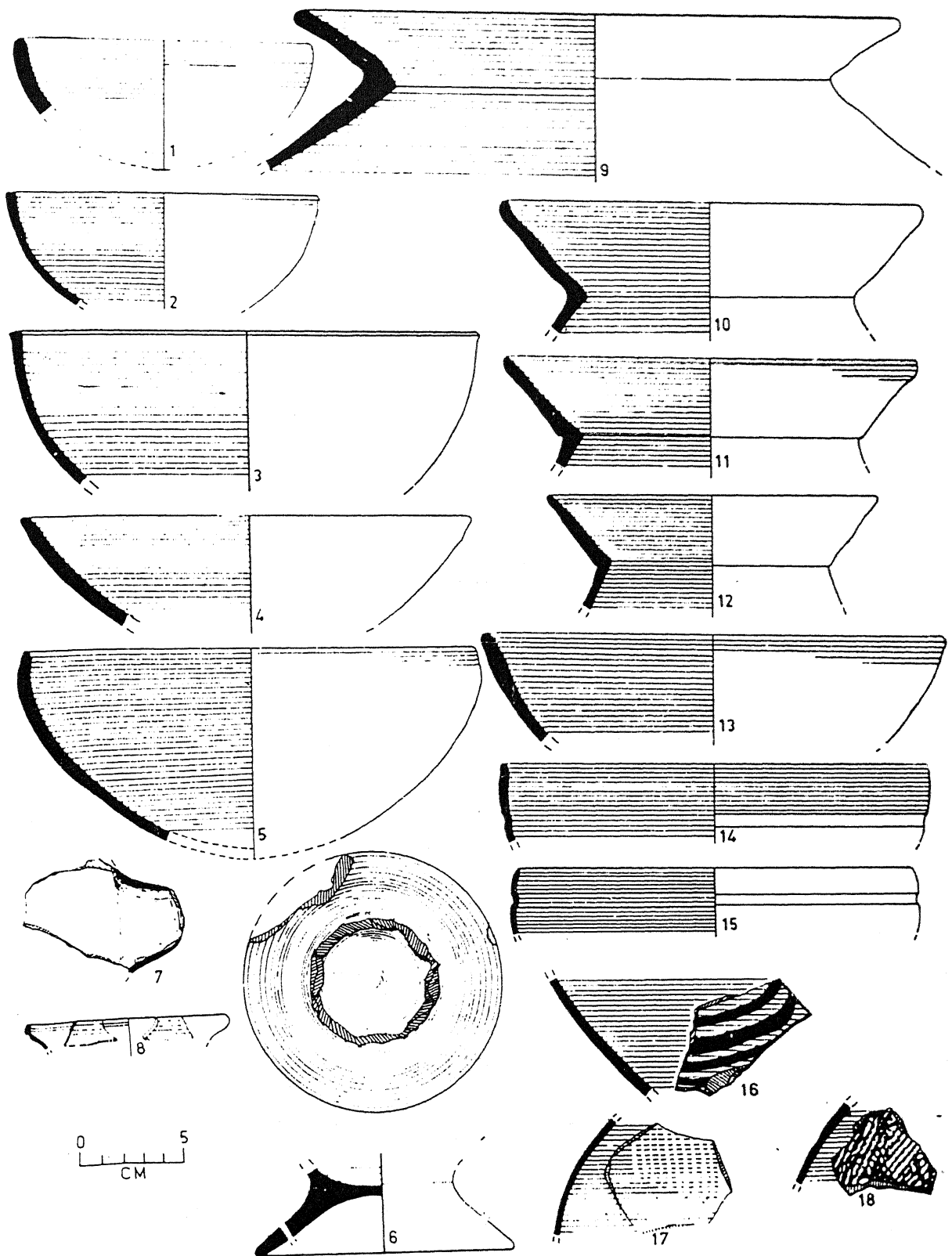
रेखाचित्र संख्या- 24, धुरियापार : प्रथमकाल, ह्वाइट पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, नं० 18, कार्ड इम्प्रेस्ड मृद्भाण्ड का ठीकरा (पी. सिंह, ए. के. सिंह, इन्द्रजीत सिंह प्राग्धारा, अंक 2 से साभार)
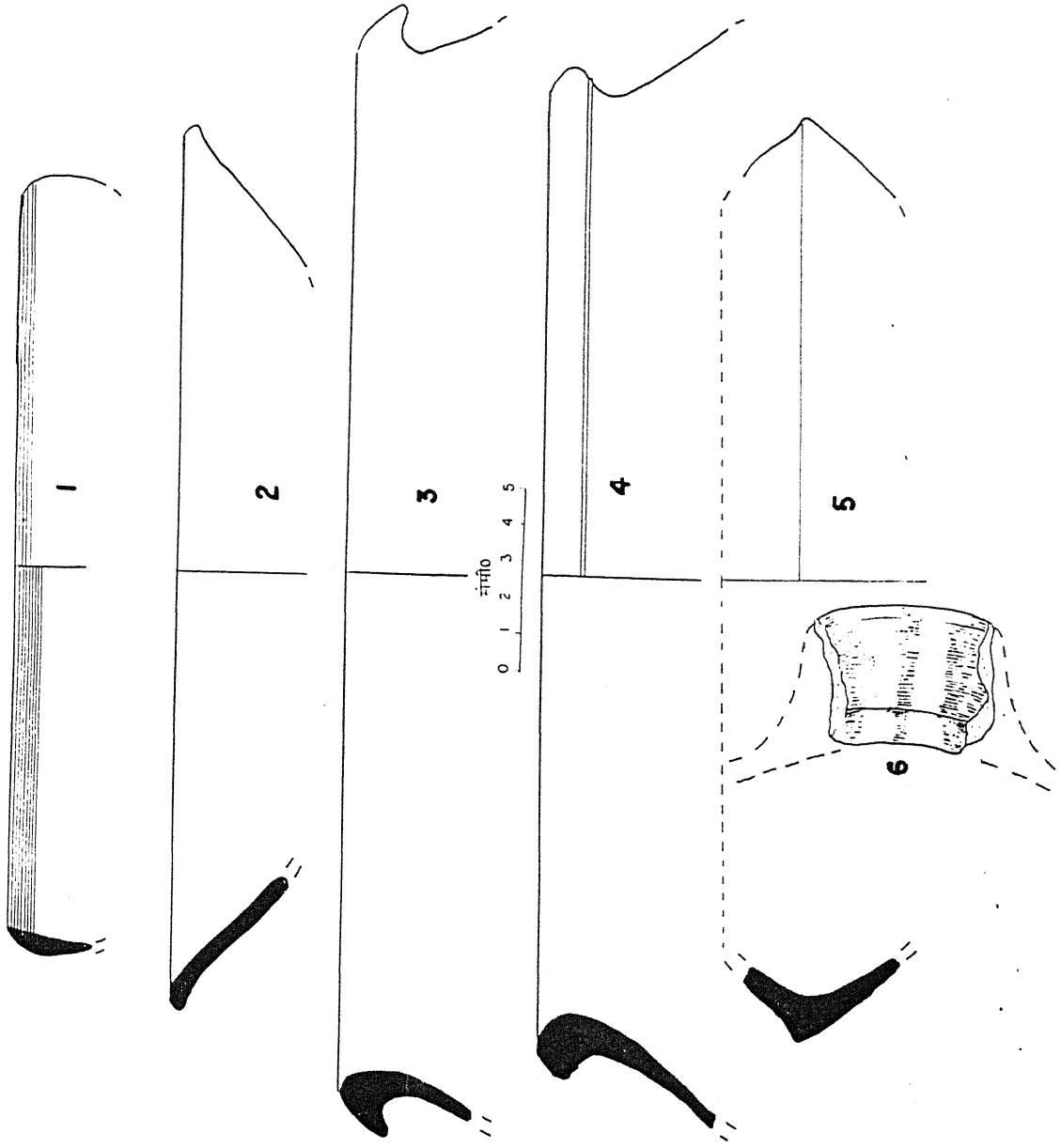
रेखाचित्र संख्या–25, सिकरीगंज : ताम्रपाषाणिक एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र–प्रकार
(सर्वेक्षण से प्राप्त)

गोरखपुर जनपद के प्रारम्भिक लौह कालीन स्थल
ने पा ल
सोनपिपरी
बनरसिंहा कला
रोहिन नदी
राप्ती नदी
गोरखपुर
राजधानी
आमी नदी
देवकली
(निकट कौड़ीराम)
0 20 40
कि०मी०
घाघरा नदी

मानचित्र संख्या-3
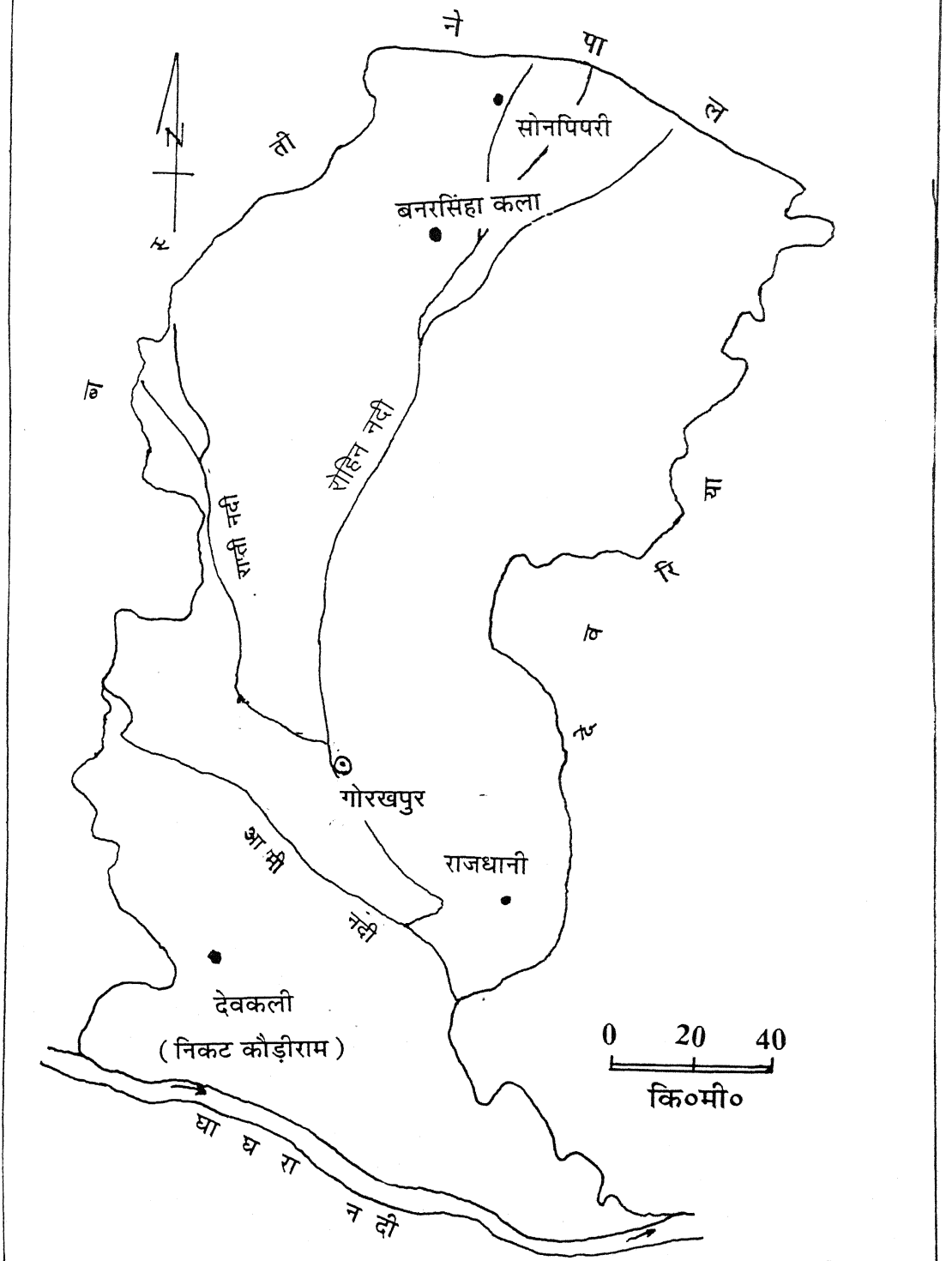
गोरखपुर जनपद के
प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल
N
ने पा ल
रोहिन नदी
गण्डक नदी
सोनपिपरी
बनरसिहा
ब ह र ती
राप्ती नदी
डोमिनगढ़
इटार
गोरखपुर
आमी नदी
बि हा र
महादेवा बाजार
कोठा
उसरैन
बढ़यापार
बदरा तिवारी
कुआनो नदी
उपधौलिया
राजधानी
गोरसेहरा
गुरुम्ही
इमलीडीह
सिकरीगंज
गिरधरपुर दुबवलिया
धुरियापार
देवकली (निकट गगहा)
गोपालपुर
कुरीबाजार
असौजी
उरूवा बाजार
मकन्दवार
घा घ रा न दी
0 20 40
कि०मी०

मानचित्र संख्या-4
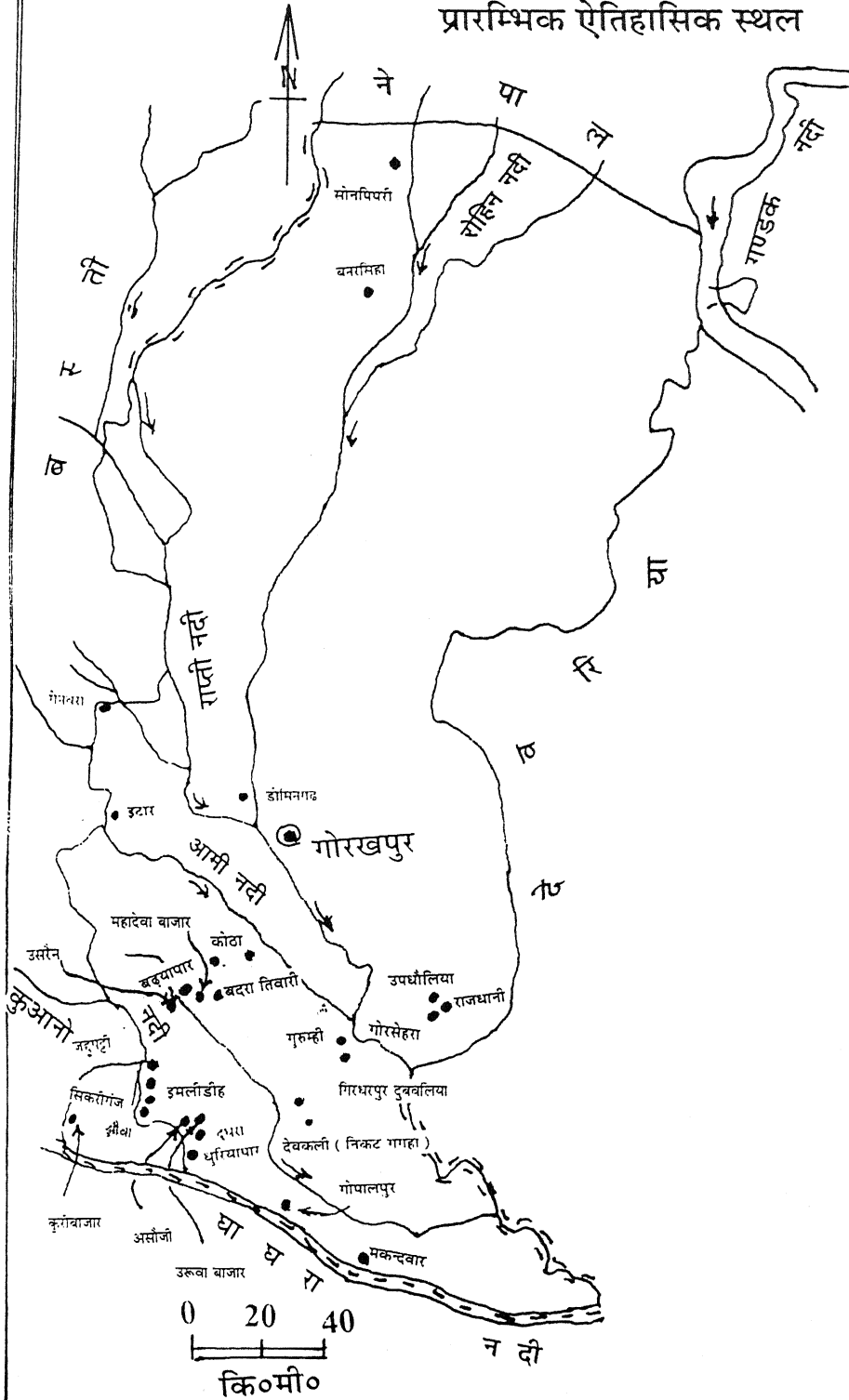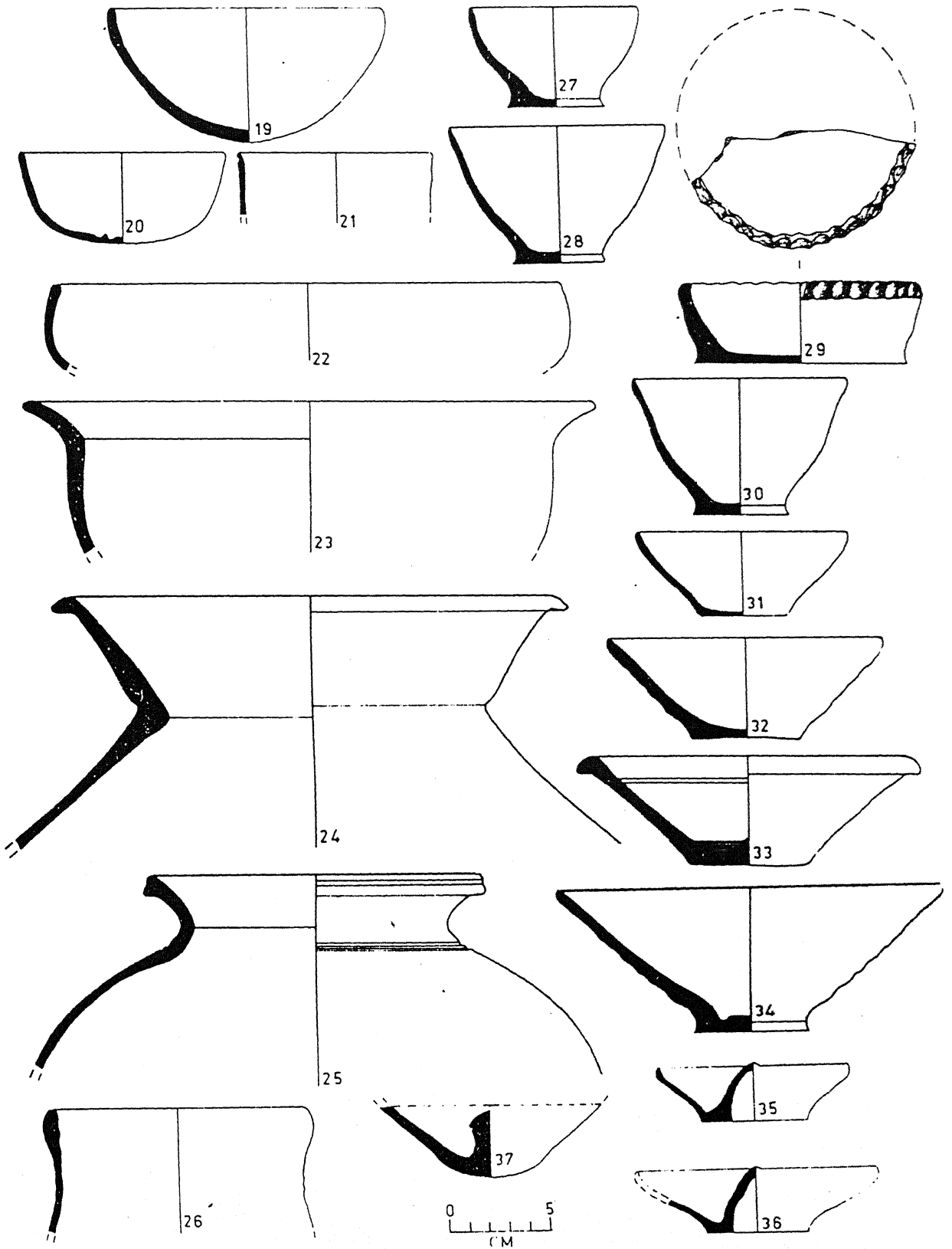
रेखाचित्र संख्या- 28, धुरियापार : द्वितीय एंव तृतीय काल के रेड वेअर के मुख्य पात्र-प्रकार, नं० 19, प्रथम काल से उपलब्ध ग्रे-वेयर का हस्तनिर्मित कटोरा
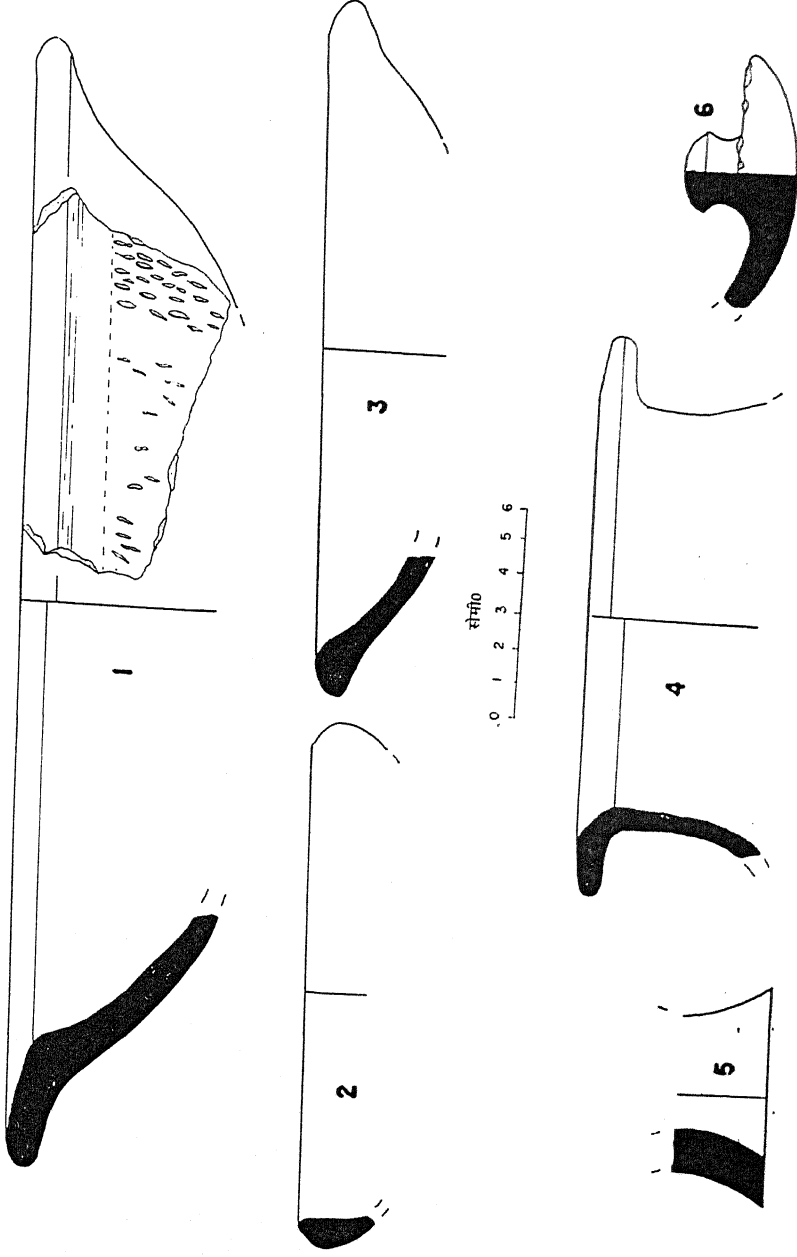
रेखाचित्र संख्या-29, (i) इमलीडीह (1,2,3) नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार

(ii) उरूवा बाजार (4,5) कुषाण काल के लाल रंग के पात्र-प्रकार

(iii) भरोहिया (6) कुषाण काल का लाल रंग का पात्र-प्रकार

(सर्वेक्षण से प्राप्त)

गोरखपुर जनपद के ऐतिहासिक स्थल
ने पा ल
रोहिन नदी
गेनवरा
भीटी तिवारी
पिपराइच
गोरखपुर
असुरन का पोखरा
आमी नदी
सरया
भरोहिया
बांसगाँव
राजधानी
कोटवा
सोपाइघाट
0 20 40
कि०मी०
घा घ रा न दी
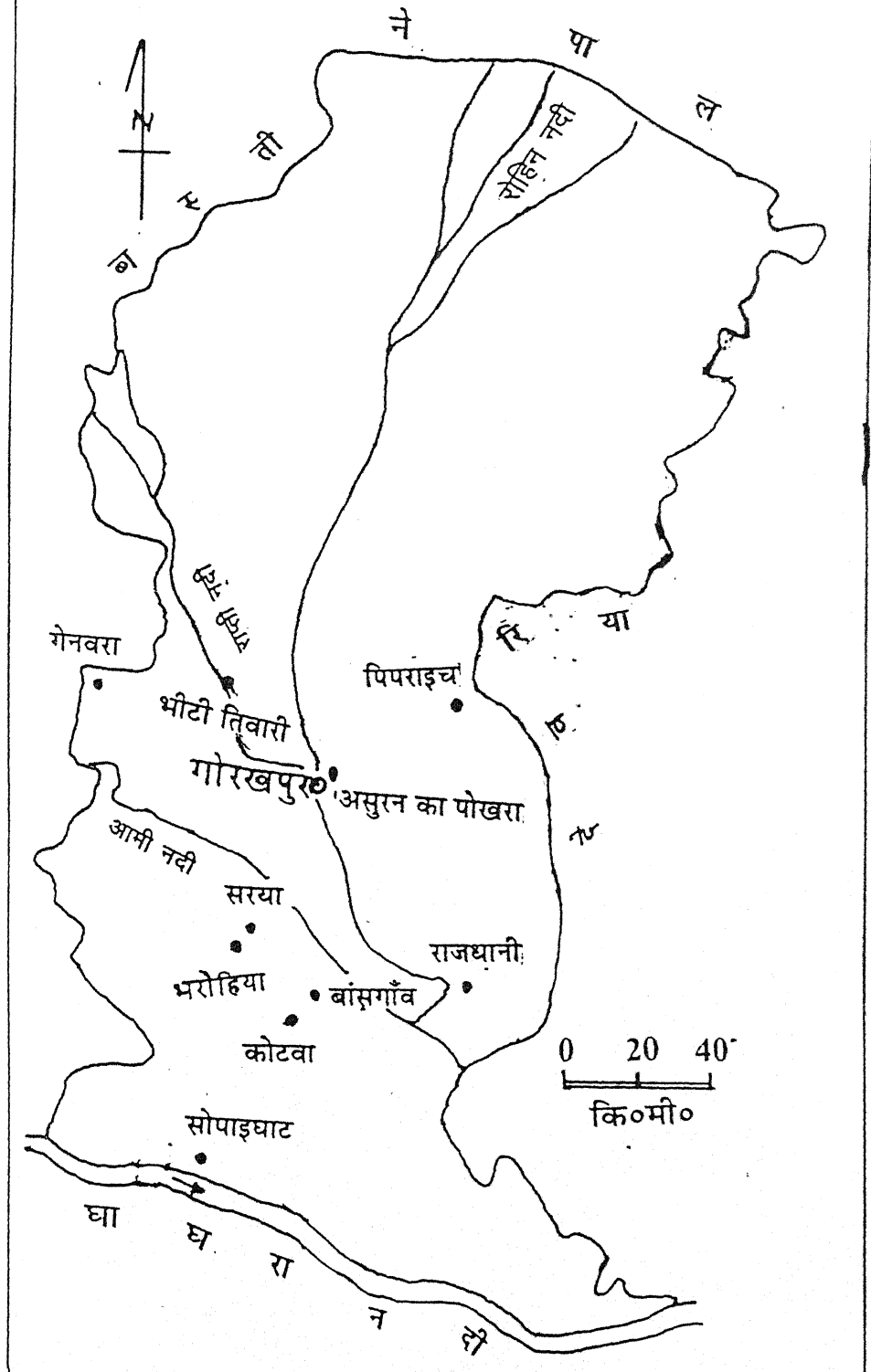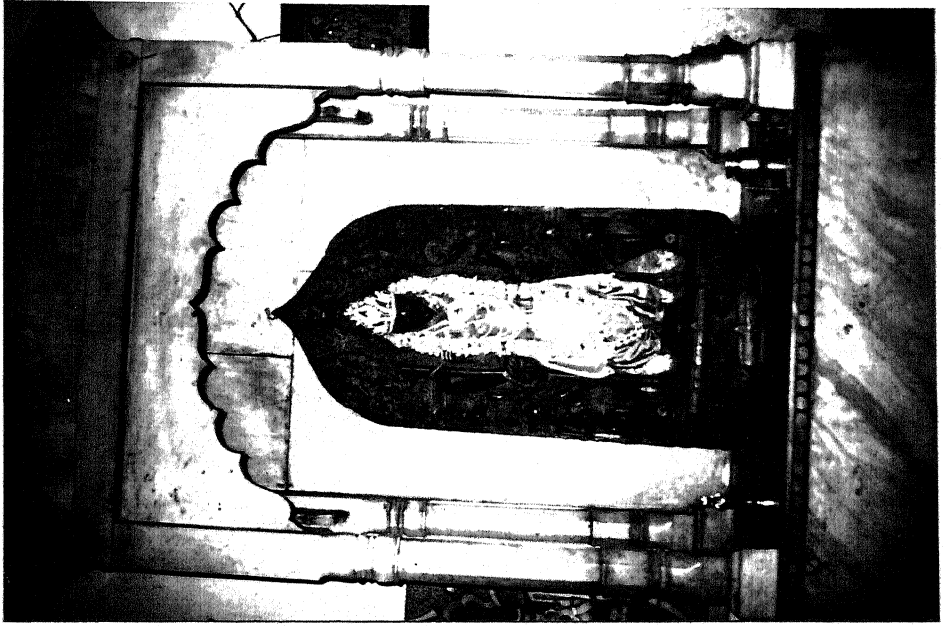
मानचित्र संख्या-5

छायाचित्र संख्या-2, विष्णु, विष्णु गंदिर (गोरखपुर महानगर), पूर्व मध्य-युगीन

छायाचित्र संख्या-1, विष्णु, हुई पार्क (गोरखपुर महानगर), पाल-युग

छायाचित्र संख्या-4, सूर्य, देवकली (निकट कौड़ीराम), पाल-युग

छायाचित्र संख्या-3, सूर्य, देवकली (निकट गगहा), पाल-युग

छायाचित्र संख्या-5, संग्रह-पात्र, (कूँड़ा), तियर (निकट देवकली, कौड़ीराम), कुषाण-युग

छायाचित्र संख्या-6, सूर्य, तुर्कपट्टी-महुअवा, गुप्त-युग
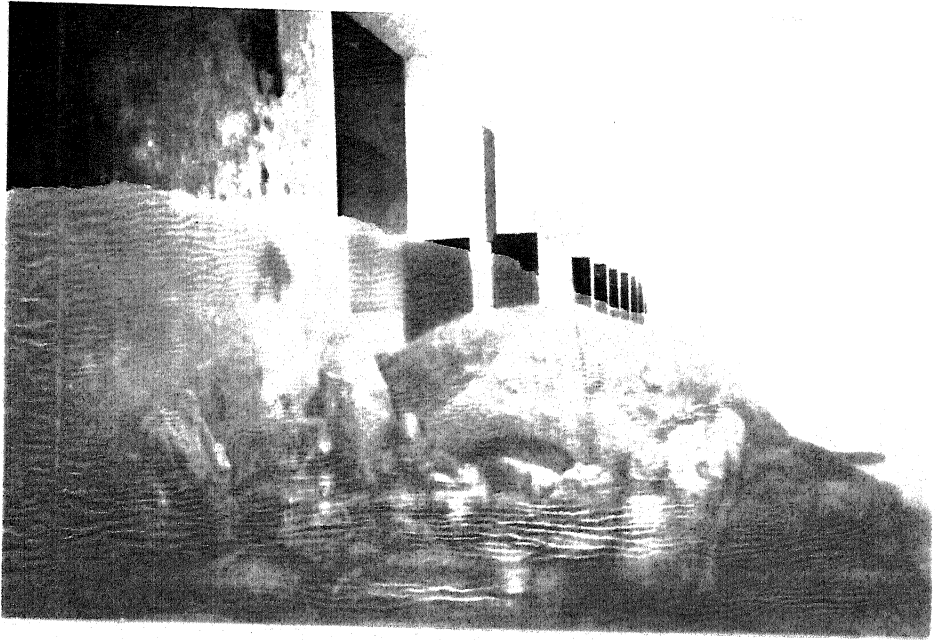
छायाचित्र संख्या-7, मूर्ति खण्ड, तुर्कपट्टी-महुअवा, गुप्त-युग
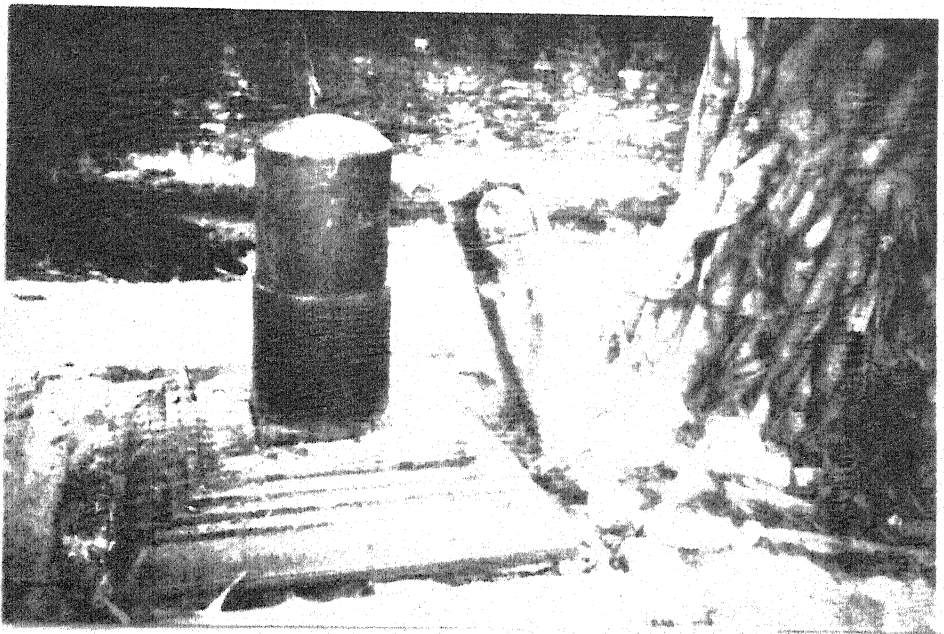
छायाचित्र संख्या-8, शिवलिंग, सरया, पाल-युग

छायाचित्र संख्या-7, मूर्ति-खण्ड, तुर्कपट्टी-गहुअवा, गुप्त-युग

छायाचित्र संख्या-8, शिवलिंग, सरया, पाल-युग

छायाचित्र संख्या-१, अग्नि, सरया, पाल-युग